कराए जाते हैं। इस दिन से एकादशी तक देव का नित्य पूजन होता है और उनका प्रिय नैवेद्य (मोदक) चढ़ाया जाता है। एकादशी के दिन बड़ी सजधज के साथ मूर्ति की सवारी (जलूस) नदी तट पर ले जाते हैं। एक ब्राह्मण गणपति की मूर्ति को सिर पर रख कर नदी में उतरता है और जहाँ डूब न सके इतनी दूरी तक पानी में चला जाता है; वहाँ गणपति की मूर्ति को पानी मे विसर्जित करके तैरता हुआ वापस किनारे पर आ जाता है। दूसरे लोग, जो खड़े-खड़े या बैठे-बैठे नदी-किनारे से इस विधि को देखते है, कुछ क्षणों के लिए बिलकुल मौन हो जाते हैं। फिर, वे उठ खड़े होते हैं, झण्डे और लाल आफताबियाँ पुनः ऊँची उठा ली जाती है, बन्दूकों के धड़ाके होते हैं, घुड़सवार अपने घोड़ों को नचाते है और बाजियां लेते हैं और हाथी अपनी द्रुत एवं गम्भीर चाल से चलते हुए तथा आजूबाजू मे लटकते घण्टों को बजाते हुए दिखाई देते है। इस प्रकार वे सब अपने गाँव में वापस लौट आते है।

गणेश जी को लड्डू अधिक प्रिय हैं इसलिए सामान्य लोग उस दिन लड्डू ही बनाते हैं। गणेश जी के चित्रों और मूर्तियों में भी इसीलिए उनके हाथ में लड्डू दिखाते हैं। भक्त लोग पहले गणेश जी को मोदक अर्पण करके उसके टुकड़े घर म धान की मटकियों और पेटियों आदि के पीछे बिखेर देते हैं; इसका तात्पर्य यह है कि इनके द्वारा गणेश जी के प्रिय सेवक चूहों और चुहियों को दावत दी जाती है, जो घर के ऐसे स्थानों मे बहुत संख्या मे बने रहते है।

सभी लोग मानते है कि गणेश चौथ के दिन चाँद देखना बहुत अशुभ होता है; जो कोई उस दिन चन्द्र-दर्शन कर लेता है उसको वर्ष भर में अवश्य ही कोई-न-कोई कलंक लगता है। परन्तु, जो निम्नलिखित श्लोक का निरन्तर जप करता है उस पर से यह आपत्ति टल जाती है।[18] कुछ लोग एहतियात बरतने के लिए घर में बैठ जाते है और कमरों की सभी खिड़कियाँ बन्द कर लेते हैं; दूसरे लोग, जिनको किसी कारण बाहर जाना ही पड़ता है और चाँद दिखाई दे जाता है तो वे अपने पड़ौसी के दरवाजे पर या छत पर पत्थर फैंकते है कि जिससे वह उनको गालिया दे और चन्द्र-दर्शन का अन्यथा भयंकर परिणाम इतने-से मे ही टल जाय।

---

18. श्री कृष्ण की पत्नी सत्यभामा के पिता सत्राजित् यादव को सूर्यदेव ने उसकी आराधना से प्रसन्न होकर स्यमन्तक मणि प्रदान की थी। उसका पूजन करने से प्रदिनिन 20 सेर सोना मिलता था। एक बार श्रीकृष्ण ने बातों में कहा था कि वह मणि तो किसी राजा के पास शोभित होती। बाद में एक बार सत्राजित् का भाई प्रसेनजित् वह मणि पहन कर शिकार को गया था; वहाँ जगल में उसको सिंह ने मार डाला। उस सिंह को जाम्बवान् ने ठिकाने लगा दिया और वह मणि प्राप्त कर ली।

श्रीकृष्ण ने उन्हीं दिनों कभी भाद्रपद शुदि चतुर्थी के चन्द्रमा का दर्शन कर लिया था। इसके फलस्वरूप लोगों के मन में यह बहम बैठ गया कि श्री कृष्ण का

गणेश चतुर्थी के दूसरे दिन 'ऋषि पंचमी' आती है। उस दिन गुजरात में लोग, उन ऋषियों की स्मृति में जो विना वोया हुआ अन्न खाते थे, ऐसे धान्य से भोजन बनाते हैं जो अपने आप उत्पन्न होता है।

चौमासे में अन्य ऋतुओं की अपेक्षा अधिक जीव-जन्तु उत्पन्न होते हैं, ऐसा विचार करके जैनों में बहुत-से लोग दो मास तक उपवास करते हैं जो 'पजूसण'[19] कहलाते हैं। यदि विधिपूर्वक किया जाय तो यह व्रत एक प्रकार का महान् तप है। इस व्रत की अवधि में श्रावक स्नान नहीं करते, धोने-झकोलने आदि स्वच्छता के कार्यों से विरत रहते हैं और जीवनरक्षा के लिए उबाल कर ठण्डे किए हुए पानी के सिवाय कोई चीज नहीं खाते-पीते। बहुत से जैन कुछ दिनों तक ही उपवास रखते हैं और कम से कम 'पजूसण' के अन्तिम दिन तो, जो ऋषि पंचमी को पड़ता है, सभी श्रावक व्रत रखते हैं। 'पजूसण' के अन्त में श्रावक लोग अपने-अपने मित्रों और बान्धवों से मिलने जाते हैं; वे ऐसा कहते हैं कि यह प्रथा इसलिए चालू हुई है कि कठोर व्रत की साधना के अनन्तर यह जानना आवश्यक होता है कि उसके परिणाम-स्वरूप कितने व्यक्ति चल बसे और कितने बच गए।[20] प्रत्येक श्रावक जब अपने सगे सम्बन्धियों के घर जाता है तो वे दोनों हाथों से उसे पकड़ कर स्वागत करते हैं और फिर इस प्रकार बोलते हैं—

"बारह मास, चौबीस पखवाड़े, बावन अठवाड़े (सप्ताह), इतने समय

मन उस मणि पर था इसलिए उन्होंने ही प्रसेनजित् को मार कर मणि चुरा ली। अपना कलंक मिटाने के लिए श्री कृष्ण तलाश में निकले और जाम्बवान् के 'खोजों' (पद-चिन्हों) का सहारा लेते हुए उसके घर जा पहुँचे। वहाँ 21 दिन तक उसके साथ श्रीकृष्ण का युद्ध हुआ। अन्त में, हार कर उसने स्यमन्तक मणि उनको लौटा दी और अपनी पुत्री जाम्बवन्ती का विवाह भी उनके साथ कर दिया। श्री कृष्ण ने मणि लाकर सब के सामने प्रस्तुत कर दी। इस प्रकार उन पर लगा हुआ कलंक दूर हुआ। इसी का सार-सूचक यह श्लोक है जिसका स्मरण करने से चतुर्थी-चन्द्र-दर्शन का कुफल टल जाता है—

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक ! मा रोदीस्तव एषः स्यमन्तकः॥

19. पर्युषण अर्थात् सेवन; इससे मागधी में 'पञ्चुसण' हुआ और वही आगे चलकर 'पचुसण' या 'पजूसण' शब्द बन गया। (गु. अ.)

20. दीपवाली के बाद कार्तिक शुक्ला 1 को जैसे हिन्दू लोग अपने-अपने मित्रों और बन्धु-बान्धवों से मिल कर 'रामा-श्यामा' करते हैं उसी प्रकार पर्युषण पर्व की समाप्ति के दूसरे दिन जैन भी आपस में मिलते हैं और वर्ष भर में किए हुए अपराधों के लिये क्षमा माँगते हैं। इसको 'खमत खमणा' या 'खमावणी' कहते हैं।

में यदि मैंने कोई ऐसे वचन कहे हों जिनसे तुमको दुःख पहुंचा हो तो मुझे क्षमा करना।[21]

जैन साधु और मुख्यतः ढूंढिया[22] मत के अनुयायी इन दिनों में 'संथारा'

21. मूल रूप से मागधी भाषा में इस प्रकार कहा जाता था 'बार मासाणं, चौबीस पक्खाणं, त्रण से साठ राई दियाणं।' कुछ लोग इस प्रकार कहते हैं, 'अड़तालीस आईतवार, त्रण से साठ दांहाडानो मिच्छामि दुक्कडं (इच्छामि दुष्करं)। परन्तु, अब तो इसको अपभ्रष्ट करके तरह-तरह से बोलते हैं। इसका मूल अभिप्राय यह है कि वर्ष भर में एक दूसरे से कोई अनबन या अपकार हो गया हो तो उसे भुलाकर पुनः आपस में सद्भाव स्थापित कर लिया जाय। समाज में सभी लोग यदि सच्चे हृदय से इनका पालन करें तो बड़ी उत्तम बात है।

22. संवत् 1700 (1644 ई०) से पहले ढूंढिया मत का अस्तित्व नहीं था। 'ढूढिया' शब्द का अर्थ है 'ढूंढने या खोज करने वाला', इसलिए जैन धर्म में सुधार करने वालों ने अपने पंथ के लिए इस नाम को ग्रहण किया। इनके प्रतिपक्षी तपागच्छ' वाले इस शब्द का मूल 'ढूंड' या छिलका में बताते हैं और कहते है कि ये लोग श्रावक रूपी धान्य के छिलके या खाखले जैसे है। 'ढूंढिया' न तो मन्दिर रखते है और न मूर्ति-पूजा करते है। वे स्नान नहीं करते क्योंकि उनके मत से ऐसा करने से जीव-हिंसा होती है; पानी भी उबाले हुए के अतिरिक्त नहीं पीते। ढूंढिया साधु एक विचित्र-सा व्यक्ति होता है। उसके पास कोई सम्पत्ति नहीं होती और जिस स्थानक में वह रहता है वह भी उसके पन्थावलम्बियों का ही होता है। वह अपना स्थानक केवल भिक्षा के लिए ही छोड़ता है, बाकी समय वहीं बना रहता है। उसके हाथ में बकरी के बालो का बना हुआ एक 'ओगा' रहता है जिससे वह अपने मार्ग में या बैठने के स्थान म जो जीव-जन्तु होते है उनका अपसारण कर देता है। बातचीत करते समय मुख में प्रवेश करके कोई जीव-जन्तु मर न जाय इसलिए वह अपने मुंह पर एक हल्का-सा कपड़ा बांध लेता है जिसको 'मुमती' (मुंह पत्ति) कहते है। उसका शरीर और कपड़े अत्यन्त गन्दे रहते हैं जिनमें जुएँ पड जाती हैं।

(देखिये — बाम्बे गजेटियर, 9—भा. 1. पृ० 105

काठियावाड़ के गोंडल में श्रावकों का एक बड़ा भारी मन्दिर है जिसके विषय में कोई पन्द्रह वर्ष पहले ढूंढियों और तपागच्छ वालों में एक विवाद छिड़ा था जिसमें ढूंढिये जीत गए और उन्होंने सब प्रतिमाओं को नष्ट कर दिया। बाद में, ऐसा ही एक झगड़ा बीकानेर में हुआ और लोगों ने एक दूसरे के विरुद्ध

व्रत ग्रहण करते हैं अर्थात् विना कुछ खाए-पिये रहना और इस प्रकार प्राण त्याग करना। जब कोई जती यह नियम ग्रहण करता है तो देश भर में इसकी खबर फैल जाती है और जैन लोग बड़ी संख्या में उसका दर्शन करने आते हैं। कहते हैं कि पन्द्रह दिन तक तो व साधु किसी तरह बैठे रहने की स्थिति में रहता है, इसके बाद वह जमीन पर लेट जाता है। आसपास में बैठे हुए लोग गीले वस्त्र से उसके संतप्त शरीर को दबाते हैं परन्तु इस बात की सावधानी रखते हैं कि किसी प्रकार का भोजन उसको न पहुँच सके।

जिस दिन साधु व्रत ग्रहण करता है उसी दिन से उसके अन्तिम संस्कार की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। रंग-बिरंगे कागजों (अब्री) और पन्नी से सजाई हुई एक पालकी (अर्थी) तैयार की जाती है और जब उस साधु का अन्त-समय समीप आता है तो उसे 'स्थिति के आसन में' उस पालकी में बैठा देते हैं। जब उसकी अन्तिम सवारी निकालते हैं तो आगे-आगे गाना-बजाना होता रहता है और पुत्र की इच्छा करने वाली स्त्रियाँ उसकी पालकी के नीचे होकर निकलती हैं या जती जी के चिथड़ों की लूट में से कोई टुकड़ा लेकर अपनी आशा पूर्ण होने का शकुन मनाती हैं।

भाद्रपद शुक्ला 14 को 'आनन्द (अनन्त) चौदस' कहते हैंमूलत: यह नाम पृथ्वी को धारण करने वाले शेष[23] नाग के आधार पर निकाला गया है जिसका एक नाम

हथियार उठा लिए। झाला सरदार के सिपाहियों ने झगड़ा शान्त कराने को हस्तक्षेप किया तो दोनों ही पक्ष के लोग उन पर निर्दयता से टूट पड़े।

जब तपागच्छ वालों ने देखा कि कच्छ में ढूंढिया जोर पकड़ रहे हैं तो उन्होंने श्रावकों को दो जातियों में विभक्त कर दिया। अहमदाबाद शहर में आप देखेंगे कि तपागच्छी और ढूंढिया पन्थी साथ बैठ कर खा-पी लेते हैं परन्तु उनमें बेटी-व्यवहार नहीं होता। ढूंढियों के कठोर साधुव्रत को देखकर प्रतिपक्षियों की अपेक्षा उनको अधिक संख्या में अनुयायी मिल जाते हैं; तपागच्छ वालों में भी एक अधिक त्यागी और व्रती पंथ 'संवेगी' नाम से अभी कुछ ही वर्षों से चालू हो गया है।

23. शेष का अर्थ है 'बचा हुआ', जैसे किसी कागज में लिखते हैं तो उसके आसपास बची हुई जगह शेष है और वही लिखित अंश का आधारभूत भाग है। इसी प्रकार जगत् के आसपास जो आधारभूत अवकाश है वह शेष अनन्त है। उसी के लिए वेद में कहा है, 'अत्यतिष्ठद्दशांगुलम्' अर्थात् समस्त सृष्टि को व्यावृत करके वह (ब्रह्म) दश अंगुल आगे रह गया। दश अंगुल तो उपलक्षण मात्र है—वह तो अनन्त है। परमात्मा अशेष है, वह अपने आप में सम्पूर्ण है और जगत् का शेष है। इसी भाव पर 'भारतीय आत्मा' की बड़ी सुन्दर उक्ति है—

'अनन्त' भी है। इस दिन कार्य सिद्धि के लिए 'अनन्त' का ही व्रत किया जाता है। यह व्रत चौदह वर्ष तक रखना पड़ता है परन्तु देखने में वैसा भारी नहीं लगता है क्योंकि केवल चौदह गाँठों वाला लाल अनन्त सूत्र ही दाहिनी भुजा पर बाँधे रहना पड़ता है। व्रत लेते समय विष्णु का पूजन करना और, ऐसे पदार्थों का भोग लगाना आवश्यक होता है जिनका नाम पुल्लिंग-संज्ञक हो। प्रतिवर्ष 'अनन्त-सूत्र' बदल लिया लिया जाता है और चौदह वर्ष पूरे होने पर व्रतधारी 'उद्यापन' करता है। यह उद्यापन करने के बाद व्रत करने वाला व्रत से निवृत्त हो जाता है। उद्यापन करते समय हवन किया जाता है, विष्णु के निमित्त विविध धान्यों का गृह बनाया जाता है, जिस पर चौदह ताम्रपात्र रख कर प्रत्येक में एक-एक नारियल रखा जाता है। उस धान्य-गृह में देव का आवाहन करके विधियुक्त पूजा की जाती है। वृत से निवृत्त होने वाला पुरुष अन्य चौदह व्यक्तियों को अनन्त सूत्र दान करता है जो व्रत ग्रहण करने को इच्छुक होते हैं। वह उद्यापन करने वाला व्यक्ति अपने कुलगुरु और उसकी पत्नी को आमन्त्रित करके उनका पूजन करता है और 'उमा—महेश्वर' के निमित्त उनको चौदह-जोड़े वस्त्रों के भेंट करता है।

'अनन्त की पुस्तक' में पुराणों का ही अंश उद्धृत है। इसमें लिखा है कि कृष्ण ने युधिष्ठिर और अन्य पाण्डु-पुत्रों को यह व्रत करने की सलाह दी थी और कहा था 'मैं ही अनन्त हूं।' फिर, उन्होंने सतयुग की एक ब्राह्मण-स्त्री की कथा कही कि उसने अनन्त का व्रत करके अपने पति के लिए बहुत-सा द्रव्य प्राप्त कर लिया था परन्तु अज्ञानी पति ने उसकी बाँह पर से अनन्त सूत्र उतरवा दिया इसलिए वह समस्त सम्पत्ति विलीन हो गई। जब ब्राह्मण को इसका कारण ज्ञात हुआ तो उसने बहुत पश्चात्ताप किया और अनन्त भगवान् की शरण ली। तब देव ने उसको द्रव्य की पुनः प्राप्ति के साथ-साथ इस जन्म में धर्म में मति स्थिर रहने और अपर जन्म में विष्णुलोक में वास प्राप्त होने का भी वरदान दिया। इसी प्रकार अनन्त पूजन की महिमा के और भी बहुत से उपाख्यान हैं जिनकी आवृत्ति के लिए प्रस्तुत पुस्तक में बहुत कम अवकाश है।

आसोज शुदि प्रतिपदा से नवमी तक 'नवरात्र' का पर्व होता है; यह कुलदेवी या शिव की अर्धांगिनी दुर्गा का त्यौहार कहलाता है। पर्व के पहले दिन हिन्दू लोग घर के भीतर भीत को अच्छी तरह सफेदी से पोत कर सिन्दूर से उस पर देवी का चिन्हस्वरूप त्रिशूल अंकित करते है। माता का स्थानक पर्वत पर या जंगल आदि में किसी ऐसी विकट जगह होता है जहाँ पहुँचना दुष्कर होता है- इसी के अनुकरण

'अरे अशेष ! शेष की गोदी तेरा बने बिछौना सा;
आ जा मेरे आराध्य ! खिला लूं मैं भी तुझे खिलौना सा ॥

शेष को नाग भी कहा है अर्थात् उसमें गति नहीं है, वह हिलता डुलता नहीं है, वही भूधर (पृथ्वी का धारण करने वाला) है। (हि. अ.)

में मिट्टी का टीला-सा बना कर त्रिशूल के सामने ही उस पर माता के मन्दिर का नमूना बनाया जाता है और आसपास मिट्टी के आलवाल में गेहूँ, जौ आदि के 'जवारे' उगा दिए जाते हैं; ऊपर ताम्र जलपात्र में नारियल रख दिया जाता है। तब षोडशोपचार के अनुसार उस गृह में देवी का आवाहन करके प्रथम उपचार सम्पन्न किया जाता है। त्रिशूल के सामने ही एक घड़े में बहुत-से छिद्र करके उसमें दीपक स्थापित किया जाता है अथवा देहात में गाँव के मध्य भाग में कहीं खुले स्थान पर एक झाड़ (वृक्ष) खड़ा करके उस पर दीपक लटका दिए जाते हैं; फिर उस दीपक या झाड के आसपास सभी नर नारी और बाल बच्चे 'गरबा' नृत्य करते हैं, गाते हैं और तालियाँ बजाते हैं। नवरात्रों में एक घृत का दीपक पीलसोत पर अखण्ड जलता रहता है और घर के आदमियों में से एक पूर्ण व्रत रखने वाला व्यक्ति, जो अन्नाहार नहीं करता, इसकी चौकसी रखता है और इसमें बार-बार घृत डालता रहता है; वही देवी का पूजन करता है। कुल-पुरोहित नौ दिन तक 'दुर्गापाठ' करता है जिसमें देवी के पराक्रम और पूजा की विधि विधान का वर्णन है अष्टमी के दिन प्रत्येक देवी-मन्दिर और गृहस्थ के घर मे हवन होता है। आरासुरी और चुँवाल देवी के मन्दिरों में कोली जाति के एवं अन्य जातियों के लोग अपने रोगग्रस्त सगे-सम्बन्धियों और बाल-बच्चों के स्वास्थ्य लाभ के लिए अपनी बोलारी के अनुसार पशु-बलि चढ़ाते है। नवे दिन वह मिट्टी का टीला, जिसमें जौ (यव) और गेहूँ उग आते हैं, अपने स्थान से उठा कर नदी या तालाब पर ले जाते हैं और उसे पवित्र जल में विसर्जित कर देते हैं; कि जिससे वह अन्यथा अपवित्र न हो जाय। दीपक सहित 'गरबा' को देवी प्रतिमा के सामने स्थापित कर दिया जाता है।

राजपूत सरदार और दूसरे लोग, जो अपने को क्षत्रिय-सन्तान मानते हैं, नवरात्र के दिनों में अपने घरू मन्दिरों में परिवार और परिकर के कुशल के लिए देवी के आगे पशु बलि चढ़ाते हैं। ये लोग तोप को दुर्गा देवी का प्रत्यक्ष स्वरूप मानते हैं, इसलिए उस पर त्रिशूल अंकित करते हैं और उसी के सामने मन्दिर का स्वरूप निर्माण करके उसके चारों ओर दीपक जलाते हैं।

नवरात्र की नवमी के दूसरे दिन ही दशहरा होता है। इसी दिन पाण्डु के के पुत्रों ने वैराठ में प्रवेश किया था और राम ने लंका में राक्षसराज रावण का नाश किया था। हिन्दू महाकाव्यों में वर्णित इन दोनों घटनाओं की स्मृति में ही यह त्यौहार मनाया जाता है। अर्जुन और उसके भाइयो ने शमी (खेजड़ा) वृक्ष का पूजन करके उस पर अपने शस्त्र टाँग दिए थे इसीलिए हिन्दू लोग दशहरे के दिन खेजड़े का पूजन करते हैं। वे शमी को अपराजिता देवी अर्थात् जो किसी से भी परास्त न हो, ऐसा कह कर सम्बोधन करते हैं, उस पर पंचामृत[24] छिड़कते है, जल से प्रोक्षण करते हैं और उस पर कपड़े लटकाते हैं। फिर, वे अपराजिता की प्रतिमा

24. दूध, दही, शक्कर, घृत और शहद मिला कर पंचामृत बनाया जाता है।

के आगे दीपक प्रज्वलित करते हैं, धूप जलाते हैं, वृक्ष पर चन्द्रोले (गन्ध के चिन्ह) बनाते हैं, गुलाबजल छिड़कते हैं, नैवेद्य चढ़ाते हैं और प्रदक्षिणा करते हैं। प्रदक्षिणा करते हुए यह श्लोक बोलते रहते हैं—

शमी शमयते पापं शमी शत्रुविनाशिनी
अर्जुनस्य धनुर्धारी (त्री) रामस्य प्रियवादिनी।
अर्जुनस्य धनुर्धारी (त्री) रामस्य प्रियवादिनी
लक्ष्मणप्राणदात्री च सीता-शोकनिवारिणी॥

"शमी पाप का नाश करती है; शमी शत्रुओं का नाश करने वाली है; अर्जुन का धनुष शमी ने धारण किया; राम को प्रिय वचन शमी ने कहे; लक्ष्मण को प्राण-दान करने वाली और सीता का शोक निवारण करने वाली शमी है।"

फिर वे एक-एक करके दसों दिक्पालों का पूजन करते हैं; सब से पहले पूर्व दिशा के देवता इन्द्र को पूजते हैं और यह मन्त्र पढ़ते हैं—

'पूर्वस्यां यानि कार्याणि तानि कार्याणि साधय'

'हे इन्द्र ! पूर्व दिशा में जो भी मेरे कार्य हों उनको साधो।'

इसी प्रकार शेष नौ दिक्पालों की प्रार्थना करते हैं। इस दिन बलेव (रक्षा-बन्धन) के दिन बाँधी हुई राखी को हिन्दू लोग तोड़ कर फेंक देते हैं।

दशहरे के दिन शाम को राजपूत ठाकुर 'गढ़ेची' अर्थात् गढ़ या दुर्ग की रक्षा करने वाली देवी की पूजा करते हैं। शमी-पूजन करके लौटते समय वे टोलियों में बँट जाते हैं और अपने भालों को फिराते हुए तथा घोड़ों को दौड़ाते हुए ऐसा अभिनय करते हैं मानो उन्होंने खेत जीत लिया हो। उसी समय तोपों से उनकी सलामी होती है।

बहुत से हिन्दू घर लौटते समय शमी वृक्ष की जड़ में से कुछ मिट्टी, थोड़े से उसके पत्ते, सुपारी और दुर्गा के मन्दिर में बोए हुए 'जवारे' ले आते हैं। इन चीजों की गाँठड़ी बना कर वे तावीज की तरह रखते हैं और पर-गाँव जाना होता है तब साथ ले जाते हैं। बचे हुए गेहूँ के डंठलों को वे अपनी पगड़ी में खोंस कर सजा लेते हैं।

प्रकरण छः का परिशिष्ट

हिन्दू त्यौहारों का जो वर्णन फार्बस ने दिया है वह पूर्ण नहीं है। इन त्यौहारों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—1. पौराणिक, जिन में देवताओं और महापुरुषों के जन्म दिन (जयन्ती) भी शामिल हैं, 2. पुराणों और महाकाव्यों में वर्णित प्रसिद्ध त्यौहार; और 3. सूर्य, चन्द्रमा की गति में परिवर्तन, ऋतु-परिवर्तन तथा अन्य प्राकृतिक घटनाओं से सम्बन्धित त्यौहार। प्रथम वर्ग में भगवान् राम का जन्म दिन चैत्र में रामनवमी (मार्च, अप्रेल), श्रावण (भाद्रपद) कृष्णा अष्टमी को श्री कृष्ण का जन्मदिन जन्माष्टमी (जुलाई-अगस्त), और गणेश

का जन्म दिन गणेश चतुर्थी जो भाद्रपद कृष्णा 4 को आती है (अगस्त-सितम्बर में) इत्यादि त्यौहार मानते हैं। इन्ही में देवी का त्यौहार नवरात्र, शिव की महाशिवरात्रि (जिसका उल्लेख फार्बस ने नहीं किया है) और जो माघ (फाल्गुन) की त्रयोदशी (जनवरी-फरवरी) मे आती है एवं अन्य बहुत से ऐसे पर्व शामिल किए जा सकते है। अपर वर्ग में होली का त्यौहार आता है (जिसका जिक्र फार्बस ने नही किया है। यह त्यौहार फाल्गुन की पूर्णिमा (मार्च-अप्रेल) में आता है और निम्न वर्ग के लोगों (शूद्रों) में बहुत ही आनन्द का समय माना जाता है। इस दिन सूर्य विपुवत् रेखा पार करता है और बसन्त ऋतु का आरम्भ होता है। संक्रांति पर्व का अर्थ है सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि मे संक्रमण। सब से महत्वपूर्ण मकर-संक्रान्ति पर्व होता है जिस दिन सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है; यह त्यौहार 14 जनवरी को आता है।

हिन्दू जीवन मे दीवाली का त्यौहार बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। यह आश्विन कृष्णा 14 से कार्तिक शुक्ला 2 तक मनाया जाता है। यह एक प्रकार से कितने ही पर्वों की लड़ी है जिनमें मुख्यतः सूर्य का सप्तम राशि तुला मे प्रवेश, राम का राज्यारोहण, नरकासुर का वध और विष्णु के द्वारा बलि-बन्धन अधिक महत्व के माने जाते हैं। हिन्दुओं के दैनिक जीवन में जो व्रत और त्यौहार मनाए जाते है उन सबका विधि-विधान-पद्धत्यादि सहित यहां वर्णन करना असम्भव है। प्रत्येक पखवाड़े की एकादशी, अमावास्या और पूर्णिमा एक पर्व के रूप मे मानी जाती है।

———

प्रकरण सातवाँ

विवाह

गुजरात के हिन्दुओं में विवाह अपनी ही जाति में हो सकता है। यह जातियाँ भी भिन्न-भिन्न शाखाओं और दक्षिण एवं वाम उपशाखाओं में सदैव से बँटी हुई हैं और इन्हीं में, आपस में, सम्बन्ध होते रहते है। सम्बन्ध करते समय ब्राह्मण लोग 'गोत्र' देखते हैं।[1] 'गोत्र' का नाम उनके किसी ऐसे पूर्वज पर पड़ा होता है जिसकी प्राचीनता के विषय में उन्हें स्वयं को कोई ज्ञान नहीं होता। परन्तु, उसी पूर्वज की सन्तानों में विवाह नहीं होता अर्थात् सगोत्र विवाह नहीं होता। दूसरे हिन्दू भी इसी नियम का पालन करते हैं परन्तु उनके पास ब्राह्मणों की तरह अपने पूर्वजों की अधिक प्राचीनता के ज्ञान का साधन नहीं होता इसलिए वे नियमो मे अधिक कड़ाई नहीं बरतते। कुल का भाट या 'बही-बाँचा' प्रायः पिछली बीस पीढ़ियों तक के नाम बता सकता है; और किस सीमा तक विवाह में प्रतिबन्ध है, इसका निर्णय उसकी दी हुई सूचना के आधार पर ही किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक और भी नियम है जो यद्यपि इतना प्रामाणिक नही है फिर भी उसका पालन निरन्तर होता है—वह यह है कि माता के कुल में पाँच पीढ़ी तक और विमाता के कुल में तीन पीढ़ी तक विवाह सम्बन्ध नही हो सकता। ऐसा भी विधान है कि काकी की बहिन के साथ भी सम्बन्ध नही करना चाहिए।

---

1. ब्राह्मणों के विवाह सम्बन्धी नियम बहुत जटिल हैं। सबसे मुख्य बात यह है कि जाति समान होनी चाहिए और गोत्र भिन्न होना चाहिए। प्रत्येक गोत्र में भी अपेक्षाकृत आधुनिक पूर्व-पुरुषों के आधार पर 'प्रवर' होते हैं, जैसे—शाण्डिल्य, गर्ग, कौशिक इत्यादि। इन प्रवरो मे 'वत्स्य' मुख्य है। कोई भी ब्राह्मण सपिण्ड परिवार मे विवाह नही कर सकता अर्थात् तीन पीढ़ी पहले और तीन पीढ़ी आगे एक ही कुटुम्ब हो तो विवाह नही होगा यदि कोई कन्या माता के गोत्र की है या उसकी सपिण्ड है तो उसके साथ विवाह नही हो सकता। कोई भी स्त्री अपने से उच्च कुल में विवाह कर सकती है।

हिन्दू विवाह प्रथा के विषय मे विशेष जानकारी के लिए सर एच. रिसले (Sir H. Risley) लिखित 'The People of India' (द्वितीय संस्करण, पृ. 156 पुस्तक पढ़नी चाहिए।

एक ही जाति में भिन्न-भिन्न कुल होते हैं, उन सब का व्यवहार समान नहीं होता। एक कुल अपने को दूसरे से ऊंचा समझता है और इसका साधारण कारण यह होता है कि उस कुल के किन्हीं पूर्वजों ने कभी जाति का उपकार किया था। कन्या के माता-पिता की सदा यही इच्छा रहती है कि वे उसका विवाह किसी अपने से ऊंचे कुल में करें। नीचे कुल में कन्या का विवाह करना अपमानजनक माना जाता है और इसी अपमान के भय को लेकर गुजरात के राजपूतों में और (पाटीदार) कुणबियों तक में दूध-पीती बच्चियों का वध करने की कुप्रथा चल पड़ी थी।[2]

लड़कों के विवाह के बारे में माता पिता को, इतनी अधिक तो नहीं-पर, एक दूसरी ही तरह की चिन्ता होती है। समझदार लोग तो ऐसे अवसरों पर अधिक खर्चे को टाल जाते हैं, परन्तु ऐसे बहुत थोड़े ही लोग हैं; यह तो एक चाल ही पड़ गई है कि 'नुकता-मोसर' के अवसर पर ऋण लेना ही पड़ता है और हर-एक आदमी को, वह समझदार हो या नासमझ, अपने पुत्रों के विवाह में अपनी हैसियत से बढ़ कर खर्च करना आवश्यक होता है; जिनके पिता गुजर जाते हैं उनको अपने छोटे भाइयों के विवाह में इसी तरह धन व्यय करना होता है। अविवाहित रहना अपकीर्तिकर और हीनता का लक्षण समझा जाता है। जिसके सन्तान नही होती या जीवित नही रहती उसको नपुंसक समझ कर घृणा करते हैं; सुबह-सुबह ऐसे आदमी का मिलना अपशकुन माना जाता है; मृत्यु के पश्चात् वह प्रेत हो जाता है और उसकी आत्मा अपने पूर्व निवास-स्थान पर भटकती रहती है; वह लोगों के उस सुखोपभोग को देख-देख कर ईर्ष्या करता है जो निस्सन्तान रहने के कारण उसको प्राप्त नहीं हुआ था।

---

2. उच्च कुल के राजपूतों में दूध पीती बच्चियों को मार देने के कई कारण हैं। इस पापकृत्य का मुख्य कारण तो यह है कि पुत्री के विवाह में अत्यधिक धन खर्च करने का रिवाज इन लोगों मे है। इसका वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—जब सम्बन्ध तय हो जाता है तो पुत्री का पिता वर के पिता के पास कुछ रुपये भेजता है। वह रकम बहुत बड़ी तो नहीं होती परन्तु 'दहेज' के दशमांश के बराबर तो होती ही है। इसे एक प्रकार से पेशगी रकम या 'बयाना' समझना चाहिए, परन्तु जब 'तिलक' की विधि सम्पन्न हो जाती है तो कन्या का पिता ठहराई हुई रकम देने से मुकर नही सकता।

इसके बाद 'लग्न' या 'लगन' आता है; उस समय तय किए हुए दहेज की आधी रकम दी जाती है और 'बरात' का दिन निश्चित कर दिया जाता है। बरात अर्थात् विवाह के मुख्य कार्य में सभी सगे-सम्बन्धियों और मित्रों को निमन्त्रित किया जाता है और उनको खिलाने-पिलाने में खुले हाथों धन खर्च किया जाता है। जितने ही अधिक

कुछ जातियों में विशेषकर विचित्र रिवाज चल पड़े हैं, उनका यहाँ उल्लेख करना अच्छा रहेगा। कड़वा कुणबियों में एक विशेष नक्षत्र आने पर ही विवाह होता है और वह नक्षत्र तेरह वर्ष में आता है इसलिए दूसरे लोग कहते हैं (यद्यपि ये स्वयं तो उसे स्वीकार नहीं करते) कि इन लोगों में कई बार बालक के जन्म लेने से पहले ही इस आशा पर विवाह तय हो जाते हैं कि एक गृहस्थ के लड़का होगा

आदमियों को भोजन कराया जाय कन्या का पिता अपने को उतना ही अधिक सम्मानित और सन्तुष्ट अनुभव करता है। दहेज की बची हुई रकम भी उसी समय अदा कर दी जाती है। यह दहेज यद्यपि दोनों वर्गों की हैसियत के अनुसार कमो-बेश होता है परन्तु, वह कन्या के पिता को कर्ज व कठिनाई में बाँधने के लिए काफी होता है। जब तक अच्छी-सी रकम देना मन्जूर न करे, अच्छे कुल का वर नहीं मिलता; और, जब तक सब लोगों को निमन्त्रित करके खूब अच्छी तरह जीमन न किया जाय तब तक कन्या के पिता का कोई मान नहीं करता और सभी उसे मक्खीचूस या दरिद्री कहते हैं। इसी कारण उच्च कुल के ठाकुर अपने यहाँ पुत्री का होना पसन्द ही नहीं करते। दूसरा कारण यह है कि मिथ्या और अन्धाभिमान के कारण वे यह पसन्द नहीं करते कि कोई मनुष्य उनको अपना साला या ससुर कहे।

लड़कियों को मार देने का जघन्य अपराध राजपूतों तक ही सीमित नहीं है, अहीरों की भी कुछ जातियाँ समान रूप से इस पाप की भागीदार हैं। हमें याद है कि एक बार हमने एक गाँव के अहीर मुखियों से बात-चीत की थी। उस गाँव में अस्सी सन्तानों में केवल दस लड़कियाँ जीवित थीं। उन्होंने कहा, 'साहब, बनियें अथवा दूसरे लोगों में ही लड़कियों का जन्म लेना ठीक है, परन्तु, हमारी जाति में तो लड़कियाँ या तो जीवित नहीं रहतीं, या बहुत कम जन्म लेती हैं।'

—Article on the Landed Tenures in the North-West Provinces, Benars Magazine for October, 1905.

—'People of India' by Sir H. Risley, 2nd ed. p. 171.

पाटीदारों में भी कन्या के पिता को बहुत खर्च करना पड़ता था। उनमें से बहुत लोग जन्म-भर कर्जा नहीं चुका पाते। कन्या होने पर पिता कर्ज से दब जायगा और सम्बन्धियों में नीचा पड़ जायगा इसलिए वह एकान्त में जाकर बच्ची को ठिकाने लगा देता था। नड़ियाद के प्रसिद्ध देसाई विहारीदास अजू भाई उपनाम भाऊ साहेब और उनके बड़े पुत्र हरिदास के प्रयत्नों से इस जाति के लोगों को सुखी करने हेतु कुछ नियम चालू किए गए हैं। इससे अब तक दुस्सह दुःख सहते आए लोगों को राहत मिलेगी इसलिए वे महानुभाव आशीर्वाद के पात्र हैं। (गु. अ.)

और दूसरे के लड़की[3]। भरवाड़ जाति के गड़रिये दस वर्ष में एक बार विवाह का लग्न निश्चित करते हैं और विवाह-विधि सम्पन्न करने को राजपूत या अन्य ठाकुर से भूमि का टुकड़ा मोल लेते हैं। उक्त कारणों से ही इन लोगों को भी दो-दो या तीन-तीन मास के बच्चों का विवाह कर देना पड़ता है। जिस भूमि पर एक बार विवाह हो जाता है उस पर दुबारा विवाह नहीं हो सकता न उसे खेती के काम में ही ला सकते हैं इसलिए उसे चरागाह के रूप में छोड़ दिया जाता है। इस स्थान पर ये गड़रिये कोरणी का काम किया हुआ एक लकड़ी का स्तम्भ रोप देते हैं जो इस बात का सूचन करता है कि वह भूमि किस कारण खाली रखी गई है।

लड़के को 'वर' और लड़की को 'कन्या' कहते हैं। सगाई का दस्तूर नारियल दे कर किया जाता है जो कभी-कभी सोना जवाहरात से जड़ा हुआ होता है। यह नारियल छोटे घराने वाले के यहाँ से भेजा जाता है और जो कन्या का पिता अपने से बड़े खानदान में सम्बन्ध करना चाहता है उसको समानता के लिए बराबर का धन तौल कर देना पड़ता है। यदि दोनों कुल बराबर के समझे जाते हैं तो कन्या का पिता सम्बन्ध की बात चलाता है और ऐसे अवसर पर आपस में धन लेने देने की कोई बात नहीं होती। जब वर उच्च कुल का होता है तो उसे विवाह करने में कोई कठिनाई नहीं होती और कई लोग अपने-अपने प्रस्ताव उसके पास भेजते हैं। तब कुल-पुरोहित अथवा किसी सम्बन्धी को भेजा जाता है कि वह लड़की को प्रत्यक्ष देखकर यह विश्वास करले कि वह अन्धी, लंगड़ी या अन्य किसी शारीरिक दोष से पीड़ित तो नहीं है और सब तरह से योग्य है। कहते हैं कि वह पुरोहित, या जिसको हम गुरु कहते हैं, ऐसे अवसर पर अपनी थैली भरता है और अपनी रकम बढ़ाने के लिए अपने यजमान को धोखा देकर या तो कन्या का दोष प्रकट नहीं करता या उसके गुणों का बढ़ा-चढ़ाकर बखान करता है। ऐसे प्रसंगों पर दग़ा करने वाले गुरु के लिए हिन्दुओं में एक कहावत प्रचलित है कि 'नरक में डूबने के लिए राजा जितना पाप तीन मास में और उपाश्रय का महन्त तीन दिन में बटोरता है उतना पाप गुरु तीन घण्टों में कमा लेता है।'

सम्बन्ध तय हो जाने के बाद सगाई का दस्तूर होता है जो इस बन्धन को और भी दृढ़ कर देता है। दोनों पक्षों के सम्बन्धी वर के पिता के घर एकत्रित

---

3. राजमहल के निकट की पहाड़ियों में ऐसी चाल है कि यदि दो पड़ोसियों की की स्त्रियाँ गर्भिणी हों तो यह तय कर लिया जाता है कि यदि एक के पुत्र और दूसरी के पुत्री होगी तो उनका विवाह कर दिया जायगा। (Asiatic Researches, IV, p. 63)

[जन्म लेने से पहले ही बच्चों की सगाई कर देने का रिवाज उत्तर भारत में बहुत चलता है; इसे 'अदला-बदला' कहते हैं।]

होते हैं। वहाँ दस्तूर करने के लिए पत्थर अथवा धातु की छोटी-सी-गणेश-मूर्ति[4] का पूजन किया जाता है। उस मूर्ति को पहले जल से फिर दूध से स्नान कराया जाता है और शास्त्रोक्त पञ्चामृत स्नान की विधि का अनुसरण किया जाता है, फिर मूर्ति के ललाट पर चाँदला (तिलक) लगाते हैं। वे इस देव की 'विघ्नराज' अर्थात् कठिनाइयों को सरल करने वाले देवता के नाम से पूजा करते हैं और कई बार इस श्लोक का उच्चारण करते हैं—

ॐ वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ !
अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सिद्धिद !

'हे बांके मुख और विशाल शरीर वाले, करोड़ों सूर्य के समान कान्ति वाले और सब कार्यों में सिद्धि देने वाले देव ! मेरे काम में कोई विघ्न न आवे, ऐसा करो।'

इसके बाद, कन्या का पिता वर के पिता को नमस्कार करता है और शुभ लक्षण के प्रतीक कुंकुम से उसके पैरों को रंग देता है; फिर उसकी अञ्जली में सुपारी, हल्दी और पुष्प देता है; यह विधि इस बात को सूचित करती है कि उसने अपनी कन्या की सगाई कर दी है। तदनन्तर, वह वर के ललाट पर तिलक लगा कर उसको नारियल देता है; यदि नारियल को (सोना, जवाहरात से) मँढ़ने की सामर्थ्य न हो तो उस पर कुंकुम की टिपकियाँ लगाकर एक रुपया रख देता है। इसके बाद कुलगुरु उभय पक्ष की वंशावली बोल कर घोषणा करता है कि दस्तूर सम्पन्न हुआ। घर की स्त्रियाँ पड़ोसिनों सहित उस अवसर के अनुकूल गीत गाती हैं और धनियाँ मिले हुए गुड़ की डलियाँ बाँटती हैं।

आम रिवाज तो यह है कि सगाई छूट नहीं सकती परन्तु अलग-अलग जातियों मे अलग-अलग तरह की प्रथा प्रचलित है। राजपूतों मे, कदाचित् सगाई होने के बाद वर की मृत्यु हो जाय तो उसकी पत्नी होने वाली लड़की को विधवा मान लिया जाता है और वह फिर विवाह के योग्य नहीं समझी जाती। इसके विपरीत, कुछ ब्राह्मण ऐसे हैं जो विवाह में पाणिग्रहण से पूर्व सम्पन्न हुई सगाई या अन्य किसी भी विधि को बन्धन नहीं मानते। प्रायः वे सगाई के बाद यदि लड़के की मृत्यु हो जाय तो लड़की को विधवा नहीं मानते और कदाचित् जिस लड़के से सगाई हुई है वह किसी भयङ्कर रोग से ग्रस्त हो जाय तो जातिवालों की अनुमति लेकर उसकी जीवितावस्था में ही दूसरे लड़के से विवाह किया जा सकता है।

कँड़वा कुणबियों में जब किसी लड़की के लिए वर नहीं मिलता है तो एक फूलों के तुर्रे से उसका विवाह कर दिया जाता है। दूसरे दिन उन पुष्पों को कुएं में

4. कहीं-कहीं केवल पीली या काली मिट्टी के छोटे-से ढेले को ही गणेश-मूर्ति का प्रतीक बना लिया जाता है। (हि. अ.)

डाल देते हैं; जब उस वर का इस तरह विसर्जन हो जाता है तो वह विधवा पुनर्विवाह या 'नांता' करने योग्य हो जाती है। इसी प्रकार किसी कन्या का 'हाथ-वर' के साथ विवाह कर देने की भी प्रथा है। यह वर जाति में से कोई भी पुरुष हो सकता है और पहले ही यह तय कर लेता है कि विवाह के बाद अमुक रकम लेकर अपनी नव-परिणीता को तुरन्त छोड़ देगा। इस तरह विमुक्ता स्त्री भी 'नांता' कर सकती है।

ये सब तरकीबें सिर्फ इसलिए की जाती हैं कि खर्चा कम पड़ता है। दुलहिन के पिता को 'नांता' के अवसर पर कोई खर्च नहीं करना पड़ता सिवाय इसके कि वर के साथ जो इष्ट-मित्र आते हैं उनको खिलाना-पिलाना पड़ता है। दुलहिन के लिए कपड़े भी वर ही लाता है। अविवाहिता कन्या का 'नांता' किसी हालत में नहीं हो सकता।

जब कन्या नौ या दस वर्ष की हो जाती है तो ज्योतिषी को बुलाया जाता है और वह विवाह के लिए शुभ मुहूर्त निश्चित करता है। यह ध्यान रखा जाता है कि कुटुम्ब में कोई शोक का समय हो तो उसे टाल दिया जाय। जब विवाह का मुहूर्त निकल जाता है तो गुलाबी रंग के छींटे देकर 'कुंकोत्री' (कुंकुपत्री) अथवा निमन्त्रण-पत्र वर और कन्या, दोनों ही पक्षों के सम्बन्धियों को भेजी जाती है। कुंकुपत्री का मजमून कुछ इस तरह का होता है—

"स्वस्ति श्री अहमदाबाद महाशुभस्थाने पूज्याराध्ये सकल सद्गुणनिधान, परोपकारपरायण, सकल कलागुणजाण, चतुर शिरोमणि, चौदहविद्याविद् सर्वोपमायोग्य सेठजी श्री 5 सामलदास बेचरदास तथा सेठ करमचन्द परमचन्द चिरंजीवी योग्य श्री महुवा बन्दर से लिखी शाह आत्माराम भूधरदास की जय गोपाल (कृष्ण) बंचना। अपरं च यहाँ सब कुशलमंगल है आपके कुशलमंगल का समाचार लिखावें। विशेष यह है कि बहिन कनकू बाई का लग्न चैत्र वदी 2 बुद्धवार का ठहराया है सो इस अवसर पर सपरिवार जल्दी पधारना। आपके पधारने से सब शोभा होगी।"

इसके पश्चात् संवत और मिति लिखी जाती है। यदि किसी पूर्व निमन्त्रण पर कभी ध्यान नहीं दिया गया हो तो पत्र लिखने वाला अन्त में इतना और लिख देता है—

"भाई छगन के विवाह पर आपका पधारना नहीं हुआ; अगर इस मौके पर आप नहीं आए तो आपका हमारा साथ बैठ कर पानी पीने का भी व्यवहार नहीं रहेगा। थोड़े लिखे में ही आप अधिक मान लेना।"

लग्न से बीसेक दिन पहले वर और कन्या, दोनों ही के माता-पिता के घरों की अच्छी तरह घुलाई-सफाई कराई जाती है; धनवान तो अपने घरों में मोतियों की मालाएं तथा सुन्दर-सुन्दर बेलबूटेदार पर्दे लटका कर सजावट करते हैं और सामान्य लोग पत्तों व फूलों की बन्दनवार बांधते हैं। आंगन में, सामने ही

'मण्डप' बनाया जाता है; गरीब के घर पर तो साधारण झोंपड़ी जैसा ही मण्डप बनता है. परन्तु, जहाँ धनवानों का मामला है वहाँ वे उसको बहुत शोभायमान महल जैसा बनाते हैं; दर्पणों की पंक्ति लगाते हैं, झाड़-फानूस लटकाते हैं, पर्दों की सजावट करते हैं, नरम-नरम गलीचे बिछाते हैं और बहुत-सी तड़क-भड़क की चीजें इकट्ठी करते हैं। मण्डप के एक कोने में काष्ठ-स्तम्भ स्थापित किया जाता है जिसको 'मणि-स्तम्भ' कहते हैं; फूलों एवं अन्य सजावट की चीजों से सुशोभित करके इसकी पूजा करते हैं। मण्डप में नवग्रह, गणपति विघ्नराज और पितरों का पूजन होता है। पितरों का पूजन इसलिए किया जाता है कि विवाह की समाप्ति तक कुटुम्ब में जन्म या मरण के कारण कोई आशौच न आय।

रहने के घर में 'गोत्रज' की विधि सम्पन्न की जाती है। दीवार पर सफेदी करके कुंकुम की एक, फिर दो, फिर तीन, इस प्रकार सात तक शंकु के आकार में टिपकियाँ लगाई जाती है। नीचे ही नीचे सात टिपकियों के नीचे सात घृत की टिपकियाँ लगाते हैं, जो गर्मी से पिघल कर धीरे-धीरे नीचे उतरती है। इस प्रकार 'गोत्रज' अर्थात् वंशावली के झाड़ का पूजन होता है।

वर और वधू को (अपने-अपने घर में) अपनी-अपनी हैसियत और सामर्थ्य के अनुसार वस्त्राभूषणों से खूब सजाते हैं। राजपूतों में तो वर को लाल रंग का रेशमी पायजामा पहनाते हैं, जो उसके अन्य वस्त्रों की तरह सुनहरी ज़री के काम से सजा हुआ होता है; यदि वह ब्राह्मण या बनिया हो तो लाल रेशमी किनार की सफेद धोती और ऊपर केसरिया या कसूमल रंग की अंगरखी पहनता है तथा उसी रंग का कमरबन्द या दुपट्टा बाँधता है। पगडी हमेशा लाल रंग की होती है। कन्या का पिता उसको केसरिया रंग का दुपट्टा भेट करता है जो 'उत्तरीय' कहलाता है। कन्या सफेद रेशम की काँचली और केसरिया अथवा कसूमल रंग का घाघरा पहनती है और ऊपर सफेद रेशम की चूनड़ी ओढ़ती है जिसके बीच-बीच में लाल डबके होते हैं और पल्लू भी लाल रंग का ही होता है। यह वस्त्र कमर पर लपेट कर कन्धों पर होता हुआ, मस्तक को ढाँकता है। सिर पर इसके सिवाय और कोई आवरण नही होता। विवाह विधि के समय उसके माथे पर एक तिकोना 'मोर' बाँधा जाता है जो मुकुट जैसा होता है; इसके ऊपर एक चोकोर लाल रूमाल डाल दिया जाता है जो अवगुण्ठन का काम करता है। वर और वधू, दोनों ही के दाहिने हाथों में 'मींढल' या कंकण बाँधे जाते हैं जो विवाह की समाप्ति पर खोल दिए जाते हैं। हिन्दुओं में गरीब से गरीब घर के लड़के लड़कियों को, जिनका विवाह होता है, कम-से-कम एक माला या कण्ठी अवश्य पहनाते हैं जिसके दानों में एक दाना सोने और एक मूंगे के क्रम में होता है: यह माला प्राय. माँग कर या किराए पर लाई जाती है। अब वह वर 'वर-राजा' की स्थिति और पद प्राप्त करता है—उसके हमजोली समवयस्क उसके साथ रहते हैं; इन्हीं में से एक मित्र, जो उसी के घर

में से कोई या छोटा भाई होता है, हमेशा उसके साथ-साथ रहता है; उसको 'अनुवर'[5] कहते हैं। वह छोटों में से इसलिये नियत किया जाता है कि नव-विवाहिता वधू उससे बिना घूँघट निकाले ही बात कर सकती है और उसके द्वारा आपस में सन्देश भेजा जा सकता है। वही वर का खजांची भी होता है और उसके लिये चीजें खरीदता है तथा 'साले की कटारी' व 'गुरु की पोशाक' आदि भेंट भी विवाह की समाप्ति पर वही प्रस्तुत करता है।

रात्रि के समय वर-राजा (या बींद-राजा) अपनी सद्यः प्राप्त राजपदवी की साज-सज्जा के साथ सवारी लगाकर निकलता है। जलूस के आगे-आगे गाना-बजाना होता चलता है जिसमें गायक और नर्तकियाँ होती हैं; उनके पीछे वर के सम्बन्धी व अन्य वराती हाथी-घोड़ों पर सवार होकर चलते हैं; उनके चारों ओर मशालची व घुड़सवार आदि रहते हैं; बन्दूकें चलाई जाती हैं, गुलाल उड़ाई जाती है और शंख व 'बाँकिया' जोर से बजाया जाता है; ढोल की गाज से कान बहरे हो जाते हैं; लोगों के चलने से हवा में इतने गर्द के बादल उड़ते हैं कि जलती हुई मशालें भी दिखाई नहीं देतीं। इनके पीछे चाँदी की छड़ियाँ लिए हुए लाल अंगरखियाँ पहने चोबदार चलते हैं और फिर शाही छत्र लगाए हुए प्रसन्न मुद्रा में बींद-राजा आता है; उसके दोनों ओर चँवर डुलते हैं, वह बहुमूल्य साज और गहनों से सजी हुई घोड़ी पर सवार होता है और उसके हाथ में विवाह का चिन्ह-स्वरूप वह जड़ाऊ नारियल होता है। उसके पीछे लाल खोलियों में मढ़े हुए नक्कारे लिए बड़ा ऊँट चलता है; इन नक्कारों पर बराबर चोट पड़ती रहती है; और सबके पीछे विवाह के गीत गाती हुई स्त्रियों की टोली चलती है।

वर-राजा के इन जलूसों को देख कर कुछ-कुछ उन शोभा-यात्राओं का भान हो जाता है जो, पुराने जमाने में, उस समय निकाली गई थीं जब सिद्धराज जयसिंह मालवा-विजय करके आया था और अणहिलपुर में उसका स्वागत किया गया था अथवा जब कुमारपाल अपने श्वेताम्बर जैन साधुओं की मण्डली सहित किसी कठिन शास्त्रार्थ में दुर्जय शिवभक्तों को परास्त करके लौटा था।

जब जलूस उनके निवास स्थान के बाहर होकर निकलता है तो वर के घराने के मित्र बाहर आकर वर राजा को नारियल भेंट करते हैं। अन्य सभी जलूसों के लोग, चाहे वह गाँव का ठाकुर ही क्यों न हो, वर के लिए मार्ग छोड़ देते हैं; और, यदि दो वर-राजा आमने-सामने मिल जावें तो वे एक दूसरे के लिए आधा-आधा

---

5. यह बालक प्रायः वर का छोटा भाई या भतीजा होता है। राजस्थान के कई हिस्सों में इसे 'विन्दायक' या 'विनायक' कहते हैं। इसके लिए भी प्रायः वैसे ही मूल्यवान् वस्त्र बनवाए जाते हैं जैसे वर के लिए। कन्याओं के भी छोटे-भाई या भतीजे को विनायक बनाते हैं। 'अनवर' का अर्थ भी 'अनुवर' या 'छोटा वर' समझना चाहिए। (हि. अ.)

रास्ता दे देते हैं। इस प्रकार गाँव में चक्कर लगा कर वर की सवारी वापस उसी घर पर आ जाती है जहाँ से रवाना हुई थी और वहाँ पर 'बींद की माँ' उसका स्वागत अथवा 'न्यूनचन'[6] करती है; इस विधि में वह विशेष प्रकार का मूक अभिनय-सा करके यह जताती है कि "इस संसार में जरूरी से जरूरी वस्तु भी मेरी नज़रों में पुत्र-प्रेम के आगे तुच्छ है।" पहले एक रोटी और फिर पानी का पात्र वर के मस्तक के चारों ओर घुमाकर फेंक देती है; फिर, अपने हाथ में 'सम्पत'[7] अर्थात् चावल से भरे हुए दो पात्र जिनके मुख आपस मे मिले हुए होने से बन्द होते हैं, ले लेती है और उसे वर-राजा के पैरों में रख देती है; ये पात्र सब तरह की सम्पत्ति के प्रतीक माने जाते हैं। पुत्र भी इस अभिनय में पीछे नहीं रहता; वह उन सम्पुट पात्रों पर पैर रखता हुआ अपनी माता से मिलने को जल्दी से घर में प्रवेश करता है।

विवाह के लिए निश्चित तिथि से पहले के दिनों में नित्य ही संध्या समय वरराजा के सगे-सम्बन्धियों के घर से उसकी 'बिन्दौरी'[8] निकलती है; इससे पूर्व उसी सम्बन्धी के घर पर विवाह में सम्मिलित होने को आए हुए मेहमानों का जीमण होता है।

जब विवाह का समय आता है तो वींदराजा के सगे-सम्बन्धी और इष्ट-मित्र ऐसा ही जलूस बना कर उसको कन्या के गाँव में ले जाते हैं। यह 'जान' प्रायः लग्न के पहले दिन तीसरे पहर तक पहुँचती है और गाँव के बाहर ठहर जाती है। तब

---

6. न्यून अर्थात् कम; न्यूनचन = सब से कम, कुछ नहीं। (हि. प्र.)
7. अंग्रेजी संस्करण की पाद-टिप्पणी मे 'सम्पत का हिन्दी और मराठी शुद्ध रूप 'सम्पत्ति' दिया गया है। वास्तव मे, यह शब्द 'सम्पुट' है जो अंग्रेजी 'सैण्डविच' का सा अर्थ देता है। दो समान वस्तुओं के बीच में किसी वस्तु को रखना सम्पुटित करना कहा जाता है। यहाँ चावल को दो मिट्टी के पात्रों से सम्पुटित किया जाता है। इसकी ध्वनि यह हो सकती है कि संसार की समस्त सम्पदा मिट्टी से सम्पुटित है, इसके दोनों ओर मिट्टी है—पहले भी और पीछे भी। इस क्रिया के द्वारा सम्भवतः माता अपने पुत्र को यही तत्त्वबोध कराती है और इंगितज्ञ पुत्र इस ज्ञान को प्राप्त करके उस तुच्छ मृण्मयी संसार-सम्पदा को रौंदता हुआ आगे बढ़ता है।
मन्त्रजाप और स्तोत्र पाठ करने वाले भी मंत्र अथवा स्तोत्र को अमुक प्रकार से सम्पुटित करके उसे अधिक प्रभावशील बनाते हैं। (हि. प्र.)
8. बिन्दौरी, बिन्दौरा या बिनौरा शब्द बींद से बने हैं। वर को बीन्द कहते हैं। शायद यह शब्द मुसलमानों के आने के बाद चालू हुआ है। अरबी में लड़के या पुत्र को 'बिन' कहते हैं; इसी से बींद बना हो और बींद, बिना या बिन का जलूस 'बिनौरा' या बिन्दौरा कहलाया हो। (हि. प्र.)

सन्ध्या के समय वर का श्वसुर अपने सम्बन्धी स्त्री-पुरुषों, मशालचियों और गाने-बजाने वालों को साथ लेकर वर के डेरे पर जाता है और उसको व 'जान' को गाँव में उस स्थान पर ले जाता है, जो 'जनवासे' के लिए निश्चित होता है।[9] दुलहिन के घर के दरवाज़े पर उस समय पत्तों की वन्दनवार बांधी जाती है,–जिसको, वर यदि वह, राजपूत हो तो अपने भाले से तोड़ देता है और यदि वह किसी अन्य जाति का होता है तो वह ज्यों की त्यों रहने दी जाती है। कालान्तर में वह सूख कर अपने आप नष्ट हो जाती है।

लग्न के दिन प्रातःकाल से ही कन्या की माता और अन्य सम्बन्धिनी स्त्रियाँ कन्या का श्रृंगार करने में योग देती हैं और उसको लाल रँगा हुआ हाथीदाँत का चूड़ा पहनाती हैं। इधर दूल्हे को उसके मित्र श्रृंगारते हैं और फिर गाजे-बाजे सहित जलूस बना कर उसको दुलहिन के घर ले जाते हैं। वहाँ, कन्या की माता उसका स्वागत करती है और 'न्यूनचन' की विधि पूरी की जाती है। वह वरराजा के ललाट पर राजचिन्ह का तिलक लगाती हैं, फिर एक-एक करके बैलों का जूड़ा, मूसल, रई (छाछ बिलोने की), चरखा, सम्पुट, तीर, गेहूँ की रोटी और राख की पोटली उसके मस्तक के चारों ओर फिराकर फेंक देती है। राख की पोटली से तात्पर्य है कि वर के शत्रुओं की आंखों में धूल पड़े।

'न्यूनचन' हो चुकने के बाद वर मण्डप में जाकर बैठ जाता है। इसके बाद कन्या का पिता वर के चरण धोता है और उसके ललाट पर लाल तिलक लगाता है; फिर वह[10] कन्या को लाकर उसकी बगल में बिठा देता है। पुराने जमाने मे 'गोमद' या गोमेध की क्रिया होती थी उसी के स्मरणार्थ, जब वर मण्डप में आता है तो, एक

9. इस प्रकार आगे या सामने स्वागतार्थ जाना 'सामैया' या 'सामेला' कहलाता है। इस प्रकार अगवानी या सामैया विवाह के अवसर पर ही किया जाता हो, यह आवश्यक नहीं है। जब कोई बड़ा आदमी आता है तो उसके सम्मान में आगे जाकर लोग स्वागत करते हैं; उदाहरण के लिए प्रथम भाग के उत्तरार्द्ध मे जगदेव परमार की कथा का अवलोकन करना चाहिए।

यूरोप के सामन्ती इलाकों मे भी प्राचीन समय में ऐसा प्रचलन था जिसका उदाहरण देखिए—'ईसवी सन् 1563 के अगस्त मास की 9 तारीख को क्ल (CL) का जैक्युस (Jaques) यू (Eu) मे आया तब सब सामन्त तो अपने-अपने अश्वों पर सवार होकर क्रील (Criel) तक उसकी अगवानी करने गए और जब वह किले पर पहुँचा तो मेयर (Mayor) ने दो शराब से भरे हुए ढोल (Drums) उसको भेंट किए।

10. उच्च वर्णों में कन्या का मामा यह विधि सम्पन्न करता है। लग्न के पहले दिन या दो दिन पहले वह माहेरा देता है और विवाह पूरा होने तक वहीं रहता है।

गाय लाकर कोने में बांध दी जाती है। उसको घास नीर देते हैं और वरराजा और उसके सम्बन्धी उसका पूजन करते हैं। लग्न का मुहूर्त बताने के लिए वर के पास एक जलघडी ला कर रख दी जाती है अथवा कभी-कभी लग्न के लिए वह समय निश्चित किया जाता है जब सूर्य का विम्ब आधा डूब जाता है (यह गोधूलि लग्न कहलाता है)। जब शुभ मुहूर्त आता है तो कन्या का पिता उसका हाथ वरराजा के हाथ में देकर 'कृष्णार्पणमस्तु' कहता है। जब कन्या का पिता इस प्रकार पाणिग्रहण करा देता है तो गुरु वर और वधू के गले में वरमाला पहनाता है जो लाल सूत के चौबीस-चौबीस तारों से बनाई जाती है। उसी समय वर का कोई बालगोठिया (बालमित्र) वर और वधू के जुड़े हुए हाथों पर एक लाल रुमाल डाल देता है और इसके नीचे ही वह उनको सुपारी पकड़ा देता है। नव वरवधू का युग्म कोई एक घण्टे तक मण्डप में बैठा रहता है।

मण्डप के बाहर 'चंवरी' होती है। इस चत्वरी[11] अथवा चौखूंटे स्थान के चारों कोनों पर नौ-नौ[12] मिट्टी के या धातु के घड़े एक पर एक रखे जाते हैं और इनके पास बांस रोप कर उनके सहारा लगा दिया जाता है। बीच में एक यज्ञकुण्ड बनाया जाता है और वर-वधू उसके पास बैठते हैं। पुरोहित हवन करता है और वर के दुपट्टे का छोर वधू की साड़ी से बांध देता है।[13] दुलहिन की माता थाल में भोजन सजा कर लाती है जिसमें वर और वधू दोनों साथ खाते हैं; पहले दुलहिन अपने दूल्हे को कौर खिलाती है फिर वह उसको खिलाता है। जब तक ये दस्तूर होते हैं स्त्रियां बराबर गीत गाती रहती है। ये गीत प्रायः राम और कृष्ण की वधुओं सीता और रुक्मिणी को लेकर कवितावद्ध होते हैं अथवा कभी-कभी हँसी-मजाक के होते हैं जिनमें अक्सर अश्लीलता भी आ जाती है। गुजरात के एक प्रख्यात कवि द्वारा प्रणीत 'सीता-विवाह' नामक गीतकाव्य में से एक गीत यहां उद्धृत करते हैं—

महागुरु ने पाया हुं लागी ने, नमुं गणपतिराय ;
सिद्धि बुद्धि हुं जाचुं छूं ते थकी, मननी इच्छा पूराय ;
राम केरो विवाह हुं गाऊं छूं।

जाणुं पिंगल नहि, पण मन-विषे, कविता रचवानुं कोड़ ;
शक्ति सर्वे योजीने हुं गाऊं छूं, कवियो देशो मा खोड़ ;
राम केरो विवाह हुं गाऊं छूं।

---

11. चत्वरी का ही रूप चँवरी' है; यही देशी रूप में चबूतरी हो गई है। (हि. प्र.)

12. ये घड़े नीचे से ऊपर की ओर छोटे होते चले जाते हैं। (हि. प्र.)
13. यह 'गठजोड़ा' या 'ग्रन्थिबन्धन' विधि है। (हि. प्र.)

दशरथ राजा अयोध्या तणों धणी, तेना कुंवर श्रीराम;
जनकपुरी नो जनक राजा पामीयो, कुंवरी सीताजी नाम ;
राम केरो विवाह हुं गाऊं छूं ।

छे आ वैकुंठपति श्रीरामजी, सीता लक्ष्मी कहेवाय ;
बन्ने मानवी देह धारी वरयां, गातां ते पाप जाय ;
राम केरो विवाह हुं गाऊं छूं ।

जन्म्यां जानकी ते प्रथम कहुं, पछी विवाहनी वात ;
ऋषि वसता त्यां रावणे वधू करी, कर्यो महा उतपात;
राम केरो विवाह हूं गाऊं छूं ।

अन्त में, वर और वधू अग्नि-कुण्ड के चार फेरे खाते हैं और विवाह-विधि पूर्ण होती है ।

यदि वर राजपूत होता है तो कई बार वह स्वयं विवाह करने न जाकर अपनी तलवार या खांडा भेज देता है जो उसका ही प्रतिरूप समझा जाता है और सभी दस्तूर उसी प्रकार पूरे कर लिए जाते हैं जैसे वह स्वयं उपस्थित हो, सिवाय इसके कि दो फेरे खांड़े के साथ लिए जाते है और शेष दो, जब वर वधू का मिलन होता है तब लिए जाते हैं । यह प्रथा शायद विवाह को गुप्त रखने की आवश्यकता से उत्पन्न हुई होगी और बाद में सुविधा एवं खर्चे की कमी के कारण इसको चालू रखा गया होगा ।[14]

जब मंगल-फेरों की विधि सम्पन्न हो चुकती है तो वर और वधू ध्रुव तारा एवं सप्तर्षियों का दर्शन करके उनका पूजन करते हैं । इसके अनन्तर, उनके सगे-सम्बन्धी अपनी-अपनी भेंट (रुपये या गहने) उनको देते है; यह सब भेंट उनके माता-पिता ग्रहण करते है ।

---

14. टॉड कृत 'राजस्थान' में देखिए राणा रत्नसिंह (Ratan Singh) का वृत्तान्त । राणा रत्न सिंह ने आमेर के राजा पृथ्वीराज की पुत्री से खांडा भेज कर विवाह कर लिया था—परन्तु, बाद में बूंदी के राव सूरजमल्ल ने उसकी मांग की और विवाह करके ले गया । पूर्व विवाह बहुत गुप्त रखा गया था, इसी का यह परिणाम हुआ । (Annals and Antiquities of Rajasthan, ed. 1920; p. 359)

परन्तु, बाद के इतिहासकार कविराज श्यामलदास, गौरीशंकर जी ओझा आदि इसका उल्लेख नहीं करते हैं ।

महाराणा रत्नसिंह कार्तिक सुदि 5 संवत् 1584 (29-10-1527) को गद्दी पर बैठा था और संवत् 1591 से पूर्व उसकी मृत्यु हो गई थी । —वीर विनोद

आमेर के राजा पृथ्वीराज का समय 1503 से 1527 ई० था । →

अब, वर-वधू वर के घर जाते हैं, जहाँ वर की माता उन दोनों का 'पोंखन' करती है। फिर, वे 'गोत्रज' का पूजन करते हैं; एक पात्र में (पानी डाल कर) सुपारी छुहारों और रुपयों के सात-सात नग डाल दिये जाते हैं जिनसे वर और वधू जुआ-जुई (द्यूत) खेलते हैं। स्त्रियां कहती हैं कि इस खेल में जो जीतता है वही वैवाहिक जीवन में अपर पक्ष से प्रबल रहता है। वर का पिता अपने मेहमानों को कपड़े लत्ते और सिरोपाव भेंट करता है जो ढालों में या थालों में इस तरह सजाए जाते हैं कि चारों तरफ (कुछ-कुछ) लटकते रहते हैं।

जब वर-राजा की बरात विदा होती है तो वधू के सगे-सम्बन्धी वर पक्ष वालों पर गुलाब-जल छिड़कते हैं और उनकी छाती व पीठ पर कुंकुम से पंजे का निशान लगा देते हैं। वर की गाड़ी के साथ मिठाइयों से भरा हुआ 'माट' (बड़ा मिट्टी का पात्र) बांध देते हैं और उसी के साथ 'राम दीवा' भी लटका देते हैं जिसका तात्पर्य यह होता है कि 'यह विवाह सम्पन्न होने से हम आपके घर में प्रकाश को प्रविष्ट कर रहे है।'' वर और वधू जिन नारियलों को विवाह विधि के समय हाथ में लिए रहते हैं उनको लेकर वे गाड़ी के पहियों के नीचे रख देते हैं कि जिससे वे भग्न हो जावें। गांव के बाहर आकर बारात वाले साथ आए हुए ब्राह्मणों, चारण-भाटों व गवैयों आदि को भेंट दे देकर विदा करते हैं। अब, जो बराती इधर-उधर हाथ-मुँह धोने गए होते है वे गाँव के तालाब पर इकट्ठे हो जाते हैं और फिर पूरी मण्डली घर की ओर रवाना हो जाती है।

दुलहिन अपने पति के साथ चली जाती है और एक मास तक उसके साथ रहती है, फिर अपने पिता के घर वापस आ जाती है। जब वह बारह वर्ष की हो जाती है तो पति के घर वाले उसको बुलावा भेजते हैं। वह बालिका प्रायः

प्राक्सी विवाह

यूरोप और अमेरिका में भी इस प्रकार के विवाह होते रहे हैं—

आंस्ट्रिया की रानी मारी थेरेसा की लावण्यमयी कन्या मारी आंत्वना का विवाह फ्रांस के राजा लूई 15वें के पौत्र लुई 16वें के साथ इसी विधि से हुआ था। यह विवाह 19 अप्रेल 1770 को हुआ। इसमें आर्क ड्यूक फर्डिनेण्ड राजकुमार का प्रतिनिधि बन कर गया था। वह निश्चित तिथि को बरात सजा कर राजकुमारी को ले आया और उसका वास्तविक विवाह मई, 1770 में हुआ।

इसी प्रकार नैपोलियन का विवाह आस्ट्रिया की आर्क डचेज़ मारी लुइसी के साथ हुआ था। इस विवाह में नेपोलियन का प्रतिनिधि राजदूत बार्थियर था। यह विवाह मार्च, 1810 ई० में हुआ।

अमेरिका में रहने वाले जापानी कई बार अपने देश से लड़कियों के चित्र मंगा कर ही शादी कर लेते हैं। ये चित्र मँगवाने और भेजने का काम एजेन्सियाँ करती हैं।

पिता का घर छोड़ते समय बहुत उदास होती है और उसी प्रकार रोने लगती है जैसे उसी उम्र के अंग्रेज बच्चे स्कूल जाते समय रोते हैं। उसके माता-पिता समझाते हैं, 'तेरी बहनें और अन्य काका-ताऊ की लड़कियाँ भी तो इसी तरह गई हैं और लौट आई हैं; तुझे ज्यादा दिन वहां थोड़े ही रहना पड़ेगा; फिर, तेरी बुआ या अपनी गाँव की अमुक लड़की, जो उसी गांव में ब्याही गई है, तुझ से लगातार मिलती रहेगी।' फिर वे वर के पिता को कहते हैं 'आप हमारी लड़की की सम्हाल रखना; यह आज तक गांव के बाहर नहीं निकली है और न कभी अपनी मां से ही घड़ी भर दूर रही है; आप इसको अपनी बुआ या मौसी के घर जाने देना और खयाल रखना कि दूसरे लोग इसे डरावें धमकावें नहीं।' तब श्वसुर कहता है, 'मुझे इसकी सुख-सुविधा की सबसे अधिक चिन्ता है और मैं आप से भी अधिक प्यार से इसे रखूंगा।' दूसरी विवाहिता लड़कियां भी हिम्मत बँधाती है, "चिन्ता मत कर, मैं भी तो जा कर आई हूं कि नहीं ?" तब वह बालिका पिता से मिल कर कहती है, "बापू, मुझे लेने कब आओगे ? जल्दी आना।" वह दस-पन्द्रह दिन में ही आने का वादा करता है यद्यपि उसका इरादा साल भर तक भी जाने का नहीं होता। बालिका उसको बार-बार सौगन्ध दिलाती है और मां से कहती है "देख मां, बापू को जरूर भेजना; और, मेरी गुड़ियों और खिलौनों को सम्हाल कर रखना, किसी को दे मत देना।" तब वह अपने सुसराल वालों के साथ चली जाती है और अधिकतर वहीं रहती है और अपने गांव में तो कभी-कभी ही आती है।

यूरोपीय देशों के रीति-रिवाजों और उनके द्वारा अपेक्षित मान हिन्दू स्त्रियों को यहां के पुरुषों से न तो मिलता ही है और न उसकी आशा ही की जा सकती है। तुलसीदास की सुप्रसिद्ध 'रामायण' के निम्न-पद्य में स्त्रियों के प्रति समादर का जो अभाव प्रदर्शित किया गया है वह यकी (Yankee) घड़ीसाज जैसे पुराने खयाल के लोगों को ही बहुत पसन्द आ सकता है। वह इस प्रकार है—

ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

एक किस्सा इस प्रकार है कि एक बार एक बादशाह ने अपने वजीर को चार आदमी लाकर पेश करने का हुक्म दिया, जिनमें एक अत्यन्त निर्लज्ज, दूसरा अति विनम्र, तीसरा डरपोक और चौथा ऐसा हो कि जिसमें भय का लेश भी न हो। वजीर ने आदाब बजाया और तुरन्त ही एक औरत को साथ लेकर हाजिर हो गया। बादशाह ने कहा, "यह क्या बात है ? मैंने तुम्हें चार आदमी लाने को कहा था !" वजीर ने उत्तर दिया, "बादशाह सलामत ! उन चारों के गुण इस एक में ही मौजूद हैं। यह अपने बड़ों के सामने घूंघट निकालती है, परन्तु जब यह किसी विवाह में जाती है तो ऐसी फोश गालियाँ गाती है कि जिसको सुनकर बड़े से बड़ा व्यभिचारी भी शर्मा जाय। यदि इसका पति रात को पानी पिलाने के लिए कहे तो इसको डर

लगता है, परन्तु यदि कोई इसका प्रेमी हो तो उससे मिलने के लिए यह अन्धकार में ही पहाड़ पर भी चढ़ जाय।"

स्त्रियों का अपमान करने की चाल, दर असल, मुसलमानों के आने के बाद घुस पड़ी है। पुराने जमाने में रानियां राजाओं के बराबर दरबार में बैठती थीं और सन्त-समाज मे ऋषियों के साथ उनकी पत्नियाँ बैठती थीं। आज भी; हवन करते समय पत्नी का साथ बैठना जरूरी है और कदाचित् किसी की स्त्री मौजूद न हो तो उसकी मूर्ति बनाकर और उसे वस्त्र पहना कर पास में बिठाते हैं। औरस पुत्र की आवश्यकता को लेकर ही विवाह की विधि को पवित्रता प्रदान की गई है। जिन राजपूतानियों की वीरता और पवित्रता के पुराने जमाने के इतने किस्से कहे जाते हैं उनकी वैसी ही इज्जत आज भी वे लोग करते हैं जिनके दिलों में उनके 'निकम्मे' स्वामियों के प्रति किंचित् भी आदरभाव शेष नहीं है। व्यापारी बनिया कहता है, "सयानी स्त्री का पुत्र मूर्ख होता है और मूर्ख स्त्री (अर्थात् उसकी स्वयं की माता या पत्नी) का पुत्र सयाना होता है।[15]

स्त्रियों की यह वश्यता दिखावटी ही है, वास्तविक नहीं; वे स्वयं भी इस दिखावे को बनाये रखना चाहती है और यदि प्रकट रूप से पति अपना अधिकार नहीं जताता है तो अप्रसन्न होती है। इस विषय में वे अपने शासक यूरोपीय वर्ग में जो

---

15. कैप्टेन मैकमरडो (Capt. Mac Murdo) ने कच्छ प्रान्त के विवरण (Transactions of the Literary Society of Bombay, vol. II; p. 226) में लिखा है कि 'घर का स्वामी 'तो प्रतिष्ठा और सम्मान देने वाली बातों की ओर से बिल्कुल बेखबर रहता है परन्तु उसकी स्त्रियाँ (क्योंकि जाड़ेचों में एक पति के एक से अधिक पत्नियाँ होती है) चुस्त, हिम्मती और प्रपची होती है। वे झाला, बाघेला, सोढा और गोहिल राजपूतों की लड़कियाँ होती हैं, जो ग्रास (गिरास) को देख कर पुत्री का विवाह करते है, आदमी को देखकर नहीं। ठाकुर की इन पत्नियों में से प्रत्येक के अलग-अलग सेवक, मवेशी, रथ, बैल आदि और पति की हैसियत के अनुसार एक पूरा गाँव या उससे कम उनके अधिकार मे होता है। हिन्दुओं में अन्य जातियों की अपेक्षा राजपूत स्त्रियां अधिक प्रसिद्ध है। वे बड़ी जीवट वाली, वीर और साहसी होती है तथा वृद्धावस्था में भी शरीर को सुघड़ और स्वच्छ रखने पर विशेष ध्यान देती है; यह बात अन्य देशी स्त्रियों में नहीं पाई जाती। राजपूतानियों के अंगराग और शृंगार-सामग्री यूरोपियन स्त्रियों की तरह अपने ही ढंग की होती है; अपने मुख अथवा शरीर की त्वचा की शोभा बढ़ाने के लिए ये बहुत ही उपयुक्त स्थान पर एक काली टिपकी लगा लेती है जो तिल या मस जैसा लगता है; शायद, धन और उच्च पद के बाद वे अपने शरीर के प्रसाधन को ही सबसे अधिक महत्व देती है।

प्रथाएँ प्रचलित हैं उनके प्रति आश्चर्य प्रकट करती हैं-और ये बातें इनकी समझ में नहीं आती हैं इसलिए प्रायः एक पौराणिक-कथा का सहारा ले लेती हैं।

वे कहती हैं "जब राम की पत्नी सीता को रावण हर ले गया तो उसने राक्षसों और उनकी पत्नियों को उसकी रखवाली पर नियुक्त किया। उन लोगों ने सीता की बहुत सेवा की इसलिए उसने वरदान दिया कि कलियुग में भारत पर राक्षसों का राज्य होगा और वे लोग अपनी पत्नियों का बहुत मान करेंगे।"

यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत पर ब्रिटिश-अधिकार को वे सीता के वरदान का ही फल मानती हैं और इसके साथ-साथ उनकी अपेक्षा स्त्रियों की वरिष्ठता को भी इसी का परिणाम समझती हैं।[16]

कम-से-कम एक अवसर ऐसा अवश्य आता है जब हिन्दू स्त्री को असाधारण मान प्राप्त होता है और उसकी बहुत अच्छी तरह सार-सम्हाल की जाती है। जब नव-विवाहिता को गर्भ धारण किए चार महीने हो जाते हैं तो उसके हाथ पर एक बाजूबंद बांध दिया जाता है जिसमें एक तावीज होता है जो उसको नजर लगने से बचाता है; यह तावीज एक काले रंग के वस्त्र का टुकड़ा होता है जिसमें हनुमान,

---

ये कोमल वासनाओं से भी शून्य नहीं होतीं, परन्तु अपने शराबी पतियों से ये कैसे प्रेम कर सकती हैं? और उच्च श्रेणी के लोगों तक इनकी पहुंच ही नहीं हो पाती। मुझे यह कहते हुये बड़ा दुख होता है कि ऐसी अपकीर्ति फैली हुई है कि इन सुन्दर और मनमोहिनी राजपूतानियों को सेवकों और नीचों से व्यवहार करने के लिए कई छलछन्द करने पड़ते हैं।"

वही लेखक आगे लिखता है. "राजपूत स्त्रियाँ बहुत कम या शायद ही कभी अपने बच्चों को दूध पिलाती हैं क्योंकि इससे उनको अपने सौन्दर्य के नष्ट हो जाने का डर रहता है।" उसने अन्यत्र लिखा है "कच्छ में आने से पहले मैंने यह कभी नहीं सुना था कि अपने रूप और कुचों के विकृत हो जाने के भय से स्त्रियाँ भ्रूण हत्यायें भी कर डालती हैं। गरासियों में भी यह चाल (प्रथा) है, परन्तु बहुत ज्यादा नहीं; यद्यपि मैं एक ऐसी स्त्री को जानता हूं जो पाँच बार गर्भस्राव कर चुकी है।" वही, पृ० 229–234

16. गुजरात में बहुत से लोगों की मान्यता है कि अंग्रेज लोग सीता का पूजन करते हैं। अंग्रेज या पुर्तगाली पादरी को प्रायः 'सीता-पादरी' कहते है। जब कोई यूरोपीय किसी ब्राह्मण या वैरागी से पूछता है, तुम कौन हो?' तो वह उस विदेशी को अपनी स्थिति अच्छी तरह समझाने के लिए कहता है हम 'सीता-पादरी' हैं।' रोमन कैथोलिक चर्च वाले कुमारी मेरी (क्राइस्ट की माता) का पूजन करते हैं, इसी से ऐसा विचार प्रचलित हुआ जान पड़ता है।

की मूर्ति से खुरचा हुआ सिन्दूर और चौराहे की धूल बंधी होती है। जिस दिन यह गण्डा बांधा जाता है उस दिन जीमन होता है और उसी दिन से, जब तक वह इसे बांधे रहती है, घर के कामकाज से उसे बरी (मुक्त) कर दिया जाता है, क्योंकि इंगलैण्ड की तरह भारत में भी—

"गर्भिणी सुन्दरियों और मत्स्य-कन्याओं को वह सभी वस्तुएं मिलनी चाहिं जिनकी उनको इच्छा हो।'[17]

छः या आठ मास का गर्भ होने पर फिर जातिभोज होता है और पुरोहित उन सब की उपस्थिति में हवन करता है। गर्भिणी[18] को किसी रिश्तेदार के घर ले जाते है जहाँ वह स्नान करती है और सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करती है। वहाँ से जुलूस बना कर गाजे-बाजे के साथ उसको पति के घर पर लाते हैं। जब वह चलती है तो उसकी सखियां उसके आगे-आगे सुपारियां और सिक्के बिखेरती हैं। घर पर उसका पिता स्वागत करता है जो इसी अवसर पर अपने गाँव से आया होता है। फिर वह बहुत से कपड़े, जवाहरात, नकदी और अन्य वस्तुएं ढाल में रखकर भेंट करता है, साथ ही मंगल का प्रतीक नारियल देना कभी नही भूलता। उसके पति के सिर पर नई पगड़ी बंधवाता है और सास को वस्त्र भेंट करता है।[19] फिर, सास आगे आकर 'न्यूनचन' करती है और बहू को घर के भीतर ले जाकर हवन करती है, जो गर्भ-संस्कार कहलाता है। फिर, वह गर्भिणी स्त्री अपने परिवार के साथ पिता के घर चली जाती है।

यदि पुत्र जन्म लेता है तो तुरन्त ही इस शुभ-सूचना का पत्र उसके पिता के घर पर भेजा जाता है; यह 'वधामणी' या बधाई भेजना कहलाता है। वधामणी लेकर आने वाले का खूब स्वागत किया जाता है और उसके सिर पर नई 'पाग' बँधाई जाती है। यदि नवजात का पिता राजा या ठाकुर होता है तो राज-नौबत बजती है और बन्दी मुक्त किए जाते हैं। कभी-कभी 'वधामणी' के पत्र पर नवजात शिशु के पैर का चिन्ह कुंकुम से लगा दिया जाता है। वधामणी के पत्र का मजमून भी प्रायः विवाह के निमन्त्रण-पत्र जैसा ही होता है, जो पहले उद्धृत किया जा चुका है; केवल मुख्य समाचार की जगह कुछ ऐसा लिखा होता है—

"वहिन कनकूवा के (अमुक दिन और अमुक घड़ी में) पगड़ी बाँधने वाले पुत्र ने जन्म लिया है; उसके जन्माक्षर बहुत शुभ जान पड़ते हैं।"

---

17. गर्भावस्था में स्त्री की जो इच्छा होती है उसे 'दोहदलक्षण' कहते हैं। (हि. अ.)

18. गर्भिणी को राजस्थान में 'व्यावर' कहते है। (हि. अ.)

19. इस अवसर पर गर्भिणी का पिता जो भेंट-सामग्री लाता है वह 'साध' कहलाती है। (हि. अ.)

यदि लड़की होती है तो "ओढ़नी ओढ़ने वाली पुत्री ने जन्म लिया है," ऐसा लिखते हैं। यह विशेषण इसलिए लगाया जाता है कि यहाँ के लोग (अन्यत्र भी) व्यंजनों को विना मात्रा लगाए लिखते हैं और ऐसी दशा में 'डीकरा' (पुत्र) को 'डीकरी' (पुत्री) और 'डीकरी' को 'डीकरा' पढ़ लेने की आशंका रहती है।

शिशु का जन्म होते ही स्त्री का कोई सम्बन्धी हाथ में नारियल लेकर ज्योतिषी के घर जाता है और वर्ष, मास, दिन, वार और घड़ी तथा कभी-कभी राशि भी उसको लिखवा देता है जिसके आधार पर ज्योतिषी जन्माक्षर या जन्मपत्री तैयार करता है।

जन्म के छठे दिन 'विधाता' के नाम से ब्रह्मा का पूजन होता है। इसका कारण यह है कि उस दिन विधाता उस वालक का भविष्य निश्चित करके उसके ललाट पर लेख लिखता है, ऐसी मान्यता है। एक कोरा कागज कलम और दवात विधाता के उपयोग के लिए रख दिए जाते हैं परन्तु यह ध्यान रखा जाता है कि दवात में लाल स्याही ही रखी जाय, काली नहीं, क्योंकि भाग्य-विधाता के लिखे हुए अक्षर शुभ रंग में होने चाहिएं। उसी दिन वालक की कमर में सोना अथवा चाँदी का 'कण्डोरा' बाँधा जाता है और हाथों-पैरों में कड़े पहनाए जाते हैं।

तेरहवें दिन शिशु का नामकरण किया जाता है। नाम का पहला अक्षर (राशि के अनुसार) ज्योतिषी नियत करता है। सम्बन्धियों और पूर्वजों के नाम टाल दिए जाते हैं; परन्तु, राजपूत लोग प्रायः अपने बाप-दादों के नाम पर ही वालक का नाम निकालते हैं। इन नियमों के अनुसार, शिशु की बुआ नामकरण करती है जिसको 'फोई'[20] कहते हैं। चार स्त्रियां अपने हाथों में पीपल के पत्ते लेती हैं और फिर एक पकड़े में शिशु को लिटा कर चारों चार पल्ले पकड़ कर उसे सात वार झुलाती हैं और यह गीत गाती हैं—

'ओली झोली पीपल-पान, फोई दीयो फलाणु'[21] नाम'

इसके वाद स्त्रियों और वालकों में मिठाई बाँटी जाती है।

वालक के सवा-वर्ष के होते-होते उसका 'अन्नप्राशन'[22] संस्कार किया जाता है; उस समय कुटुम्ब के सब लोग फिर एकत्रित होते हैं। ब्राह्मण लोग फिर 'गोत्रज' का पूजन करते है और हवन की अग्नि को चैतन्य करते हैं। वह वालक भविष्य में

---

20. फूफी; पिता की वहिन।
21. अमुक।
22. इस संस्कार में शिशु के मुँह में पहली वार अन्न दिया जाता है। प्रायः दूध और चावल की खीर वनाते है। कुल में सव से वयोवृद्ध पुरुष या स्त्री ही यह विधि सम्पन्न करती है। एक चाँदी के रुपये पर खीर लगाकर शिशु के मुँह में दी जाती है। राजस्थान में इसे 'चोटणा' कहते हैं। (हि. ग्र.)

धया उद्यम करेगा, यह निश्चित करने को वे उसके सामने भिन्न-भिन्न धन्धों के उपकरण रख देते है।

देवताग्रेऽथ विन्यस्य शिल्पभाण्डानि सर्वशः।
शस्त्राणि चैव शास्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम्॥
प्रथमं यत्स्पृशेद्बालः स्वेच्छया स्थापितं तदा।
जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति॥

अर्थात् देवता के आगे सब प्रकार के शिल्पों के भाण्ड (उपकरण) रखे जावें, सब तरह के शस्त्र और शास्त्र (पुस्तकें) रखे जावें; फिर बालक के लक्षण देखे जावे। अपनी इच्छा से वह बालक सर्वप्रथम जिस वस्तु का स्पर्श करे वही भविष्य में उसकी जीविका का साधन होगा।

यहां 'भाण्ड' से शायद रसोई बनाने के बरतनों से तात्पर्य है क्योंकि गुजरात में एक कहावत प्रचलित है—'कलम, कड़छी के बरछी',[23] इन तीनों मे से किसी को चलाने में जो होशियार होता है वह चतुर माना जाता है।

'अन्नप्राशन' से पूर्व ही यदि किसी बालक की मृत्यु हो जाय तो उसे जलाने के बजाय जमीन में गाड़ देते है। ऐसा जान पड़ता है कि ग्रीक लोगों में भी ऐसा ही रिवाज प्रचलित था कि दांत निकलने से पहले कोई बालक मर जाता तो उसे गाड़ दिया जाता था। रोमन लोगों में भी यही रीति, कभी-कभी चालीस दिन का होने हले मर जाने वाले बालक के विषय में, काम में लाई जाती थी। 'जेन्स कारनेमेलिया'[24] के लोगों में इस प्रथा का विशेषतः उल्लेख मिलता है।

---

23. कलम चलाने वाला विद्वान् होगा, कड़छी चलाने वाला कुशल पाक बनाने वाला होगा और बरछी चलाने वाला कुशल योद्धा होगा। (हि. अ)

24. रोम का एक प्राचीन पैट्रिशियन वंश।

प्रकरण–आठवाँ

अन्तिम संस्कार

मंगल-विधान और आनन्द उमंग सब,
अशुभ और शोक के प्रमाण बन जाते हैं।
मण्डप की सज्जा और सब ही समाज साज,
पलट, श्मसान के समान बन जाते हैं।
व्याह के उछाह में जो गूँथे गए पुष्पहार,
प्राणहीन शव के वितान बन जाते हैं।
खुशियों के गीत ही तो बनते हैं शोक-स्वर,
सुख के निधान दुःख-खान बन जाते हैं ॥[1]

हिन्दुओं में सामान्यतया मृतक को जलाने की रीति है परन्तु, इसके अपवाद में, जिस बच्चे का अन्नप्राशन न हुआ हो उसको जलाने के बजाय जमीन में गाड़ने की प्रथा है–ऐसा ही, एक और अपवाद सन्यासियों को गाड़ने का है। सन्यासी के बाद में न तो रोना-पीटना होता है और न किसी प्रकार का शोक ही प्रकट किया जाता है। मृतक सन्यासी के शरीर को 'वैकुण्ठी'[2] में बैठा देते हैं और जब उसको गाड़ने ले जाते हैं तो लोग गाते-बजाते चलते हैं, गुलाल उड़ाते हैं या अन्य किसी प्रकार से खुशी प्रकट करते हैं। चिता पर जलाने के बदले उस शव को जमीन में गढ्ढा खोदकर अन्दर बैठा देते हैं और रेत से उनको भर देते हैं। फिर, उस स्थान पर चबूतरा बना कर पत्थर में खुदे हुए चरणचिन्ह उसकी स्मृति में स्थापित कर देते हैं।

जब वृद्धावस्था अथवा रोग या दुर्बलता के कारण मृत्यु समीप दिखाई देने लगे तो (शास्त्रानुसार) मनुष्य को 'देहशुद्धि प्रायश्चित्त' करना चाहिए। इस कार्य के लिए यजमान दो या तीन वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाता है। वह स्नान करके गीले वस्त्र पहने, बिना कुछ खाए-पिए ही, उन निमंत्रित ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा करता है और उनको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करता है। फिर, उसको, जन्म से लेकर बाल्यावस्था, जवानी या बुढ़ापे में, प्रत्यक्ष या गुप्त रूप से, जाने अनजाने में, मनसा, वाचा,

---

1. रोमियो एण्ड ज्यूलिएट, अंक 5, दृश्य 4 का रूपान्तर।
2. अर्थी।

कर्मणा जो भी छोटे मोटे पाप किए हों उन्हें स्वीकार करने का आदेश दिया जाता है। इन पापों की गणना मे केवल वे ही नहीं आते जो लोक-व्यवहार के सार्वजनीन नैतिक नियमों की अवहेलना के कारण हुए हों अपितु इनमें वे सब तरह के अपराध भी सम्मिलित माने जाते हैं जो पुराणों में दुष्कृत्य के रूप में गिनाए गए हैं। अतः उसको स्वीकार करने का आदेश दिया जाता है कि क्या उसने कभी गो-वध किया है ? गुरु की गद्दी पर बैठने की चेष्टा की है, मद्य-पान किया है, ईंधन के लिए (हरा) वृक्ष काटा है, किसी को जाति-भ्रष्ट किया है, जीव हिंसा की है, अभक्ष्य-भक्षण किया है, नीच की सेवा की है, पलंग पर बैठे-बैठे जल पिया है, गाय, बैल, भैंस, गधे और ऊँट पर पैर फैलाकर सवारी की है पालकी में बैठ कर उसे ब्राह्मणों से उठवाई है, और अन्त में, सबसे बढ़कर, क्या कभी उसने किसी ब्राह्मण को निराश किया है ? तब यजमान उन वेदज्ञ ब्राह्मणों को इन पापों से छुटकारा पाने का उपाय बताने के लिए प्रार्थना करता है और कहता है—

आ ब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं भवेद्वर्षमिदं जगत्।
यक्षरक्षः-पिशाचादि-सदेवासुरमानुषम् ॥
सर्वे धर्मविवेक्तारो गोप्तारः सकला द्विजाः।
मम देहस्य संशुद्धिं कुर्वन्तु द्विजसत्तमाः ॥
मया कृतं महाघोरं ज्ञातमज्ञातकिल्बिषम्।
प्रसादः क्रियतां मह्यं शुभानुज्ञां प्रयच्छथ ॥
पूज्यैः कृतपवित्रोऽहं भवेयं द्विजसत्तमैः,

भावार्थ—ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त यह समस्त जगत् यक्ष, राक्षस, पिशाचादि और देवता, असुर एवं मनुष्यों से व्याप्त है। हे धर्म की विवेचना करने वाले सब ब्राह्मणो ! आप सभी धर्म के रक्षक हो। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! आप मेरी देह को पवित्र करो। मैंने जान कर या अनजाने मे बहुत-से घोर पाप किए हैं; आप लोग मुझ पर कृपा करो और शुभ आज्ञा प्रदान करो। हे पूज्य ब्राह्मणो ! मैं आपके द्वारा पवित्रता प्राप्त करूं।

कई बार उसको ब्राह्मणों के चरण धोकर उस पवित्र जल का पान करने का आदेश दिया जाता है और वह इस श्लोक का उच्चारण करके उनकी श्रेष्ठता स्वीकार करता है—

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे।
सागरे यानि तीर्थानि विप्रस्य दक्षिणे पदे ॥
दैवाधीनं जगत् सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीना ब्राह्मणो मम दैवतम् ॥

भावार्थ—पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं वे सब समुद्र मे हैं, जो तीर्थ समुद्र में हैं वे सब ब्राह्मण के दक्षिण चरण मे निवास करते हैं। यह सब जगत् दैव के अधीन

हैं; देवता मन्त्र के अधीन हैं, मन्त्र ब्राह्मणों के अधीन हैं इसलिए ब्राह्मण ही मेरे देवता हैं।'

तब ब्राह्मण कहते हैं—'शुद्धिर्भवतु' तुम्हारी देह शुद्ध हो।

इसके पश्चात् वे उपवास और प्रायश्चित्त का विधान बताते हैं या दस हज़ार गायत्री-मन्त्र का जाप करके उसी मन्त्र से एक हज़ार आहुतियां देकर हवन करने को कहते हैं अथवा सबसे अधिक फलप्रद ब्राह्मण-भोजन कराने का आदेश देते हैं। जब यजमान का मुंडन होता है तो ब्राह्मण यह श्लोक पढ़ते हैं—

> महापापोपपापानि ब्रह्महत्यासमानि च।
> केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात् केशान् वपाम्यहम्॥

'महान् पाप और उपपाप, जो ब्रह्म हत्या के समान भारी हैं, वे केशों का आश्रय लेकर टिके रहते हैं, इसलिए मैं केशों को मुंडवा रहा हूं।'

मुण्डन कराते समय सिर पर चोटी अवश्य रखाते हैं। फिर यजमान को दस प्रकार का स्नान करने को कहा जाता है—वे इस प्रकार हैं—यज्ञ की भस्म से,[1] मिट्टी से,[2] गोबर से,[3] गोमूत्र से,[4] दूध से,[5] दही से,[6] घृत से,[7] धूप अर्थात् गन्ध से,[8] कुशाग्र से[9] और जल से।[10] प्रत्येक स्नान के समय सम्बद्ध मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है। फिर, वह प्रायश्चित्तकर्ता पवित्र वस्त्र धारण करके विष्णुमूर्ति, शालग्राम का पूजन करता है और ब्राह्मण हवन करते हैं। उस समय उसको दस प्रकार का दान करना पड़ता है—

> गो[1]-भू[2]-तिल[3]-हिरण्य[4]-आज्य[5]-वासो[6]-धान्य[7]गुडानि[8] च।
> रौप्यं[9] लवण[10]मित्याहुर्दशदानान्यनुक्रमात्॥

'गाय, भूमि, तिल, सोना, घृत, वस्त्र, धान्य, गुड़, रौप्य (चांदी) और लवण ये अनुक्रम से दस दान कहे गए हैं।

इस दान के पश्चात् प्रायश्चित्तकर्ता ब्राह्मणों को छायादान करता है अर्थात् एक कटोरे में घृत भरकर उसमें अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखता है और फिर वह पात्र उनको दे देता है। फिर वह ब्राह्मणों को कहता है, "मेरे इस प्रायश्चित्त को आप लोग प्रमाणित करें।" तब वे कहते हैं "हम प्रमाणित करते हैं।"

ऊपर जिस क्रिया का वर्णन किया गया है वह तीर्थ पर जाकर यात्री तो करते ही हैं अपितु वे लोग भी करते हैं जो जाति से बहिष्कृत कर दिए गए हैं और वे पुनः जाति में आना चाहते हैं। यदि देहशुद्धि प्रायश्चित्त किए बिना कोई पुरुष

मर जाता है तो उसके उत्तराधिकारी को उत्तरक्रिया करते समय मृतक के नाम से यह विधि पूरी करनी पड़ती है; और यदि वह नहीं करता है तो पिता और पुत्र दोनों नरक के भागी होते हैं।

मृतकों को शुभाशुभ कर्मों के फल देने वाले यमराज के नगर में जाते समय मार्ग में वैतरणी नदी आती है; इसको पार करने के लिए मनुष्य को इसी लोक में यत्न करना चाहिए। स्वयं श्री कृष्ण ने कहा है, यदि सद्भाग्य से किसी के मन में सुगमता से वैतरणी नदी को पार करने की इच्छा उत्पन्न हो तो उसे किसी शुभ अवसर पर अथवा जब उसके मन में आवे तब गोदान करना चाहिए। इस विषय में सामान्यतः यह माना जाता है कि वह गाय मृतक के आगे-आगे चलती है और वह उसकी पूँछ पकड़े रहता है; इस प्रकार गाय नदी के जल को सुखाती जाती है और वह पार हो जाता है; यदि वह पूँछ छोड़ देता है तो नदी का पानी उसके ऊपर होकर निकल जाता है। जो गाय दान में देनी हो उसके सींग सोने से और खुर चांदी से मंढ़े हुए होने चाहिए। गाय का रंग या तो सफ़ेद हो या काला। इसके साथ ब्राह्मण को दूध दुहने के लिए गंगा-जमनी चरी[3] भी देनी चाहिए। गाय पर काली झूल डालनी चाहिए। इसके साथ ही मृतक के उपयोग के लिए कपड़े, जूते, छाता, अंगूठी और सात प्रकार का धान भी दान में देना चाहिए। वैतरणी का प्रतीक एक ताम्रपात्र भी शहद से भर कर और रुई के ढेर पर रख कर अर्पण करना चाहिए। यमराज की स्वर्ण-प्रतिमा हाथ में लोहे के दण्ड सहित बनवाना चाहिए। गन्नों की नौका बनावे। तब ब्राह्मण यमराज का पूजन करके मूर्ति में प्रवेश करने की प्रार्थना करता है—

दण्डहस्तं महाकायं महिषोपरि संस्थितम्।
रक्ताक्षं दीर्घबाहुं च धर्मराजं नतोऽस्म्यहम्॥

'महिष पर विराजमान, हाथ में दण्ड लिए हुए, लाल-लाल नेत्रों वाले, विशाल भुजाओं वाले और महाकाय धर्मराज को मैं नमस्कार करता हूं।'

ऐसा करने के बाद यजमान यमराज की मूर्ति और गाय का पूजन करता है, ब्राह्मण को नमस्कार करता है और सभी की प्रदक्षिणा करता है। फिर, ब्राह्मण को दान देते समय गाय की पूँछ, दर्भ और तुलसी हाथ में लिए हुए यह मन्त्र पढ़ता है—

यममार्गे महाघोरे तां नदीं शतयोजनाम्।
तर्तुकामो ददाम्येतां तुभ्यं वैतरणीं नमः॥

'यम के महान् घोर मार्ग में सौ योजन तक फैली हुई वैतरणी नदी को

3. मिश्रित धातु का बना हुआ पात्र।

पार करने की इच्छा वाला मैं यह (गाय) तुम को देता हूं। (हे ब्राह्मण) तुम को नमस्कार।'

फिर, गाय को सम्बोधन करके कहता है—

धेनुके मां प्रतीक्षस्व यमद्वारे महापथे।
उत्तारणार्थं देवि मां वैतरण्यै नमोऽस्तु ते॥

'हे गाय माता! यमद्वार के महामार्ग में मुझे वैतरणी नदी पार कराने के लिए मेरी प्रतीक्षा करना। हे देवि! मैं तुमको नमस्कार करता हूं।'

अन्त में, ब्राह्मण के अभिमुख होकर उसको गाय अर्पण करता हुआ यजमान कहता है—

विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर।
सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्यं वैतरण्यै नमः॥

'हे विष्णु के स्वरूप! ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, पृथ्वी पर देवता के समान! वैतरणी पार करने हेतु दक्षिणा सहित यह गाय आपको देता हूं मेरा उद्धार करो।'

जब कोई हिन्दू मरणासन्न होता है तो उसके मित्र और घरवाले एक स्थान पर गोबर का चौका लगाते हैं। मरने वाले मनुष्य के शरीर पर से सब वस्त्र और गहने उतार लेते हैं; केवल एक धोती रहने देते हैं। उसके सिर और मूंछों के बाल उतरवा दिए जाते हैं और फिर उसे जल से स्नान कराते हैं। फिर, जो स्थान चौका लगाकर तैयार किया गया है वहां उसको लिटा देते हैं; उसके पैर उत्तर में देवताओं के निवास-स्थान मेरु पर्वत की तरफ करते हैं और यमपुरी (दक्षिण) की ओर उसकी पीठ (सिर) रहती है। उसके हाथ में एक छोटा-सा प्याला रखते हैं जिसमें एक रोटी और उस पर चांदी की मुद्रा रखी होती है। किसी दीन ब्राह्मण को उस मरते हुए मनुष्य के हाथ से वह पात्र लेने को बुलाया जाता है। जो धनाढ्य होते हैं वे गाय, सोना और अन्य मूल्यवान वस्तुओं का दान करते हैं और अपने मरणासन्न सम्बन्धी से प्रतिज्ञा करते हैं कि वे उसकी अस्थियां काशी ले जाकर गंगा में प्रवाहित करेंगे-अथवा (मरने वाले के पुण्यार्थ) मथुरा, द्वारका, सोमनाथ एवं अन्य स्थानों की यात्रा करेंगे। मरते हुए मनुष्य को पुण्य प्राप्त हो इसके लिए वे व्रत करने तथा धार्मिक कार्यों में द्रव्य व्यय करने का हाथ में जल ले-लेकर संकल्प करते हैं। कभी-कभी, यमराज के प्रीत्यर्थ लोहे का दान करते हैं क्योंकि उसके शस्त्र उसी धातु के बने हुए माने जाते हैं। इस प्रकार दान करने वाले और उसको ग्रहण करने वाले दोनों ही प्रशंसा के पात्र होते हैं। ऐसा कहा गया है कि 'जो पुत्र अपने मरणासन्न पिता के हाथ से दान करवाता है वह कुल का दीपक होता है।'

उसी समय वे उस मरने वाले मनुष्य के समीप घृत का दीपक जलाते हैं और उसके मुख में गंगाजल, तुलसीदल और थोड़ा-सा दही डालते हैं।

कहते है कि प्राणों के कण्ठगत होते समय भी यदि कोई मनुष्य यह कह दे कि उसने संसार का त्याग कर दिया है तो वह मर कर वैकुण्ठ में जाता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिये कुछ लोग, जिनको यह भान हो जाता है कि उनका अन्त समय आ पहुँचा है तो वे, 'आतुर-सन्यास' ग्रहण करने की विधि सम्पन्न करते हैं और एक सन्यासी को बुलाकर उससे दीक्षा ग्रहण करके भगवा वस्त्र धारण कर लेते हैं जो इस बात के सूचक होते हैं कि उस मनुष्य ने संसार और इसके प्रपंच का त्याग कर दिया है।[4]

हिन्दुओं को सदा यह विश्वास करने की शिक्षा दी जाती है कि मृत्यु के समय जो घोर कष्ट होता है वह इस कारण होता है कि जीव शरीर छोड़ कर जाना नहीं चाहता और यमराज के भयंकर दूत उसको जबरदस्ती घसीटकर महान् यातना देते हैं। तब भय और शोक में भर कर इस दोहरी मनोवृत्ति का समाधान वे बार-बार राम का नाम लेकर ही करते हैं। थोड़े ही क्षणों में उस मरते हुए मनुष्य की धमक-पछाड़ें बन्द हो जाती हैं और अमर आत्मा इस पार्थिव शरीर और साथियों से विलग हो जाता है। वह किधर चला गया ?

"वह अब फीके, कड़क और उघाड़े स्थान में प्रवेश करेगा।"

इस रोचक विषय के अनुसन्धान मे प्रवृत्त होने से पहले थोड़ी देर ठहर कर हम देखेंगे कि शव को किस प्रकार ले जाते हैं और शोक मनाने वाले किस तरह 'मिट्टी से बने हुए शरीर को मिट्टी में मिलाते हैं ?"

जब 'खेल खत्म हो जाता है तो पड़ोसी और रिश्तेदार मृतक के दरवाजे पर एकत्रित होते हैं; और किसी करुणारसपूर्ण नाटक का अभिनय करते हुए-से वे एक ही स्वर में रोने-कूटने लगते हैं। जो बहुत नजदीकी रिश्तेदार होते हैं वे 'अरे बाप रे,

---

4. इन मन्द सन्यासियों की बात से हमको पुराने जमाने के नव-क्रिश्चियनों और विशेषतः महान् कांस्टैन्टाइन की याद आ जाती है। गिबन ने लिखा है कि जब उसने (कांस्टैन्टाइन ने) देखा कि अन्त समय में मृत्यु का कठोर हाथ उसकी रजाई का सुन्दर (शाही) वस्त्र उसके ऊपर से हटा रहा है तभी उसने पवित्रता के नवीन संस्कार और साधुवेष के श्वेत वस्त्र धारण करना स्वीकार किया, जो उसको पहले बहुत अप्रिय लगते थे।

एंग्लो-सैक्सन इतिहास का लेखक कहता है कि 'राजा हेनरी और उसके भतीजे फ्लाण्डर्स के अर्ल में झगड़ा चल रहा था इसलिए राजा उस वर्ष (1128 ई.) नारमण्डी (Normandy) में ही रहा; परन्तु, युद्ध में एक सेवक के हाथ से अर्ल घायल हो गया इसलिए वह (अर्ल) सेण्ट बार्टिन (St. Bartin) के मठ में गया और साधु बन गया। इसके बाद वह पाँच दिन जीवित रहा और फिर मर गया; वहीं उसको दफ़नाया गया। परमात्मा उसकी आत्मा को शान्ति दे।"

अरे भाई रे' इस तरह पुकारते हुए घर में प्रवेश करते हैं। स्त्रियाँ दरवाजे के पास ही गोलाकार में खड़ी हो कर मृतक के लिए रुदन करती हैं और एक शोकपूर्ण ताल से छाती कूट-कूट कर 'राजिया'[5] गाती हैं। वृद्धों को तो बड़ी अवस्था के कारण यमदूतों का सहज शिकार समझा जाता है इसलिए युवकों के लिए अपेक्षाकृत अधिक समय तक और अधिक शोकपूर्ण रीति से रोना-कूटना होता है। 'राजिया' में असम्बद्ध और टूटे-फूटे शोकपूर्ण वाक्य होते हैं जिनको एक या दो स्त्रियाँ पहले बोलती हैं और बाद में सब की सब समवेत रूप से दोहराती हैं। नीचे हम एक मृत्युगीत का अंश उद्धृत करते है; यह एक ऐसे मृतक के विषय में है जो वर-राजा बना हुआ था परन्तु कच्ची उम्र में ही चल बसा—इस गीत में उसको एक राजवी और शूरवीर मान कर शोक प्रदर्शित किया गया है—

हाय ! हाय रे ! गांमगोदरे रड़ारोळ थाय छे,
वोय ! राजवी ! वोय ! वोय !
हाय ! हाय रे ! आ तो रामजी केरो कोप जागियो,
वोय ! राजवी ! वोय ! वोय !
हाय ! हाय रे ! हवे वरश्यो मेहुलो घणो लोही थी,
वोय ! राजवी ! वोय ! वोय !
हाय ! हाय रे ! हवे सागरे सिमाड़ो निज छोड़ियो,
वोय ! राजवी ! वोय ! वोय !
हाय ! हाय रे ! कन्या वाधती लूंटाई घर आगणे,
वोय ! राजवी ! वोय वोय !
हाय ! हाय रे ! जमराज ना लूंटारा दोड़ी आविया,
वोय ! राजवी ! वोय ! वोय !
हाय हाय रे ! वर राय ने ते ओ भ्रे झाली मारियो,
वोय ! राजवी ! वोय ! वोय !
हाय ! हाय रे ! एनो मण्डप नीचे ढोली पाडियो,
वोय ! राजवी ! वोय ! वोय !
हाय ! हाय रे ! एनी चोरीना मांट भागी नांखिया,
वोय ! राजवी ! वोय ! वोय !
हाय ! हाय रे ! एनो जीवडो लुंटायो जुल्मे करी,
वोय ! राजवी ! वोय ! वोय !

यह विलाप कुढंगा तो अवश्य लगता है परन्तु यह बात नहीं है कि 'सात-समुन्दर पार' के निवासी अंग्रेज पर भी इसका कोई प्रभाव न पड़ता हो—जैसे ही

---

5. मृत्यु के समय का गीत, मरसिया।

उनके दूर से आते हुए उतार-चढाव सहित स्वर उसके कानो मे पडते है तो उसे शान्त सन्ध्या समय मे, किसी ककरीले समुद्र तट पर लहरों के आ कर टकराने और लौट जाने से उत्पन्न हुई उदासीन और लयबद्ध ध्वनि का स्मरण हो आता है।

रुदन-गीत समाप्त होने पर वे स्त्रियाँ हाँफती और काँपती हुई थक कर बैठ जाती हैं; परन्तु उनका विलाप तो चालू रहता है; वे मृतक का 'बखान' कर-करके एक दूसरी की ओर उन्मुख हो कर इस प्रकार विलपती है—'हाय बेटा ! अब मेरी सेवा कौन करेगा ? मेरी चिता कौन जलावेगा ?' या 'हे स्वामी ! मुझे धोखा देकर छोड़ गए।' मेरे बच्चों का विवाह किए बिना ही मुझे छोड़ कर चले गये।" या 'हे भाई ! अरे बीरा ! अब ससुराल से आऊँगी तो मेरा सम्मान कौन करेगा ? हाय ! हाय ! अब मेरे पिता के घर मे पीपल उग आवेगा।'[6]

इस प्रकार जब स्त्रियाँ विलाप करती रहती है तो दो या तीन मनुष्य मृतक को श्मशान ले जाने के लिये तैयार करने मे लग जाते है। बाँस की अर्थी बनाकर नए मँगाए हुए शुभ्र रंग के कपडे मे लपेट कर मुर्दे को उसमे लिटा देते है। आटे के बनाए हुए पिण्डो मे से दो पिण्ड 'शव' और 'पन्थक' कहलाते हैं–इनमे से 'शव' को तो कुश बिछा कर उस स्थान पर रखते है जहाँ मृतक को सुलाया होता है और पन्थक को मकान के दरवाजे पर।

जो मरने वाली) स्त्री अपने पीहर से ससुराल आई हुई होती है उसको (नए) कपड़े पहनाए जाते है और उसके ललाट पर लाल तिलक लगाया जाता है; इस क्रिया को सासरवासा' कहते है। यदि कोई स्त्री अपने पीहर मे मर जाती है

6. ग्रीक लोगों मे भी मृतक के लिए शोकोद्वेग मे स्त्रियों द्वारा 'बखान' करके विलाप करने की ही मूल प्रथा थी, ऐसा जान पड़ता है; परन्तु होमर के समय तक ही वह इतनी व्यवस्थित हो गई थी कि व्यवसायी रुदन करने वाले मृतक के बिस्तर के पास उपस्थित होकर रोते-पीटते थे और स्त्रियाँ तो केवल उनका साथ देती थी। (देखिये मूलर की पुस्तक)। छाती कूटने के रिवाज के दुष्परिणाम अब भी गुजरात की स्त्रियो मे दिखाई पड़ते हैं इसीलिए, हमारे विचार से, कुछ उदारचेता लोगो ने यूनानियो की तरह भाड़े के (किराए के) रोने वालो की प्रथा जारी की है। जूडा (Judah) के राजा जोशिया (Josiah) के पुत्र जोहोयएकिम (Johoiakim) का भविष्य कथन करते समय पैगम्बर जेरेमिआह (Jeremiah) ने कहा था 'हे मेरे भाई ! या हे मेरी बहन ! ऐसा कहकर इसके लिए तुम शोक मत करना, शोक मत करना. 'हे मेरे स्वामी ! हा उसकी महिमा !" ऐसा कह कर भी शोक मत करना।

—Jeremiah xxii, V. 18 and note with references in D'oyly and Mant; see also Amos V. 16, Elclesiastics XII, 5, 6.

अथवा उसका पीहर उसी गांव में होता है तो उसके माता-पिता 'अन्तिम सासरवाला' देते हैं। वे मृत स्त्री के सिर को चर्चित करते हैं, उसे नए वस्त्र पहनाते हैं और शादी के समय की चूनड़ी ओढ़ाते हैं।

जब शव तैयार हो जाता है तो उसको अर्थी में रख कर चार आदमी उठाते हैं। इससे पहले वे (अर्थी उठाने वाले) स्नान करके रेशमी वस्त्र पहन लेते हैं।[7] शव को ले जाते समय उसके पैर आगे की तरफ रखे जाते है; एक आदमी मिट्टी के बर्तन में आग लिए चलता है। रिश्तेदार और पड़ोसी साथ-साथ चलते है; वे लोग नंगे सिर, नंगे पांव और नंगे बदन होते हैं, केवल धोती पहने रहते हैं।[8] वे दौड़ते जाते हैं और अपने इष्टदेव दशरथ-पुत्र राम का स्मरण करते है; कभी-कभी एक आदमी बोलता है "राम बोलो" और दूसरे लोग उत्तर देते हैं "राम ! भाई" ! स्त्रियाँ गांव के दरवाजे तक उनके पीछे-पीछे जाती है और फिर धीरे-धीरे वापस लौट आती है।

शास्त्र में लिखा है कि शव को गांव के चौराहे पर उतार कर तीसरा 'खेचर' पिण्ड देना चाहिए; अब, यह चाल प्रायः बन्द हो गई है। गरुड़पुराण में विधान है कि जिस गांव में मृत्यु हुई है उस गांव के लोग तब तक भोजन न करें जब तक कि शव को श्मशान मे न ले जावें; परन्तु, आजकल केवल आसपास के घरो मे रहने वाले ही इस नियम का पालन करते हैं।

जब शव-यात्रा गांव के बाहर पहुँच जाती है तो एक आदमी, जिसके हाथ में पानी का पात्र होता है, अपने साथ वालों से आगे निकल कर भूमि को पवित्र करने के लिए एक स्थान पर जल छिड़कता है; वहाँ वे सब लोग आ कर ठहर जाते है और शव को उस पवित्र किए हुए स्थान पर रख देते है। यहाँ पर तीसरा और चौथा 'भूत' नामक पिण्ड एक साथ दिये जाते हैं; अब 'कांधिए'[9] आगे वाले पीछे और पीछे

7. कर्नल टॉड कहता है कि राजपूत योद्धा के शव को श्मशान ले जाते समय उसको उसी तरह शस्त्रो से सज्जित करते है जैसे वह जीवितावस्था में रहता था; उसकी पीठ पर ढाल बांधते है और हाथ मे तलवार देते हैं। उसके घोड़े का बलिदान तो नही करते, परन्तु उसको देवता के अर्पण कर देते हैं, जो बाद मे पुरोहित के काम आता है।'

—एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज़ आफ़ राजस्थान (1920 ई० संस्करण) भा. 1; पृ० 88

8. इसी प्रकार यहूदी लोग भी शोक के अवसर पर कहते हैं—"अपना मस्तक नंगा मत करो, अपने वस्त्रों को भी मत फाड़ो।" "Leviticus X. 6. "रुदन मत करो, मृतक के लिए शोक मत करो, सिर का कपड़ा सिर पर बांधो और पैरों में जूते पहन लो।" (Ezekiel XXIV, 17)

9. शव की अर्थी को कन्धे पर ले जाने वाले।

वाले आगे आ कर अपनी स्थिति वदल लेते हैं तथा यहां से शव का मस्तक आगे की ओर और पैर पीछे की ओर करके अर्थी ले चलते है। यहां से वे लोग दाहस्थान पहुँचते हैं जो प्रायः नदी के किनारे होता है; वहां चिता वनाई जाती है जिसमें, यदि वे लोग समर्थ हों तो, चन्दन एवं अन्य मूल्यवान् काष्ठ लगाया जाता है और वीच-वीच में नारियल जड़ दिए जाते हैं। फिर, वे लोग शव को अर्थी में से निकाल लेते हैं और कफ़न को व अर्थी को दूर फेंक देते हैं। अब शव को चिता पर लिटा दिया जाता है, उसका सिर दक्षिण दिशा की ओर रहता है और उसके ऊपर शेष लकडियां चुन दी जाती हैं। यहां 'साधक' और 'प्रेत' नामक पांचवां और छठा पिण्ड दिया जाता है। मृतक का पुत्र या निकट सम्वन्धी सूखी घास का पूला जला कर चिता की तीन प्रदक्षिणा करता है और फिर शव के मस्तक की ओर से हवा के कारण आवश्यक दूरी पर रह कर उसे प्रज्वलित कर देता है। दाहक्रिया में सम्मिलित हुए लोग इधर-उधर वैठ जाते है और, शोक में भरे हुए, उस मृतक के जल चुकने की प्रतीक्षा करते हैं; जव लाश करीव-करीव जल चुकती है तो अग्नि को फिर चेताने के लिए चिता में घृत डालते हैं। दाह समाप्त हो जाने के वाद मृतक की भस्मी को चिता में से समेट कर नदी में वहा देते हैं और यदि पास मे नदी न हो तो उन अवशेषों को खड्डा खोद कर गाड़ देते हैं और ऊपर पानी छिड़क देते है। जिसने चिता में अग्नि लगाई थी वही उसमें से सात अस्थियां चुनता है और उनको कुल्हड़ में डाल कर उस स्थान में गाड़ देता है जहां पर शव का मस्तक था। उस स्थान पर गरीव लोग तो मिट्टी का टीला-सा वना कर उस पर जल-पात्र और रोटी रख देते है, परन्तु धनवान पुरुष चिता के स्थान पर मन्दिर वनवाते है और उसमे महादेव की स्थापना करते हैं।

ऊपर जिन क्रियाओं का वर्णन किया गया है वे चार प्रकार की शास्त्रोक्त दाह-विधियों के अनुसार हैं; वनदाह (गांव के दरवाजे के वाहर मुर्दे को उतार कर पिण्ड देना, इसी विधि की पूर्ति का सूचक है), अग्निदाह, जलदाह और भूमिदाह।

धनाढ्य व्यक्ति के दाहस्थान पर प्रायः एक गाय को ला कर उसका दूध दुहा जाता है और उस स्थान पर छिड़क दिया जाता है; फिर वह गौ ब्राह्मण को दान में दे दी जाती है। 'साभ्रमती माहात्म्य' में अहमदावाद के निकट नदी किनारे पर प्रसिद्ध श्मशान 'दूधेश्वर' के नामकरण के वृत्तान्त में लिखा है कि दधीचि ऋषि को जिस जगह अग्निदाह दिया गया था उस स्थान पर स्वर्ग के स्वामी इन्द्र और वहा के निवासी देवताओं ने कामधेनु को लाकर दुहा था और उस स्थान को वह दूध छिड़क कर पवित्र किया था।

दाहक्रिया एवं अन्य विधियां पूर्ण होने के वाद 'दागिए'[10] स्नान करते हैं और अपने कपड़े धोते हैं; मृतक का उत्तराधिकारी 'प्रेत को दाह के उपरान्त शान्ति मिले'

10. दाहक्रिया में सम्मिलित होने वाले।

इसलिए जल और तिलों की तिलांजलि देता है।[11] दाहक्रिया में सम्मिलित होने वाले और घर पर रही स्त्रियां आदि सभी सम्बन्धी और मित्र एक बार फिर मृतक के घर पर एकत्रित होते हैं और बाद में अपने-अपने घर चले जाते हैं।

पति की मृत्यु के बाद स्त्री अपने विवाह के समय का चूड़ा तोड़ देती है। यदि वह ब्राह्मण जाति की होती है तो दाह के दसवें दिन सिर के बाल भी मुंडवा देती है। पूरे वर्ष भर वह अपने घर के एक कोने में बैठकर (नत्य) रुदन करती है। इस अवधि के बाद उसके पीहर वाले शोक छुड़ाने' को आते हैं और उस को अपने घर ले जाते हैं। यदि उसका शोक छुड़ाने को कोई घर खुला न हो तो वह बहुच राजी प्रभाम या नर्मदा की यात्रा करती है। विधवा होने के बाद वह जातिभोज श्रा द में सम्मिलित नहीं होती। आजकल, यदि कोई विधवा पन्द्रह वर्ष की अवस्था की नहीं होती तो उसके हाथ की चूड़ियाँ रहने दी जाती हैं और उनके साथ विधवा का सा व्यवहार भी नहीं किया जाता; परन्तु जब वह तीस वर्ष की हो जाती है और उस समय उसके किसी सम्बन्धी, पिता या भाई की मृत्यु हो जाती है तो उसके लिए विधवा की तरह रहना शुरू करने को वह उपयुक्त अवसर समझा जाता है। यदि विधवा धनाढ्य घराने की होती है तो वह अपनी चूड़ियों के बजाय सोने के कड़े या चूड़ियां पहन लेती है; यदि वह राजपूत कुल की होती है तो काले वस्त्र पहनने लगती है और यदि ब्राह्मण या बनिया जाति की होती है तो बिना कोर-पल्लू वाले किसी भी सादा रंग के कपड़े पहनती है। परन्तु, शास्त्रों में तो विधवा के लिए सफेद वस्त्र पहनने और कोई गहना न धारण करने का विधान है।

---

11 मूर (Moore) के एपिक्यूरियन (Epicurean) में दोष विस्मरण कराने वाले पात्रों के विषय में लिखा है, उसका यहां पाठकों को स्मरण दिलाते हैं –

"यह प्याला पी जाओ–ओसिरिस अपने नीचे बने हुए कक्षों में इसी को पीता है और अधोलोक में जाने वाले मृतकों को भी अपने ओष्ठ ठन्डे करने को यही पिलाता है।

"इस प्याले को पी जाओ—इसमें लीथ (Lethe)+ के झरने का ठण्डा पानी है; इसको पीने से भूतकाल के सभी पाप, दुःख और शोक चिरविस्मृत स्वप्न के समान हो जावेंगे।"

परन्तु, ऐसी सुखद विस्मृति की हिन्दुओं से आशा रखना दुराशा मात्र है; वे तो, इसके विपरीत, पूर्व जन्म के पुण्यों का स्मरण होने की शक्ति धर्मात्मा होने का फल मानते हैं; यह एक प्रकार की महिमा मानी जाती है।

....

\+ (लीथ)—ग्रीक पुराण कथाओं के अनुसार निम्नलोक की ऐसी नदी है जिसका पानी पीने से प्राणी समस्त विगत घटनाओं को भूल जाता है।

विधवा के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धी जनों के शोक-पालन की अवधि मृतक की वय और उनके सम्बन्ध पर निर्भर होती है। जो लोग शोक मनाते हैं वे उस अवधि में किसी विवाह उत्सव आदि में सम्मिलित नहीं होते, कितनी ही प्रकार के पदार्थों को खाना छोड़ देते हैं और सफेद या किसी पक्के रंग के वस्त्र पहनते हैं। पर-गाँव में रहने वाले रिश्तेदारों को मृत्यु की सूचना चिट्ठी लिखकर किसी ढेड़ के हाथ भेजी जाती है। उसके सिरनामें पर 'कपड़े उतार के पढ़ना', ऐसा लिखा होता है। इसका तात्पर्य यह होता है कि उस चिट्ठी पढ़ने वाले को अनुविधा न हो क्योंकि जो ऐसी चिट्ठी ग्रहण करता है उसके आशौच लग जाता है और उसके कपड़े भी अपवित्र हो जाते हैं। ऐसी चिट्ठी को कृष्णाक्षरी[12] या कालोत्रारी कहते हैं अर्थात् अशुभ सूचना या आशौच देने वाली चिट्ठी। यहाँ हम कृष्णाक्षरी का एक नमूना उद्धृत कर रहे हैं। इससे इसके स्वरूप का भी ज्ञान हो जायगा और यह भी मालूम हो जायगा कि हिन्दुओं को मृतक की उत्तरक्रिया पर किस तरह खुले हाथों फिजूल-खर्ची करनी पड़ती है।[13] इस विषय पर हम पहले भी लिख चुके हैं।

कृष्णाक्षरी का नमूना

'नगर अहमदाबाद निवासी मेहता कल्याणराय केशवराय तथा मेहता जमीयतराम नरभेराम (मृतक का जमाई व फूफा) योग्य लिखी श्री सूरत से मेहता भवानीराम मंछाराम का नमस्कार बंचना। अपरं च विशेष लिखने का कारण यह है कि चैत्र शुदि 2 बुधवार की रात को छ घड़ी बीते जादूराम वेहेमशंकर का स्वर्गवास हो गया। यह बहुत बुरा हुआ; परन्तु, जो श्री परमेश्वरजी ने किया सो सही; इसमें किसी का वश नहीं चलता। दूज के दिन तीसरे पहर तक जादूराम के नख में भी कोई रोग नहीं था, वह भले चंगे थे; परन्तु. दो घड़ी दिन रहे हैजे का प्रकोप

---

12. राजस्थान में प्रायः इसको 'चिट्ठी' ही कहते हैं, कहीं-कहीं 'कालाखरी' या 'कालोतरी' (काल पत्री) कहते हैं। यह ढेड के हाथ ही भेजी जाती है, जो 'कालोतर्‍्यो' कहलाता है। भील ऐसी पत्री नहीं ले जाते। अब तो, डाक द्वारा ऐसे पत्र भेज देते हैं। (हि. अ.)

13. इस विषय पर जानकारी के लिए टाड कृत 'एनल्स आफ राजस्थान' भा. 1, पृ. 240 देखना चाहिए। मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह और आमेर के जयसिंह महान् ने बड़े-बड़े जीमण करने पर प्रतिबन्ध लगा दिए थे। जयसिंह महान् ने तो तीन विशिष्ट अवसरों पर 51 आदमियों को भोजन कराने की मर्यादा कायम कर दी थी और निर्धन लोगों पर तो अधिक खर्चीले भोज करने पर पूरी तरह ही रोक लगा दी गई थी।

जयपुर में अभी तक सम्पन्न लोगों में मृतक के नाम पर बावन ब्राह्मण और सामान्य लोगों में बारह ब्राह्मणों का भोज करने का रिवाज है। (हि. अ.)

हुआ। हमने बहुत इलाज किए, बहुतसी मनौतियाँ मनाईं परन्तु उनका अन्त समय आ गया था इसलिए कोई उपाय कारगर नहीं हुआ। इस अवसर पर हमारे सभी सगे-सम्बन्धी यात्रा करने गए हुए थे, केवल मैं और विवेकराम (पड़ौसी ही घर पर थे। हम दोनों भी दवा लेने गए हुए थे। इतने ही में भाई जादूराम को अन्तिम पीडा हुई परन्तु उनके सद्भाग्य से और पूर्व जन्म एवं इस भव के महान् पुण्य कर्मों से, हम दोनों ही तुरन्त पहुँच गए और हमने मरणवेला मे उनकी अच्छी तरह सेवा की उनको पुण्य-दान कराया, भूमि पर लिटाया और उनके मुख मे गंगा-जल दिया। यदि हम न पहुँचते तो वे शैया पर ही देह छोड़ देते और पुतलविधान करना पड़ता।

बाई अज्ञानता (मृतक की पुत्री और कल्याणराय की स्त्री) को रोने-कूटने मत देना। रोने-धोने से कुछ नही होगा। अब तो हमे उनका मुख देखने को मिलेगा नहीं। अब तो हिम्मत रखना ही उचित है और यह प्रबन्ध करना है कि घर की इज्जत आबरू के अनुसार जातिभोज किस प्रकार किया जाय। पाँच-दस रुपये अधिक भी खर्च करने पड़े तो कोई चिन्ता की बात नहीं, क्योंकि मेहनत मजदूरी करके वह रकम तो हम पूरी कर लेंगे परन्तु माँ-बाप का 'कारज' करने का अवसर फिर नहीं आवेगा। पाँच सौ रुपये की कीमत का तो मकान है, 200) रु. का गहना-जेवर है और 100) के बरतन-बासन हैं; कुल 800) रु. की सौज है। परन्तु सूरत की न्यात को जिमाने में 1100) रु. का खर्च पडेगा, इसलिए 300) रु. ब्याजूना लेने पड़ेंगे। सो, बच्चे अभी तो छोटे हैं; जब बडे होंगे तो सब कर्जा चुका देंगे। आप इस बात की कोई चिन्ता न करें। कहावत है कि 'जिसके होय बाला, उसके क्या दिवाला'?[13] इसलिए जब लड़के मौजूद हैं तो उधार लेने देने मे क्या दिक्कत है? वे दूसरे ही दिन चुका देंगे। आप सगे हो, इसलिए पधार कर सभी कारज सुधारो। कागज बाँचते ही घडी भर में तैयारी करना। पानी पीने भर की भी देर मत करना। यदि आप नहीं पधारेंगे तो जात वाले अपयश आपको देंगे, हमारा इसमे कोई लेना देना नही है।'

(हस्ताक्षर) भवानीराम मछाराम

प्रेत के नाम पर आवश्यक वस्तुएँ दान करने विषयक टिप्पणी

एक हिब्रू कथा इस प्रकार है–'एक आदमी के तीन मित्र थे; उनमे से दो पर उसका अत्यधिक प्रेम था परन्तु तीसरे के प्रति, जो अपेक्षाकृत उसका सच्चा हितैषी था, वह प्रायः उदासीन ही रहता था। एक दिन उसको न्यायाधीश के समक्ष एक मामले में बुलाया गया जिसमे वह बिलकुल निर्दोष था। तब उसने अपने मित्रों से पूछा 'तुम मे से कौन मेरे साथ चल कर गवाही देगा?' पहले मित्र ने तो और-और कामों का बहाना बना कर तुरन्त टाल दिया; दूसरा अदालत के दरवाजे तक उसके

13. 'जेणे बाला, तेने ना दवाला।'

साथ गया परन्तु न्यायाधीश को देखते ही उससे डर कर भाग निकला; तीसरा, जिस पर उसका बहुत कम विश्वास था, उसके साथ भीतर गया, उसकी निर्दोषिता की गवाही दी और उसके पक्ष का समर्थन किया, जिसके परिणाम में न्यायाधीश ने उस मनुष्य को निरपराध ही घोषित नहीं किया अपितु प्रसन्न होकर उसको इनाम भी दिया। इसका तात्पर्य यह है कि जगत् में मनुष्य के तीन मित्र हैं। जब ईश्वर मनुष्य को अपने न्यायासन के सम्मुख बुलाता है तो मरणवेला में वे मित्र कैसा व्यवहार करते हैं? सोना उसका सब से अधिक प्रिय मित्र है और वही सबसे पहले उसका साथ छोड़ देता है। उसके सम्बन्धी और मित्र चिता के किनारे तक साथ जाते हैं, फिर अपने-अपने घर लौट जाते हैं। उसके शुभ कर्म ही धर्मराज के आसन तक उसके साथ जाते हैं, उसके पक्ष का समर्थन करते हैं और उसके लिए न्यायकर्ता की दया एवं कृपा प्राप्त करते हैं।'

मिस्टर ट्रेंच (Mr. Trench) ने अपने नोट्स ऑन दी पैरेबल्स (Notes on the Parables), छठे संस्करण, पृ. 51 में लिखा है कि यह कथा इस प्रमाण में खरी है और यहूदियों की धर्मपरायणता का बहुत अच्छा उदाहरण है; परन्तु, सत्यता सम्बन्धी एतद्विषयक विलक्षण विचार इज्रायल के भूमिपुत्रों में भी लौकिक रीति से प्रचलित पाए जाते हैं; इज्रायल परमात्मा का प्रिय स्थान है। भविष्य में आनन्दमय स्थिति का विचार करते समय उनका लगाव इस जगत के सुख, वैभव और कामकाज के साथ भी बना रहता है और मरणोपरान्त ऐहिक जीवन से सदा के लिए सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है, यह बात उनकी समझ में ही नहीं आती। इस प्रकार इस पृथ्वी पर सम्पन्न हुए विवाह-सम्बन्ध, मृत्यु द्वारा पति-पत्नी को वियुक्त कर देने पर भी, उनके मत से कायम ही रहते हैं; हाँ, (जीवितावस्था) में कानूनन तलाक ले लिया गया हो तो बात दूसरी है। इसीलिए यदि मृत अलैक्जैण्डर, उसको भूलकर आर्चिलास (Archelaus) के व्यभिचारपाश में बँधी, ग्लाफिरा (Glaphyra) पर दावा करे तो उनके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है। तब, यदि मूर्तिपूजकों के लौकिक धर्म में यह शाश्वत भावना रहती है कि मृतक की आत्मा का लगाव मनुष्यों के व्यवहार के साथ बना ही रहता है और उनका विशेष ध्यान रखने या उपेक्षा करने से उसको सुख या दुख पहुंचता है तो, इस पर भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए। जिन जातियों ने क्रिश्चियन धर्म नहीं अपनाया है उन सब में, वे प्राचीन हों या अर्वाचीन, सुधरी हुई हों या जंगली, यह विचार एक स्वर से स्वीकार किया गया है कि मृत्यु के उपरान्त विधिवत् उत्तर-क्रिया करने से और उसकी आवश्यकता की वस्तुएँ उपलब्ध कराने से आत्मा का अपने ठिकाने पर पहुँचने का मार्ग सरल हो जाता है। अति प्राचीन काल की जातियों में शव के मुख में सिक्का रखने का रिवाज था; इसका तात्पर्य यह था कि वह सिक्का प्रेत को नरक की नदी से पार करने के लिए चेरॉन (Charon) का शुल्क समझा जाता था। इसके अतिरिक्त वे एक रोटी और शहद भी रख देते

थे, जो स्वर्ग के द्वारपाल सेरबरस (Cerberus)[14] को प्रसन्न करने को होता था। रोमन लोग प्रेतलोक के देवताओं के प्रीत्यर्थ मृतक की कब्र में दूध, मधु, पानी, शराब और जैतून रखते थे। स्कैण्डिनेविया के शूरवीरों का, ओडिन (Odin)[15] के कथनानुसार यह दृढ़ निश्चय था कि जो हथियार, घोड़े और नौकर-चाकर उनके साथ कब्र में दफनाए जावेंगे वे सब वालहला (Valhalla) में युद्ध के देवता के समक्ष उपस्थित होते समय उनके उपयोग में आवेंगे।

लैप्लैण्ड (Lapland)[16] के रहने वालों में आज भी यह रिवाज़ है कि वे मृतक के साथ चकमक और ऐसी सभी अन्य चीजें रखते हैं जो उसको मृत्यु के बाद का अन्धेरा मार्ग तय करने में सहायक होती हैं और अमेरिका में लाल जंगलों के वासी असली शिकारी अपने-मरने वाले मित्र के साथ बन्दूक गाड़ते हैं ताकि प्रेतलोक में वह उसको लेकर शिकार का पीछा कर सके। मॉशिये ह्यू (M. Hue) ने लिखा है कि तातार बादशाहों को दफ़नाने में जो रीति बरती जाती है उसमें कभी-कभी तो अत्यधिक फिजूलखर्ची और जंगलीपन के दर्शन होते हैं। बादशाह के शव को ईंटों से बनी इमारत में रखा जाता है, जो मनुष्य, सिंह, बाघ, हाथी और- बौद्ध शास्त्रों में वर्णित विविध प्रकार की अन्य प्रतिमाओं से सजाई जाती है। इमारत के मध्य भाग में निर्मित तहखाने में उस प्रतापी शव के साथ सोना, चाँदी, जवाहरात का खजाना और बहुमूल्य पोशाकें रखी जाती हैं।

ऐसे राक्षसी अन्तिम संस्कारों में कई बार बहुत से गुलामों का जीवन भी बलि चढ़ा दिया जाता है; अपने रूप के लिए प्रसिद्ध लड़कों और लड़कियों को पकड़कर जबरदस्ती पारा पिलाते हैं और तब तक पिलाते रहते हैं जब तक कि वे दम घुट कर प्राण न दे दें; इससे उनका वर्ण और शरीर की ताजगी कायम रहती है और वे बिलकुल ज़िन्दा दिखाई देते हैं। फिर, वे मालिक के आसपास उसी सिलसिले में

---

14. ग्रीक पुराण-गाथाओं के अनुसार निम्नलोकों (नरक) का द्वार-रक्षक कुत्ता, जिसके कई मुँह होते हैं और उसके शरीर पर साँप लिपटा होता है।
15. मुख्य युद्ध-देवता जिसकी एंग्लो-सैक्सन, मुख्यतः योद्धा, पूजा करते थे। वह युद्ध में प्राणत्याग करने वालों की आत्माओं का अपने वालहला (Valhalla) नामक महल में स्वागत करता था।
16. यूरोप का सुदूर उत्तरी भाग जिसमें स्वीडन, नार्वे और फिनलैण्ड आते हैं। यहाँ की आबादी बहुत कम है और यहाँ के निवासी लाप या लैप (Lapps) कहलाते हैं। इनका कद नाटा, गालों की हड्डी उभरी हुई और नाक छोटी व ऊपर की ओर उठी हुई होती है। ये लोग प्रायः नंगे रहते हैं और शिकार व मछली पकड़ करके जीवन बिताते हैं। (हि. अ.)

—New Standard Encyclopaedia p. 767.

खड़े कर दिए जाते हैं जैसे वे उसकी जीवितावस्था में सेवा करते थे। उनके हाथों में हुक्का, पंखा, सूंघने की तम्बाकू और अन्य तातारी दरबार की शाही सामग्रियां दे दी जाती हैं।

इन दफ़नाए हुए खजानों की सुरक्षा के लिए वहां तहखाने में एक धनुष लगा दिया जाता है; वह ऐसा बनाया जाता है कि उसमें से एक के बाद एक बहुत से तीर छूटते रहते हैं। इस धनुष को या इन धनुषों को, एक साथ बांध कर उनमें तीर जंचा देते हैं। इस भूनिगत यन्त्र को ऐसी तरह नियोजित करते हैं कि तहखाने का फाटक खोलते ही पहला तीर चलता है और उसके बाद दूसरा, फिर तीसरा; इसी तरह अन्त तक एक के बाद एक चलते रहते हैं। धनुष बनाने वाले ऐसे घातक यन्त्र बने-बनाए तैयार रखते हैं और चीनी लोग जब कहीं बाहर जाते हैं तो अपने घरों की रक्षा के लिए उन्हें खरीदते रहते हैं।

"सती (प्रथा) के विषय में हमें अभी आगे लिखना है; इसको जो चित्तोन्माद की दशा कहा गया है वह ठीक ही है। अफ्रीका और पॉलिनीशिया (Polynesia) में भी समानान्तर रूप से यह प्रथा चलती है। मिस्टर लाण्डर (Mr. Lander) ने लिखा है–'यहाँ जेना (Jenna) में ऐसा रिवाज है कि जब कोई राज्यपाल (Governor) मरता है तो उसकी कृपापात्र स्त्रियों में से दो को उसी दिन यह संसार छोड़ना पड़ता है कि जिससे भावी (मरणोत्तर) दशा में थोड़ा बहुत आनन्ददायक समाज साधन उसके साथ रहे। परन्तु, पिछले गवर्नर की प्यारी पत्नियों में से किसी की भी आकांक्षा या इरादा अपने आदरणीय-पति के साथ कब्र में जाने का नहीं हुआ, इसलिए दफ़नाने की विधि से पहले ही वे कहीं जाकर छुप गईं और उसके बाद अन्य सामान्य स्त्रियों में ही छुप-छुप कर रहती रहीं। उन अभागी स्त्रियों में से एक को, जिसके मकान में हम रहते हैं, आज वर्तमान गवर्नर के मकान में से छुपी हुई को ढूंढ़ निकाला गया है और उसके लिए दो वैकल्पिक दण्डों की तजवीज की गई है कि या तो वह जहर का प्याला पी जाए अथवा अपने पूज्य गुरु के डण्डे से सिर तुड़वा ले। उसने पहली तजवीज को ही पसन्द किया है क्योंकि मरने में वह कम भयंकर रहेगी।"

—Journal of an expedition to explore the course and termination of the Niger, Vol. I; pp. 92–93.

"जिस प्रकार प्रमुख की स्त्रियों को अपने पातिव्रत का उदाहरण देने के लिए उसके साथ अदृश्य जगत् में जाने को (कण्ठ घोट कर) मरने को मजबूर किया जाता है उसी प्रकार की मौत उसके कुछ दरबारियों और हजूरियों पर भी लाद दी जाती है और वह हमेशा विशिष्ट मान-सम्मान की वस्तु समझी जाती है। जिन स्त्रियों की सन्तानें प्रमुख के मृत्यु के समय जीवित होती हैं उनको गला घोंटकर मार देने के लि[illegible] ज्यादा पसन्द किया जाता है। इसके कारण बहुत हैं, परन्तु उनमें से मुख्य यह

है कि वे सन्तानें मरने वाले प्रमुख की ही हैं इसका प्रमाण मिल जाता है और अपनी माताओं की मृत्यु के बाद वे उनके कब्जे की जायदादों पर दावा कर सकती हैं। यदि किसी की माता (मृत पति के साथ) मृत्यु का आलिंगन करने में आना-कानी करती है तो लोगों में उसका पातिव्रत संदिग्ध समझा जाता है और जब उसकी सन्तान उस स्थान पर जाती है, जो उसके अधिकार में है और अपना हक जाहिर करती है, तो उस जगह के मालिक यह आड़ ले कर उसके दावे को रद्द कर देते हैं कि उसकी माता पतिव्रता नहीं है; क्योंकि जब वह मृत प्रमुख के साथ मरण को प्राप्त नहीं हुई इससे स्पष्ट है कि वह प्रमुख के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से प्रेम करती है। टुइ किलकिला (Tui Kilkila) के भाई की तीसों स्त्रियाँ अपने पति के साथ मरने को तैयार हो गई थीं; परन्तु टुइ किलकिला अपने देश के सामान्य लोगों की अपेक्षा अधिक समझदार था और देश के रिवाजों को अन्धा हो कर नहीं मानता था इसलिए उसने केवल उन्हीं स्त्रियों को मरने की इजाजत दी जिनको उसके भाई से सन्तानें प्राप्त हुई थीं। इसके अलावा उसने कहा जिन जवान स्त्रियों के लड़के-बच्चे नहीं हुए हैं उनको अपना जीवन समाप्त करने का कोई कारण नहीं है। वह जानता था कि ऐसी स्त्रियों को वह अच्छी तरह अपनी पत्नियाँ बना सकेगा, जिससे बहुत लाभ होगा—क्योंकि उन दिनों जिस प्रमुख के जितनी ही अधिक स्त्रियाँ होतीं वह उतना ही बड़ा समझा जाता था।

"चौदह स्त्रियों ने इस प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लिया और, जहां तक मुझे मालूम हुआ, इस तरह दुनियाँ की नजरों में सम्मानपूर्ण तरीके से प्राण बच जाने के कारण वे अत्यधिक प्रसन्न हुईं क्योंकि इसमें टुइ किलकिला जैसे महान् राजा की राय और सहमति सम्मिलित थी, जिसके आदेशों को अमान्य करने की किसी में हिम्मत नहीं थी। परन्तु, एक जवान स्त्री (जिसको मिला कर बचाई हुई स्त्रियों की संख्या पन्द्रह हो जाती थी और यह समझा गया था कि वही दूसरी स्त्रियों को भी बचाने का अभिप्राय देने में मुख्य कारण थी) ने उससे विवाह के नियम को भंग करके उसे जीवित रखने का अभिप्राय देने का कारण पूछने का साहस किया और मार दिए जाने की मांग की। उसने टुइ किलकिला से पूछा, "तुम जिसके लिए मुझे जिन्दा रखना चाहते हो वह मनुष्य कहाँ है ? जब तुम्हारा भाई मर गया है तो ऐसा कौन सा योग्य पुरुष है जिसके लिए मैं जीवित रहूं ?" उस स्त्री ने टुइ किलकिला को उसके मृत भाई की अपेक्षा हीन होने का जो आभास दिया उससे वह खौल उठा और उसने दो स्त्रियों को उसको फांसी लगाने की आज्ञा दी। पहले से ही उसके गले में जो कपड़ा लपेट दिया गया था उसको उन दोनों स्त्रियों ने आज्ञानुसार खूब कस कर खींचा और जब वह मरण-वेदना के चिन्ह प्रकट करने लगी तो उसने फन्दा ढीला करने की आज्ञा दी। उसका विचार था कि जब उसने एक बार मरणान्तक यातना का अनुभव कर लिया है तो शायद अपनी दुर्दशा को

छोड देगी; परन्तु, उसकी तो बात ही दूसरी थी; उसने (स्त्री ने) स्वयं उस फन्दे वाले कपड़े के छोर पकड़ कर कसना शुरू कर दिया कि जिससे उन स्त्रियों का छोड़ा हुआ काम पूरा हो जाय। तब उस राजा को उसकी मूर्खतापूर्ण ज़िद का विश्वास हो गया और उसने फांसी लगाने वाली स्त्रियों को जल्दी से उसको समाप्त कर देने का आदेश दिया। वह युवती अपनी सुन्दरता के लिए प्रख्यात थी और मनुष्य प्राणी में जितनी सुन्दरता हो सकती है उतनी ही उसमें होगी भी—केवल वह गोरी नहीं थी और यदि गोरेपन का सुन्दरता के साथ कोई सम्बन्ध माना जाय तो बस, उसमें यही कमी थी—क्योंकि, अंग-सौष्ठव की तस्वीरें बता-बता कर जब-जब मैंने लोगों ने पूछा कि क्या वह ऐसी थी तो हमेशा मुझे यही उत्तर मिला कि 'वह इससे कही ज्यादा खूबसूरत थी।'

—'**Journal of a cruize among the islands of the Western Pacific**, including the Feejeer and others inhabited by the *Polynesian Negro Races, in Her Majesty's ship, Havannah, by* John Elphinston Erskine, Captain R. N. with maps & plates.

—John Murray.

इस विषय में सामान्यतया जो विचार प्रचलित हैं उनकी अपेक्षा शास्त्र-विरोधी हिन्दुओं और जैनों के विचार उचित लगते हैं परन्तु उनके मूल में, और किसी भावना के अतिरिक्त ब्राह्मण रिवाजों का विरोध ही अधिक जान पड़ता है। मजेरी (Mudgeri) पन्थ के एक गुरु से जो हकीकत मालूम हुई और जो एशियाटिक रिसर्चेज़ की नवी जिल्द में छपी है उसमें लिखा है "उनका कहना है कि दूसरी जातियों के लोग, जिनको शास्त्र का ज्ञान नहीं है, अपने सम्बन्धियों के मरने के बाद व्यर्थ में पैसा खर्च करते हैं; क्योंकि दूसरों को खिलाने-पिलाने से मृतक को क्या मिलेगा? जब दीपक एक बार बुझ गया तो उसमें कितना ही तेल डालो, रोशनी तो आने से रही।" इसलिए मृतक के लिए क्रियाकर्म और दावतें करना फिजूल है; और यदि सगे सम्बन्धियों को ही खुश करना है तो उसके जीवन काल में ही क्यों न किया जाय? "मनुष्य इस दुनिया में खाता, पीता और देता लेता है वही उसका है, परन्तु अन्त में, वह अपने साथ कुछ नहीं ले जाता।" इन जैनों के विचार एक अंग्रेजी कवि के निम्न कथन के अनुसार हैं—

"क्योंकि, निःशब्द कब्र में कोई बातचीत नहीं, मित्रों की खुशी देने वाली पदचाप नहीं, प्रेमियों के शब्द नहीं, सावधान पिता की सीख नहीं,—यह कुछ भी तो सुनाई नहीं देता, केवल विस्मरण, धूल और घोर अन्धकार के सिवाय कुछ नही।"[17]

———

17. Beaumont and Fletcher, **Thierry and Theodoret**, Act. IV, Scene 1.

प्रकरण नवां

मृत्यु के बाद गति, श्राद्ध, भूत, प्रचलित विश्वास

हिन्दुओं के गरुड़[1] एवं अन्य पुराणों में लिखा है कि जब कोई मनुष्य मर जाता है तो उसके पुत्र अथवा उत्तराधिकारी को पिण्डदान करना चाहिए; यदि पिण्डदान नहीं होता तो वह मृतक की आत्मा भूत योनि में चली जाती है। प्रथम छः पिण्ड देने की विधि का हम वर्णन कर चुके हैं। यदि चौथा पिण्ड देने के बाद क्रिया रुक जाती है अथवा कोई ऐसा कारण उत्पन्न हो जाय कि अग्निदाह में बाधा पड़ जाय तो ऐसा विश्वास है कि वह आत्मा भूत बन कर रहती है। इसी तरह, यदि केवल छः ही पिण्ड दिए जावें तो वह आत्मा प्रेतयोनि में रहती है। कहते हैं कि मृतक जिस घर में देह छोड़ता है उसके कोने-कोने में ही बारह दिन तक वह जीव भटकता रहता है। इसीलिए प्रतिदिन संध्या समय उस मृतक के स्नेही सम्बन्धी छत पर एक पात्र में दूध और दूसरे में पानी भर कर रखते हैं कि जिससे मरने वाले की भूख प्यास शान्त रहे। दूसरे पुराणों में कहा गया है कि इस स्थिति में जीव अग्निदाह के स्थान पर या चौराहे पर रहता है; कहीं-कहीं पर यह भी लेख है कि वह अपने घर में क्रमशः अग्नि, वायु और जल में वास करता है।[2]

---

1. गरुड़ पुराण और इससे भी नये एवं अल्प प्रमाणिक अग्निपुराण में अधिकांश महाभारत और हरिवंश के ही उद्धरण हैं।—देखिए मैकडॉनेल का हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ. 300

   मृतक के घर पर अस्थि-संचय के दिन से द्वादशाह तक नित्य गरुड़पुराण पढ़ा जाता है; इसके पढ़ने से मृतक की आत्मा को स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है।

2. इसका तात्पर्य यह है कि तुरन्त छोड़े गए देह और जीव में एक प्रकार का सद्यः सम्बन्ध रहता है और, यहूदियों की एक अनुश्रुति के अनुसार, जो सत्य पर अधिक आधारित जान पड़ती है, जिस देह में जीव ने इतने लम्बे समय तक वास किया है वह उसी के आसपास भटकता रहता है और वह समझता है कि सदैव के लिए इससे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं हुआ है तथा वह उस वातावरण से दृढ़ जंजीरों से बंधा हुआ है। विज्ञान भी अब इस नतीजे पर पहुंचा है→

मृत्यु दिवस से लेकर दस दिन तक नित्य एक पिण्ड दिया जाता है जिससे प्रेत का नया शरीर बनता है। इस अवधि मे मनुष्य के हाथ के अंगुष्ठ परिमाण के शरीर का निर्माण हो जाता है। दसवे दिन के पिण्ड से प्रेत की भूख और प्यास शान्त होती है जो उस समय तक उसके शरीर में उत्पन्न हो जाती है। गुजरात में आज भी दसवें दिन दस पिण्ड देने की साधारण चाल है।[3]

दसवे, ग्यारहवे, बारहवे अथवा तेरहवें दिन के बाद मासिक और वार्षिक श्राद्ध करने चाहिए। जो पुत्र श्राद्ध नहीं करता है वह निस्सन्तान मृत्यु को प्राप्त होता है और घोर नरक की यातना भोगता है। श्राद्ध में जो दान किया जाता है वह प्रेतों को यमपुरी के यातनामय मार्ग मे आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करने के निमित्त ही दिया जाता है। उन वस्तुओं को ग्रहण करके वरुण देवता श्रीकृष्ण को पहुँचाता है; कृष्ण उन्हें लेकर सर्वद्रष्टा सूर्य नारायण को देते हैं और सूर्य उन्हें मृतकों के जीव तक पहुँचा देता है। इस अवसर पर ब्राह्मण को शय्यादान करने से जीव को पालकी चढने को मिलती है; पगरखी, छतरी और पखे भी मान्य करने योग्य दान-वस्तुएँ हैं; प्रेत को मार्ग में प्रकाश मिले, इसके लिए शिवालय में दीपक लटकाए जाते है।

श्राद्ध किसी तालाव या नदी के किनारे पर करना चाहिए। श्राद्ध करने वाला मुण्डन कराता है और हाथ में जलभरा ताम्र पात्र लेकर, उसमें कुश एवं तिल डाल कर अपने पितामह, पूर्व पितामह, मातामह, पूर्वमातामह का नाम ले लेकर अंजलि

कि जीवन की अन्तिम प्रतिध्वनि शरीर में बहुत लम्बे समय तक गूँजती रहती है—इतने लम्बे समय तक कि जो सामान्य मान्यताओ से अधिक होता है; मृत्यु के बाद भी कुछ समय तक देह मे जीवन के अवशेष बने रहते है। इससे हमको इस बात का स्पष्ट विवरण मिलता है कि प्रायः मृत्यु से संघर्ष स्थिति कैसे तुरन्त ही विलुप्त हो जाती है और मरने वाले की सच्ची प्रतिमूर्ति, जो वर्षों पहले रही होगी, शान्त एवं आदर्श सौन्दर्य को लिए हुए हमारे सामने पुनः प्रकट हो जाती है।

—ट्रेंच, नोट्स ऑन मिरेकल्स, चौथा संस्करण, पृ 187

3. हिन्दुओं की मान्यता है कि पिण्डदान से जीव को स्थूल शरीर की प्राप्ति होती है जो बाद में पितर-शरीर मे परिणत हो जाता है। यह विधि 'सपिण्डीकर्म' कहलाती है। श्राद्ध दस दिन तक चलता है और फिर बारह मास तक प्रति मास मासिक श्राद्ध होता है, तदनन्तर निधन तिथि पर प्रतिवर्ष श्राद्ध किया जाता है। मनुस्मृति में वर्णित संक्षिप्त वैदिक श्राद्ध-विधि के लिए देखिए—

—एल. डी. बारनेट, एण्टीक्वीटीज ऑफ इण्डिया, 1913, पृ. 147.

देता है। यह विधि 'तर्पण' कहलाती है जिसका पहले विस्तार से वर्णन किया जा चुका है। फिर, वह उत्तराधिकारी कुश से मृतक की मूर्ति बनाता है और उसको स्नान करा कर पुष्प चढ़ाता है। श्राद्ध क्रिया के साक्षीभूत वैश्वदेव की भी ऐसी ही मूर्ति बना कर पास में रखी जाती है। श्राद्ध करने वाला अपने कुल-गुरु द्वारा सिखाए हुए मन्त्र का उच्चारण करके तथा जल का प्रोक्षण करके उन मूर्तियों में देवता और मृतक की आत्मा का आवाहन करता है। इनके समीप ही एक शालग्राम की मूर्ति रखी जाती है जो विष्णु का प्रतीक होती है; फिर इन तीनों का विधिवत् पूजन किया जाता है। फिर, उन कुश मूर्तियों और शालग्राम के आगे नैवेद्य रखा जाता है और श्राद्ध करने वाला एक बार पुनः मन्त्रोच्चारण करके जल से उनका प्रोक्षण करता है; इसका अर्थ यह होता है कि उसने देवताओं और पितरों का विसर्जन कर दिया है। गौओं के चरने के लिए घास डाला जाता है। जब ये क्रियाएं पूरी हो जाती हैं तो सम्बन्धियों और पड़ोसियों का जीमन होता है; श्राद्ध करने वाला अपनी सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मण-भोजन भी कराता है।[4]

यदि कोई मनुष्य निस्सन्तान हो तो उसको अपने जीवनकाल में ही श्राद्ध करना चाहिए और अपनी आत्मा की शान्ति के लिए पिण्डदान करना चाहिए; जिसकी उत्तरक्रिया नहीं होती वह या तो भूखा भूत हो कर दुःख पाता हुआ दिन-रात भटकता रहता है या बार-बार कृमि-कीट योनियों में जन्म लेता है या गर्भ में आ कर दिन का प्रकाश देखने से पूर्व ही मर जाता है अथवा मरने के लिए ही जन्म लेता है। यदि अन्य कारणों से किसी की उत्तरक्रिया नहीं होती या उसमें कोई खोट रह जाती है तो वह जीव नरक के दुःख भोग कर भूत योनि में पृथ्वी पर आता है और जिन लोगों के अपराध से उसकी दुरवस्था हुई है उनको दुःख देता है। वह उनको दुख देने को कोई प्रकार का ज्वर या अन्य रोग का रूप ले लेता है, भाइयों में झगड़ा करवाता है. जानवरों को मार देता है, लड़के-बच्चे होना बन्द कर देता है, लोगों के मन में कुत्सित और हत्या के विचार उत्पन्न करता है, और शास्त्र, देव-प्रतिमा तथा विपूज्य ब्राह्मण में श्रद्धा का विनाश करता है।[5]

---

4. यह बात ध्यान देने योग्य है कि Superstitio शब्द (जिसकी व्युत्पत्ति के विषय में बहुत मतभेद है) का अर्थ 'पूर्वजों के प्रति वंशजों और अनुजीवियों का कर्तव्य.' ऐसा कुछ लोगों द्वारा मान्य किया गया है। इसी धारणा के आधार पर हिन्दू शास्त्रों में पितरों की पूजा महत्वपूर्ण मानी गई है। इससे इस शब्द के मूल अर्थ पर प्रकाश पड़ता है।

देखिए—मोरिस, एसे. टुवार्ड्स द कनवेंसन ऑफ हिन्दूज, पृ० 196.

5. मृत्यु की उत्तरक्रिया करने में यदि उसके सगे-सम्बन्धी प्रमाद करते हैं तो प्रेत की सुख-सुविधा में बाधा पड़ती है, यह विश्वास भारतवर्ष तक ही→

गरुड़ पुराण में यह भी लिखा है कि यदि किसी मरने वाले का मन स्त्री, पुत्र, धन सम्पत्ति आदि सांसारिक वस्तुओं में अटका रहता है तो उसका जीव सहसा

सीमित नहीं है। पुरातत्व के अन्वेषक मिस्टर ग्रोस (Grose) 'Brand द्वारा उद्धरण के आधार पर' इस प्रकार लिखते हैं—

"कुछ ऐसे लोगों के भूत, जिनकी हत्या करके छुपे तौर पर उनके शरीर गाड़ दिए गए हैं, तब तक चैन नहीं पाते जब तक कि पूर्ण क्रिश्चियन धार्मिक विधि के अनुसार उनकी अस्थियाँ निकाल कर वापस किसी पवित्र स्थान में नहीं दफना दी जातीं। यह विचार प्राचीन हीदन (मूर्तिपूजकों) के विश्वासों की एक निशानी है। पुराने लोगों का विश्वास था कि कैरान (Charon) को ऐसे भूतों को पार उतारने की आज्ञा नहीं थी जिनके शरीर विधिवत् नहीं दफनाए गए हों. वे सौ वर्ष तक स्टाइक्स (Styx) नदी के किनारे इधर-उधर भटकते रहते थे; इस अवधि के बाद उन्हें मार्ग मिल जाता था।"

इसी के अनुसार महान् पुरुषों के मरणावसर के विषय में विचार प्रचलित है—"वोरचेस्टर शायर (Worcestershire) के बहुत से भागों में निम्नवर्ग के लोगों में ऐसा विश्वास चलता है कि जब किसी बड़े आदमी का देहावसान होता है तो तूफान, घोर वर्षा अथवा ऐसी ही कोई दैवी कोप से सम्बद्ध घटना होती है जो उसके भूमिदाह के क्षण तक शान्त नहीं होती। ड्यूक ऑफ वेलिंग्टन की मृत्यु के अवसर पर इस विश्वास ने बहुत दृढ़ता प्राप्त करली थी; उस समय कुछ सप्ताह तक भारी वर्षा हुई और ऐसी बाढ़ आई कि जैसी इस देश में पहले कभी नहीं आई थी; परन्तु ड्यूक की अन्तिम क्रिया के बाद वर्षा और बाढ़ शान्त होकर आकाश निर्मल हो गया। बड़े लोगों के मरणावसर पर (संयोग से) जिन महान् उत्पातों का वितरण हमारे इतिहास मे मिलता है उसी के आधार पर यह विश्वास सामान्य लोगों के मनों में घर कर गया होगा। ड्यूक को भूमि दाह देने से पूर्व के सप्ताहों में यत्र-तत्र कई लोगों से यही सुनने को मिलता था कि "जब तक ड्यूक को नहीं दफनाया जायगा मेह नहीं रुकेगा।'

राजमहल की पहाड़ियों का डेमानो—या शाकुनिक धर्माध्यक्ष इस नियम का अपवाद है। उसका भूमिदाह नहीं होता।

"जब कोई डेमानो मरता है तो उसके शरीर को जंगल में ले जाकर किसी वृक्ष की छाया में रख देते हैं और उसको डालियों व पत्तों से ढक देते हैं। उसको उसी चारपाई में छोड़ देते हैं जिसमें उसका प्राणान्त होता है। उसका भूमिदाह करने में यह विचार बाधक है कि यदि उसको गाड़ दिया जायगा तो वह भूत बनकर लौट आवेगा और गाँव वालों को दुख देगा; वृक्ष के नीचे शव रख देने से वह अपनी पैशाची सत्ता का अन्यत्र प्रयोग करेगा।"—एशियाटिक रिसर्चेज 4; पृ० 170.

नहीं निकलता; वह वहुत तड़प-तड़प कर मरता है और भूत वन जाता है। आत्म-घात करने वाला, सर्प के काटने से मरने वाला, विजली पड़ने से, डूव जाने से या पृथ्वी में दव कर मरने वाला तात्पर्य यह है कि किसी भी तरह आकस्मिक व अपमृत्यु को प्राप्त होने वाला मनुष्य भूत हो जाता है। जो ऊपर की मंजिल में या खाट पर ही प्राण त्याग करता है अर्थात् जिसको मरते समय जमीन पर नहीं उतारा जाता अथवा मृत्यु के उपरान्त जो शूद्र के स्पर्श से या अन्यथा अपवित्र हो जाता है वह भी भूत वनता है। मृतक के भूत योनि में जाने के और भी वहुत से कारण वताए गए हैं। वैदिक कर्मकाण्ड के ग्रन्थों[6] में अपमृत्यु या अकालमृत्यु-दोष निवारण के उपाय वताए गए हैं: यदि मृतक का उत्तराधिकारी उनका प्रयोग करता है तो मरने वाले की अपगति नहीं होती।[7]

जो आत्माएँ ऊपर देवों के स्वर्ग लोक में अथवा राक्षसों के पाताल लोक में जाती हैं उनके विषय में विचार करने से पहले यहाँ कुछ पृष्ठों में उन भूतों का विवरण देना उपयुक्त होगा जो विक्षिप्त होकर इसी मनुष्य लोक में घूमते रहते हैं।

कहते हैं कि भूत प्रायः श्मशान में, यज्ञ में काम न आने वाले इमली अथवा ववूल के वृक्षों में, उजाड़ स्थानों में, मृत्यु होने के स्थलों पर या चौराहों में रहते हैं—इसीलिए लोग ऐसे स्थानों पर उनके लिए 'उतारा' या वलि रखते हैं।[8]

---

6. जैमिनीय कर्म मीमांसा सूत्र में विविध क्रियाओं का वर्णन है जिनको सम्पन्न करने से सुफल प्राप्त होता है।

7. प्राचीन ग्रीकों के मत से केवल भूमिदाह न प्राप्त करने वाले ही नहीं, अकाल मृत्यु से मरने वालों को भी भूत वन कर भटकना पड़ता है। पादरी पीयर्सन कहता है कि उन लोगों की आत्माएँ, जिनके शरीर नहीं दफनाए गए हैं, तव तक स्वर्ग से वाहर रहेंगी जव तक कि उनका भूमिदाह नहीं कर दिया जाता; और जो लोग सहसा ही अकालमृत्यु को प्राप्त हो गए हैं उनकी आत्माएँ भी उतने समय तक स्वर्ग से वाहर रहेंगी जव तक कि उनकी स्वाभाविक मृत्यु का समय न आ जाय। (मिल्टन, कॉमस. पृ.470)
:ये ऐसी स्थूल और अशुभ एवं आर्द्र छायाएँ हैं जो प्रायः श्मशानों और दाहस्थानों पर देखी जाती हैं; ये नई वनी हुई कब्रों के आसपास भटकती रहती हैं या वैठी रहती हैं। मानों उस शरीर को नहीं छोड़ना चाहतीं, जिससे इनको इतना प्रेम था।

8. अरवी जिन भी प्रायः चौराहों पर भटकते रहते हैं; स्काटिश पिशाचिनियाँ भी जमीन में गाड़े हुए मुर्दों की पसलियों से वने कामठे लेकर घूमती हैं। देखिये—मिड समर नाइट्स ड्रीम, अंक 2, दृश्य-2

भूत के गले की नली-सूई की नोक के बराबर होती है इसलिए वह पानी नहीं पी सकता; उसको बारह घड़े पानी पीने की प्यास निरन्तर बनी रहती है। जहाँ-जहाँ जल के स्थान होते हैं वहाँ-वहाँ वरुणदेव के दूत भूतों को पानी पीने से रोकने के लिए मौजूद रहते हैं और इस प्रकार उनकी तृषा बराबर बढ़ती रहती है। भूत सभी प्रकार के मलमूत्र का भक्षण करते हैं। जिसका दाहसंस्कार एवं उत्तरक्रिया तो हो जाती है परन्तु सांसारिक वस्तुओं में आसक्ति के कारण जिसका मोक्ष नहीं होता वह उत्तम कोटि का भूत होता है और पूर्वज देव[9] कहलाता है; वह मकान में ही या पीपल के पेड़ पर रहता है।[10]

भूत-प्रेतों के पराक्रम इस प्रकार हैं:—वे किसी शव में प्रवेश करके उसके मुख से बोलते हैं; अपने जीवित शरीर जैसी आकृति धारण किए हुए दिखाई देते हैं; किसी जीवित मनुष्य के शरीर में आविष्ट होकर अपनी इच्छानुसार बुलवाते हैं; कभी-कभी वे उसको ज्वर अथवा अन्य कई तरह के रोगों से आक्रान्त कर देते हैं; कभी-कभी वे जानवर के रूप में प्रकट होते हैं और आग के भपाके में अन्तर्धान होकर लोगों को डराते हैं; और, कभी अदृश्य रहते हुए ही सिसकारी की आवाज में बोलते हैं। एक भूत किसी से गुत्थमगुत्था हो गया और उसे उठा कर किसी दूसरे

"जिनको चौराहों में या जल में दाह दिया गया है वे सब नरक में जाने वाले अभिशप्त पिशाच हैं।" —मैथ्यू. 12,43; ल्यूक 11, 24,

रिचार्ड पिनसन ने 1493 ई० में डाइव्स और पापर—का संवाद छापा है उसमें वर्ष के प्रारम्भ में प्रचलित अन्धविश्वासों में निम्नलिखित का विवरण है— "जिसका दुर्भाग्यपूर्ण अथवा अपशकुन युक्त दिवस टालना होता है वह चाँदनी रात या वर्ष के प्रथम दिवस में मूर्खतापूर्ण क्रियाएं करता है; वह भूतों और पिशाचों को तृप्त करने के लिए बेंच पर दारू और मांस रखता है।"—ब्राण्ड।

9. संस्कृत में पूर्वज का अर्थ है पहले जन्म लेने वाला। जैनों के अनुसार जिस मनुष्य का घर से मोह होता है वह मृत्यु के बाद सर्पयोनि में आकर वहां चक्कर लगाता है। गृहस्वामी प्रतिवर्ष उसके नाम पर ब्राह्मण को भोजन करा कर उसे प्रसन्न करता है।

10. भारत के अन्य भागों में भूतों के विवरण के लिए इस प्रकरण के अन्त में टिप्पणी दी गई है। मूल पुस्तक में हमारा वर्णन 'भूत-निबन्ध' नामक पुस्तक पर आधारित है। यह पुस्तक झालावाड़ निवासी दलपत राम डाह्याभाई नामक श्रीमाली ब्राह्मण ने गुजराती भाषा में लिखी है, जिस पर 1849 ई०. में उन्हें गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी से पुरस्कार मिला है। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद लेखक (फार्बस) ने 1850 ई० में प्रकाशित कराया था। वह उस समय उक्त सोसाइटी के सेक्रेटरी पद पर था।

स्थान पर रख आया। ऐसा भी कहते हैं कि भूतों से स्त्रियों के बच्चे भी हो जाते हैं।[11]

---

11. ऐसा लगता है कि प्रत्येक युग में और प्रत्येक देश में स्त्रियाँ अपने कुमार्ग-गमन को देवताभिगमन का रूप देकर छुपाती रही है। हेरोडोटस[1] कहता है, "जब डेमारेटस इस तरह बोला तो उसकी माता ने कहा–पुत्र! तुम सच्ची बात जानने के लिए इतने उत्सुक हो तो मैं तुम से कुछ नहीं छुपाऊँगी। अरिस्टन मुझे अपने घर ले गया उससे तीसरी रात को बिलकुल उसकी शक्ल का एक भूत मेरे कमरे में आया और मेरे साथ सो कर उसने मेरे सिर पर एक मुकुट रखा और वह वापस बाहर चला गया।"

इसी प्रकार यूरिपिड़ीज (Euripides)[2] के बाच्ची (Bacchae) नामक ग्रन्थ में नायक कहता है:—

"इस विषय में मेरी-माँ की बहिनें कहती है (यह उनके अनुरूप नहीं है) कि मैं जोव (Jove)[3] से उत्पन्न नही हुआ अपितु किसी मनुष्य प्राणी के प्रेम से गर्भ रह गया था; यह कैडमस (Cadmus), सैमिली (Semele) के पिता, की नीच युक्ति थी कि सैमिली ने अपना दोष जोव के सिर पर मढ दिया।"

ब्रिटिश इतिहास में मर्लिन (Merlin)[4] और आर्थर (Arthur)[5] दोनों ही भूत-पुत्र थे। देखिए—ज्याफरी (Geoffrey) का इतिहास, भा. 6 अध्याय 18; और भा. 8; अध्याय 19; इनमें से पूर्व (मर्लिन) के विषय में स्पेन्सर (Spencer) लिखता है—

"भविष्यवक्ता कहते है कि वह किसी मानव पिता अथवा जीवित मनुष्य की सन्तान नही था अपितु सुन्दरी साध्वी स्त्री पर किसी मायिक पिशाच के व्यभिचार पूर्ण प्रपंच से चमत्कारिक रूप में गर्भ रह कर उत्पन्न हुआ था।'

....

1. सुप्रसिद्ध ग्रीक इतिहासकार (ई॰ पू 484-424)
2. ग्रीस के तीन महाकवियो मे से एक; वह दुखान्त करुणापूर्ण काव्य लिखता था; जन्म ई॰ पू॰ 480; मृत्यु ई॰ पूर्व 406; वह स्त्रियों से घृणा करने के लिए प्रसिद्ध था। उसने अठारह नाटक लिखे थे।
3. ज्यूपीटर (Jupiter) अर्थात् वृहस्पति देवता का अमर नाम।
4. मर्लिन वंशपरम्परागत कवि या भाट था। उसका समय 12वीं शताब्दी में था। उसने आर्थर की प्रेम कथाओं का वर्णन किया है। ज़्याफरी ने उसकी चमत्कारिक उत्पत्ति के विषय में लिखा है।
5. ब्रिटेन का बादशाह। इसके विषय में बहुत सी दन्तकथाएँ प्रचलित है। मानमाउथ के ज्याफरी ने उसका विवरण लिखा है।

जैन शास्त्रों में भूतों के विषय में हिन्दू पुराणों से भिन्न ही मत प्रतिपादित किया गया है।[12] उनका कहना है कि आठ प्रकार के व्यन्तर देव और आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देव होते हैं जो पृथ्वी के नीचे रहते हैं। प्रत्येक जाति में दो दो इन्द्र होते हैं जो क्रमशः उत्तरी और दक्षिणी क्षेत्रों में राज्य करते हैं। उनका वर्ण काला नीला या सफेद होता है। ये व्यन्तर और वाणव्यन्तर देव पृथ्वी पर आकर मानव शरीरों में प्रवेश करते है; और कई रूपों में प्रकट होते हैं। और कई तरह के कुतूहल दिखाते है इसलिए वे सामान्यतः कुतूहली देव कहलाते हैं। इस जाति के देवों के नीचे भवनपति देव रहते है; वे भी कभी-कभी पृथ्वी पर प्रकट होते हैं। इनसे भी नीचे नारकी जीव रहते हैं। पृथ्वी से ऊपर आकाश में सूर्य, चन्द्र, तारा एवं अन्य पांच प्रकार के ज्योतिष्मान् देव रहते है। उनसे ऊपर बाहर देवलोकों में रथचारी या वैमानसी देव रहते हैं; वे कभी-कभी अपनी इच्छा से या कभी-कभी मन्त्र के वश में होकर पृथ्वी पर उतरते है; परन्तु वे, किसी को हानि नहीं पहुँचाते। इनसे ऊपर नौ प्रकार के ग्रीवेक और पाँच प्रकार के अनुत्तर विमानी देव रहते हैं। वे बहुत सामर्थ्यवान् होते है और कभी पृथ्वी पर नहीं उतरते। तपस्वी और शुभकर्म करने वाले जीव पृथ्वी से नीचे और ऊपर जो देव बताए गए हैं उनमें जन्म लेते हैं परन्तु पापियों का उनमें जन्म नहीं होता। पहले के जमाने में, जो मनुष्य 'अठम'[13] के तीन उपवास

स्काटलैण्ड के विषय में जानकारी के लिए लेडी ऑफ डमेल्जिअर और टेवीड के भूत की कथा पढिए। —Note M. Lay to the last Minstrel

भारत के विषय में हमारी कृति में शिलादित्य का वर्णन देखिए; इसी प्रकार उषा और अनिरुद्ध तथा कमलकुमारी की कथाएँ है। अपर के लिए देखिए—

—Captain Westmacott's article on Chardwar in Assam

—Journal Bengal Asiatic Society, IV, 187.

"बटलर ने इन कथाओं के बारे में लिखा है-प्राचीन वीरों ने किया उस तरह नहीं; उन्होंने तो, अपने नीच रीति से जन्म लेने की बात को छुपाने के लिए (यह जानते हुए कि उनका जन्म शंकास्पद रीति से हुआ है) तथा अपने लिए शूरवीर जाति का पद लेने के लिए, ज्युपीटर और अन्य देवताओं को अपनी माताओं का प्रेमी बताया है (इस विषय पर प्राचीन कवि होमर ने सर्वप्रथम प्रकाश डाला है)

—**Hudiliras**, खंड 1, कैण्टो 2, 5, 211–218

12. इस विषय में अधिक जानकारी के लिए मिसेज् सिक्लेयर स्टीवेन्सन कृत द हार्ट ऑफ जैनिज्म नामक पुस्तक का अध्याय 14 पढ़ना चाहिए। यह पुस्तक ऑक्सफोर्ड से 1915 ई. में प्रकाशित हुई है।

13. संस्कृत 'अष्टम' अर्थात् तीन दिन में आठ वार का भोजन न करने का व्रत।

कर लेता था वह देवों का आवाहन करने की शक्ति प्राप्त कर लेता था परन्तु अब तो कहते हैं, किसी के बुलाने पर देव पृथ्वी पर नहीं आते।[14]

भूतों के विषय में जो प्रचलित मान्यताएँ है उनमें भूतों और पिशाचों द्वारा मनुष्य के शरीर को अभिभूत कर लेने का विचार मुख्य है। अन्य देशों में और विभिन्न युगों में भूत किस प्रकार मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते रहे हैं तथा उनकी सत्ता का क्या और कैसा प्रभाव पड़ता है, इस कठिन परन्तु व्यापक विषय पर यहाँ

---

14. बिशप (पादरी) पियर्सन ने लिखा है "यह प्रथम आकाशीय स्वर्ग, जहां ईश्वर अपना तम्बू तानता है और जहां वह बादलों को अपना वाहन बना कर पवन के पंखों से विचरण करता है, दूसरे स्वर्ग से, जो दो महान् प्रकाशों, सूर्य और चन्द्र तथा एक से एक बड़े तारा समूह को धारण करता है, महिमा में बहुत छोटा है; परन्तु विस्तार में इतना छोटा नहीं है। फिर भी यह दूसरा स्वर्ग पहले से उतना ऊँचा नहीं है जितना कि तीसरा स्वर्ग इससे नीचा है। तीसरे स्वर्ग में सेण्ट पाल का स्थानक है। गतिमान् बादल की कालिमा से सूर्य का तेज उतना बढ़कर नहीं है जितना कि इस आकाश का प्रकाश, जहाँ परमात्मा की महिमा का निवास है, उस ताराच्छादित आकाश के मन्द सौन्दर्य से बढ़कर है जो हमको दिखाई देता है। कारण कि, जगत् के इस विशाल देवालय मे ईश्वर का पुत्र मुख्य पुजारी है; जो स्वर्ग हमको दिखाई देता है वह तो एक आवरण मात्र है; जो इससे भी ऊपर हैं वह 'पावनानां पावन' (पवित्र से भी पवित्र) है। यह आवरण बहुत मूल्यवान और महिमामय है परन्तु एक दिन फट जाने वाला है और तब हमको दया के स्थान और देवदूतों के निवास से भी श्रेष्ठ स्थान मे प्रवेश प्राप्त होगा। यह तीसरा स्वर्ग उन आशीर्वाद प्राप्त देवदूतों का स्थान है जो निरन्तर (परमात्मा के) महान् आसन के पास खड़े रहते है।"

यह रूपक इजरायल के देवालय का है। उसमें तीन खण्ड होते हैं; प्रथम खण्ड में सब कोई जा सकते हैं, दूसरे खण्ड में केवल पुजारी ही जाते है, दूसरे और तीसरे खण्ड के बीच में एक पर्दा रहता है। जो याजक या पुजारी कुछ निर्धारित क्रियाएँ कर लेता है वही अपने ऊँचे किए हुए हाथों में बलि लेकर पर्दे को हटा कर आगे जा सकता है। अन्दर, सामने ही दया-स्थान बना होता है जिस पर कोर कर बादल व आस-पास दो देवदूत बना दिए जाते हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि पहला स्वर्ग साधारण है। दूसरे स्वर्ग में सेन्ट पाल जैसे पहुँचे हुए सन्त जा सकते है। इसके बाद आवरण को हटा कर क्राइस्ट जैसे ही अपने रक्त की बलि हाथ में लेकर 'दया-स्थान' में महायाजक बन कर प्रवेश कर सकते है; वे ही जीव और ईश्वर के बीच मध्यस्थ बनते हैं।

अधिक लिखना ठीक नहीं लगता है।[15] परन्तु, इस स्थल पर हमें अपने पाठकों को यह सूचना देना आवश्यक लगता है कि गुजरात में, भूत मनुष्य शरीर में किस तरह प्रवेश करते हैं, इस वर्णन का आधार हमको एक ग्रन्थ में मिला है। यह ग्रन्थकर्त्ता इन मान्यताओं में विश्वास नहीं करता और अपने देशवासियों को बोध कराता है कि 'भूत जैसी कोई चीज नहीं है और जो ऐसा सन्देह होता है उसका निराकरण किया जा सकता है।'[16]

ग्रन्थकार कहता है, "यदि कोई कहे कि भूत होता ही नहीं तो हिन्दू शास्त्रों का विरोध करना होगा। ईसाई और मुसलमानी शास्त्रों में भी भूतों का अस्तित्व माना गया है। अतः इस मान्यता को कि भूतों का अस्तित्व है, झूठा नहीं कहा जा सकता।[17] परन्तु, इस जमाने में भूतों की जितनी बातें सुनी जाती हैं उनमें दस हजार में से कोई एक ही सच्ची होगी। अतः शास्त्रों में विश्वास करते हुए मैं इनकी सम्भावना को तो स्वीकार कर लेता हूं परन्तु जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत अनुभव है मुझे यह कहना पड़ता है कि मेरे देखने में या अनुभव में एक भी ऐसी बात नहीं आई है जिसको प्रमाण के रूप में उपस्थित किया जा सके।

"जहाँ तक हिन्दू शास्त्रों का सवाल है मुझे उनका अभिप्राय इस प्रकार लगता है कि—अशुद्ध रहने वाले, झूठ बोलने वाले और अन्य पाप कर्म करने वाले मनुष्य मरने के बाद भूत बन कर अनेक यातनाएँ भोगते हैं। ऐसा कहने का उद्देश्य इतना ही है कि अशुद्ध आचरण और पाप कर्म के विरुद्ध चेतावनी दी जाय। इसी प्रकार जब यह कहा जाता है कि भूत उन्हीं के शरीरों को अभिभूत करते हैं जो अशुद्ध रहते हैं तो इसका भी ऐसा ही तात्पर्य है। मेरे विचार से शास्त्रकारों का भी यही आशय रहा है परन्तु लोगों में इससे बहुत भ्रम फैल गया और इसका परिणाम

15. फिर भी, इस प्रकरण के अन्त में ब टिप्पणी देखिए। डॉक्टर जॉनसन ने लिखा है "यह बड़े आश्चर्य की बात है कि दुष्ट मनुष्यों से भी बढ़ कर दुष्ट आत्माएँ होती हैं; देहधारी दुष्ट प्राणियों के समान ही अदेहधारी भूत दुष्ट हो सकते हैं" हम इस विषय में इन्हीं शब्दों का तो प्रयोग नहीं कर सकते परन्तु यह विश्वास करने में हमको कोई हिचक नहीं है कि भूतों ने मानव शरीर को अभिभूत किया है; अब करते हैं या नहीं, यह कौन जाने ?
16. तिवाड़ी दलपतराम डाह्या भाई कृत 'भूत निवन्ध'।
17. विशप हाल के चिन्तन 2 नामक निवन्ध में लिखा है—"अच्छे और बुरे दोनों ही तरह के भूत होते हैं, इस सत्य को मूर्तिपूजक, यहूदी और क्रिश्चियन निस्सन्देह मानते आए हैं; यद्यपि अन्धविश्वासों के युग में सत्य के साथ बहुत तरह की कपट की बातें मिला दी गईं; इनके द्वारा ठगोरे और पिशाच मिल कर भले मानुसों को ठगा करते थे।"

बहुत बुरा निकला। अतः मुझे यह अधिक संगत लगता है कि लोगों में से भूतों का भ्रम निकल जांय। कहावत है कि 'भ्रम का भूत और शंका डाकण'। यदि लोग इसका तात्पर्य ठीक-ठीक समझ ले तो वे बहुत हैरानी से बच जावेंगे।

एक अन्य स्थल पर ग्रन्थकर्ता ने लिखा है—जब किसी मनुष्य के माथे में वायु प्रवेश करता है तो वह उदास होकर अकेले में चुपचाप बैठ जाता है, तब उसके सगे-सम्बन्धी और पड़ोसी पूछते हैं, *"क्या बात है?"* वह कहता है, *"यह तो पता नहीं, क्या बात है, परन्तु ऐसी मन मे आती है कि खूब चिल्लाऊँ और रोऊँ।"* तब वे लोग पूछेंगे कि वह कहाँ गया था, उसे कोई डराने या चमकाने वाली वस्तु दिखाई दी थी क्या? वह मन में विचार करने लगता है। दूसरे लोग भी आ आकर उससे ऐसे ही प्रश्न पूछने लगते हैं और उसे इतना तंग करते हैं कि अन्त में वह भोला मनुष्य वास्तव में रोने लगता है तब उसके हितैषी मित्र इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि उसमें भूत का आवेश हो गया है; वह भी बेचारा ऐसा ही विश्वास कर लेता है। वह तुरन्त ही काँपने और मरोड़े खाने लगता है और अन्त में उसका कम्प और मरोड़े इतने बढ़ जाते हैं कि भूतों में विश्वास न करने वाला कोई मनुष्य यदि उसकी तरह काँपने व मरोड़े खाने की कोशिश करे तो बिना अभ्यास किए वैसा नहीं कर सकता। उस रोगी का भी पक्का विश्वास हो जाता है कि उसके शरीर में प्रविष्ट भूत ही काँपता है, वह स्वयं अपनी इच्छा से ऐसा नहीं कर रहा है।[18]

---

18. तिनिवेली (Tennevelly) में जो कुछ होता है उसके वर्णन से निम्न विवरण बहुत मिलता-जुलता है—'यदि किसी मनुष्य को बुखार का कम्प मालूम होने लगे अथवा पित्त विकार उसका सिर दर्द करने लगे तो उसकी अपरिष्कृत कल्पना में यह बात आ जाती है कि उसको भूत ने अभिभूत कर लिया है। वह अपना सिर इधर से उधर डुलाता है, आँखों को स्थिर करके एकटक देखने लगता है, अपने आपको विशेष मुद्रा में स्थिर करता है और पागल की तरह नाचने लगता है; तब आसपास खड़े हुए लोग फूल, फल, बलि, मुर्गा या बकरा लाने को दौड़ते हैं, जो उसको सम्मानपूर्वक भेंट किए जा सकें।' देखिये—The Tennevelly Shanars by the Rev. K; Caldwell, B.A.; printed for the Society for the propagation of the gospel in A. D. 1850.

शेक्सपियर कृत ट्वेल्फथ नाइट का चतुर्थ अंक का तीसरा दृश्य भी बड़ा मनोरंजक है। उसमें मलवोलियो को भूत से अभिभूत ठहराया जाता है—परन्तु उसका पागलपन भूताभिभूत से भिन्न है क्योंकि वह उदास न होकर प्रसन्नचित्त है। तभी ओलीविया यह कह कर हमे संकट से उबार लेती है—

'यदि उदासी और प्रसन्नता भरा पागलपन समान हो तो मैं उसी की तरह पागल हूं।'

निबन्धकार आगे लिखता है—'मेरा सम्बन्धी एक ब्राह्मण मर गया। मृत्यु के सात महीने बाद वह अपनी स्त्री को अभिभूत करके कँपाने लगा। वह स्त्री सहज में नम्र स्वभाव वाली और दुर्बल शरीर की थी; परन्तु, जब उसमें (भूत का) आवेश होता तो वह ऐसी प्रचण्ड बन जाती थी कि कोई भी उसके प्रश्नों का उत्तर देने या उसका विरोध करने का साहस नहीं कर सकता था। मृतक का एक मित्र उसके घर आया तो स्त्री ने उससे कहा, 'आओ भाई! एक दिन हम दोनों एकान्त में बैठे थे तब मैंने जो बात कही थी वह याद है न?" मित्र ने कहा, 'हां मुझे याद है।' दूसरी बार एक पड़ोसी घर पर आया तब स्त्री ने कहा, 'अरे बनिए! मैंने तुझे जो रुपया दिया था उसके बारे में तूने अभी तक मेरी पत्नी को नहीं कहा?" उस आदमी कहा, "हां, तुम्हारे पचहत्तर रुपये आठ आने मुझे देने हैं, मैं तुम्हारी स्त्री को दे दूंगा।" उस स्त्री को रोज ही ऐसे दौरे पड़ते रहे और लोगों को उसकी ऐसी बातें सुन-सुन कर बड़ा आश्चर्य होता था। मैंने इस बारे में जाँच की तो यह बात सामने आई कि वह ब्राह्मण प्रायः अपने मित्र से एकान्त में बातें किया करता था; उस औरत को यह बात मालूम थी इसलिए अनुमान से उसने उक्त बात कह दी और मित्र को विश्वास हो गया कि वह उस वार्तालाप का संकेत कर रही है जिसमें ब्राह्मण ने निस्सन्तान होने के कारण मृत्यु के बाद मुक्ति न प्राप्त होने का भय प्रकट किया था क्योंकि शास्त्रों में लिखा है—

'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।'

पुत्र हीन की गति नहीं होती, उसे कभी स्वर्ग प्राप्त नहीं होता।

इसी प्रकार यह सब को मालूम था कि मृतक का पैसा बनिये के पास रहता ही था; इस बात से औरत के मन में मांग करने का ख़याल पैदा हुआ और बनिये ने सोचा कि ब्राह्मण का भूत ही उसकी स्त्री के शरीर में आकर बोल रहा है इसलिए तुरन्त ही सच्ची बात कबूल कर लेना चाहिए।[19] मैं भी एक दिन उन लोगों

19. मृतकों की आत्माओं से व्यवहार करते समय मनुष्य के मन में एक विचित्र ही भाव रहता है। उनके अन्तिम इच्छापत्रों की पूर्ति, जिसका दायित्व हम पर आ गया है; उनके बच्चों की देखभाल, जिनमें उनकी आकृति और आचरण वास्तव में अब भी वर्तमान हैं; उन योजनाओं का विकास जिनको अधूरी अवस्था में वे हमारे हाथों सौंप गए हैं; उनके दिए हुए आशीर्वादों का उपभोग; ये सभी बातें हम को उनसे ग्रथित रखती हैं। हम इच्छा करें तो भी हमारे स्वप्न उन्हें हमारे सामने आने से नहीं रोक सकते; हमारी परम्पराएं उन्हीं से आबाद हैं; गुम्बजों के पत्थरों पर खुदे हुए लेख, जो बहुत पहले से आम रास्तों पर कतारों में लगे हुए थे या दरवाजों के घेरे में लगे थे अब हमारे नित्य आने जाने के स्थान गिरजाघरों के इर्दगिर्द इकट्ठे

के घर पर गया तब उन्होंने कहा, आपको भी कोई प्रश्न करना हो तो करें, सन्तोष-जनक उत्तर मिलेगा।" उस स्त्री ने मुझे उसी तरह सम्बोधित किया जैसे उसका पति किया करता था। मैंने कहा, 'हमारे तुम्हारे लेनदेन के हिसाब में कुछ ग़लती रह गई है; अच्छा हुआ तुम आ गए हो, अब इसे ठीक कर दोगे।' तब, निरन्तर काँपती हुई उस स्त्री ने अपने मन से ही उस हिसाब की याद करके ज़ोर-ज़ोर से दोहराना शुरू किया। तब मैंने कहा, "यह तुम्हारे हाथ का लिखा हिसाब मौजूद है; इस वही में अपना लिखा हुआ मुझे पढ़ कर सुनाओ।" स्त्री ने कहा, "वही में लिखा हुआ मैं नहीं पढ़ सकता।" सब लोग हँसने लगे। मुझे भी इससे निश्चय हो गया कि यह भूत की बात बिल्कुल झूठी है। मैंने जितने सवाल किए उनमें से एक का भी उत्तर वह स्त्री नहीं दे सकी। दूसरे लोगों ने भी मृतक के काका, मामा आदि के नाम पूछे जो वह तुरन्त नहीं बता सकी। फिर, मैंने पूछा, "अमुक दिन मैं और तुम एक पुस्तक साथ-साथ पढ़ रहे थे उसका क्या नाम है?" इसका भी वह कोई उत्तर नहीं दे सकी। मैंने समझ लिया कि वह उन्हीं प्रश्नों का उत्तर देती है जिनका आसानी से दे सकती है।"

गुजरात मे ऐसा रिवाज़ है कि जंगल में जिस पेड़ को लोग बचाना चाहते हैं उस पर सिन्दूर से त्रिशूल का निशान बना देते हैं या ऐसी सुविधा न हो तो कुछ पत्थर इकट्ठे करके उसके मूल में रख देते हैं। बाद में जो कोई उधर से निकलता है वह भी उस वृक्ष को भूत का निवास समझ कर उस ढेर में दो एक पत्थर अवश्य जोड़ देता है। कुछ लोग बिना समझे बूझे देखादेखी में भी ऐसा कर देते है। यदि वह पेड़ ऐसी जगह हो जहाँ आसपास मे पत्थर न हों तो एक फटा चिथड़ा फेंक देते है जो उस पर अटक जाता है और उधर से निकलने वाले अन्य लोग भी इसका अनुकरण करते हैं। फिर, वे उसको 'चिथड़िया मामा' का स्थान कहने लगते हैं। जहाँ पेड़ों की कमी होती हैं वहाँ प्रायः ऐसे स्थान अधिक देखने में आते है और लोग उनको छू लेने पर बहुत परेशान होते हैं। इन वृक्षों का मान करने के लिए ही 'मामा' नाम स्त्रियों का दिया हुआ है। पुरुषों में तो फिर भी ऐसा अन्धविश्वास

कर दिए गये हैं—ये लेख बहुत अस्पष्ट और भोंड़े हैं परन्तु यहाँ मेरा मतलब यह है कि वे इस बात का प्रमाण हैं कि मनुष्यों के मन में मृतकों से बातचीत करने या सम्बन्ध बनाए रखने की कितनी तीव्र भावना रहती है। अत्यधिक साहित्यिक समृद्धि वाले राष्ट्रों के बड़े-बड़े लेख और जंगली कहलाने वाली जातियों के रीति-रिवाज तथा प्रचलित वहम (अन्धविश्वास) समान रूप से इसी तथ्य का सूचन करते हैं।"

—Four Sermons preached before the University of Cambridge in November 1849 by the Rev. J. J. Blunt, B.D. Margret Professor of Divinity, p. 2.

कम होता है परन्तु स्त्रियाँ किसी भी 'चिथड़िया मामा' के मूल में एक दो पत्थर रखे या चिथड़ा चढ़ाए विना आगे नहीं जाती। यदि कभी चिथड़ा न मिले तो वह अपनी साड़ी मे से ही एक दो तार या लीर निकाल कर चढा देती हैं। यदि कोई स्त्री यह दस्तूर करना भूल जाती है तो वह इसके दुष्परिणामों से भयभीत होकर कांपने लगती है और चिल्लाती है 'मैं मामा हूँ, इसने मेरे पत्थर या चिथड़ा नहीं चढ़ाया[20] इसलिए मैंने इसे पकड़ लिया है। इसी तरह जहाँ छोटी सी पहाड़ी या टेकरी होती है तो उस पर कुछ पत्थर एक पर एक करके चुन देते हैं और फिर उधर से निकलने वाला हर एक आदमी उस पर-पत्थर चढ़ाता चला जाता है और समझता है कि वह किसी देव का स्थान है तथा कोई 'देवरा' चुनवाएगा तो उसका घर फले-फूलेगा। जिस स्थान पर कोई मनुष्य मारा गया हो या घायल हुआ हो वहाँ भी ऐसे ही स्थानक वना दिए जाते हैं।[21]

---

20. स्त्रियों को अपेक्षाकृत भ्रम अधिक होता है इस विषय में दूरदर्शी राजा जेम्स ने लिखा है—

'इसका कारण स्पष्ट है, स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा मन की दुर्बलता अधिक होती है इसलिए वे पिशाच के महाजाल में जल्दी फँस जाती है; (सृष्टि के) आरम्भ से सर्प ने ईव (हव्वा) को धोखा दिया उसी समय से इस बात की सच्चाई साबित है; उसी समय से शैतान स्त्री जाति से हिल गया है।'

कर्नल टॉड ने हारावती (हाड़ौती) में एक ऐसे ही रिवाज का संदर्भ दिया है:—

"आधे रास्ते चल कर हमें विना चुने हुए पत्थरों का और बिना छत का मकान मिला जिसमें भीलों की देवी विराजमान थी; यह स्थानक कँटीली और आपस में उलझी हुई झाड़ियों की कुंजों के बीच में था; झाड़ियों और पेड़ों की टहनियों पर रग-विरंगे कपड़ों के चिथड़ों की सजावट थी; ये चिथड़े जंगल के यात्रियों ने पिशाचों की बाधा से त्राण पाने के लिए चढाए थे। मैं समझता हूँ, इन पिशाचों से भीलों का ही तात्पर्य है।" आगे उसने एक टिप्पणी में लिखा है "पार्क ने ऐसी प्रथा अफ्रीका में प्रचलित होने का विवरण दिया है।"

—टॉड, एनाल्स ऑफ राजस्थान, ऑक्सफोर्ड, 1920, खंड 3, पृ. 17

21. ऐसे चैत्य, स्तूप या शंकु के आकार के पत्थरों का मृतकों से सम्बन्ध है, इस विषय में स्कॉट ने **The lay of the last Minstrel** के सर्ग 2 पृ. 29 व टिप्पणी में लिखा है:—

'बहुत से शंकु के आकार के पुरातन मीनार खड़े है जिनके नीचे महान् बलशाली शासकों के बच्चे छुपे पड़े हैं।' →

एट्रुस्कन लार अथवा ग्रीसियन नायक की तरह पूर्वज (पितर) देव अपने पूर्व निवास के आसपास भटकते रहते हैं और वहाँ के निवासियों को खतरे से बचा

जब आसफ़ खान की अधीनता में अकबर की सेना ने चढ़ाई की तो उसका सामना करती हुई गढ़ मण्डला की राज्यकर्त्री रानी दुर्गावती मारी गई थी अथवा, जैसा कि उसके परिवार के एक शिलालेख (एशियाटिक रिसर्चेज़ 15, पृ. 437) से निश्चय होता है, "हाथी पर सवार दुर्गावती ने अपने हाथ की तलवार से अपना मस्तक काट डाला; वह परमात्मा में लीन हो गई; वह सूर्य मण्डल को भेद गई।"

बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल, भा. 6, पृ. 628 में एक लेखक ने लिखा है कि "जहां उसकी मृत्यु हुई उसी स्थान पर उसका भूमिदाह दिया गया और उसकी छत्री पर आज भी यात्री लोग, आसपास में सफेद पत्थरों से भरी पहाड़ियों में से, बढ़िया से बढ़िया पत्थर ढूँढ कर चढ़ाना कर्त्तव्य समझते हैं। उसकी छत्री के दोनों तरफ़ दो चट्टानें हैं; लोगों का खयाल है कि ये रानी की 'नौबतें' हैं जो पत्थर के रूप में बदल गई हैं। रात्रि की परम शान्त वेला में इनसे निकलने वाली ध्वनि के विषय में आसपास के गाँवों में विचित्र-विचित्र कथाएँ प्रचलित हैं।

लोगन ने अपने स्कॉटिश गेल, 2, 371 में लिखा है कि हाइलैण्डर्स (स्कॉटलैण्ड की पहाडियों में रहने वालों) में, किसी मज़ार के पास हो कर निकलते समय पत्थर चढ़ाने का प्रसिद्ध रिवाज़ दो भावनाओं पर आधारित है। पहली बात तो यह है कि यह चाल मृतक के प्रति सम्मान भावना से उत्पन्न हुई, जिसकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए वे उसके मज़ार को बड़ा बनाना चाहते हैं और इसी कारण किसी की जीवित अवस्था में, यह कहने की प्रथा चली कि 'मैं तुम्हारे मज़ार पर पत्थर चढ़ाना कभी न भूलूंगा।' स्पष्ट है कि इस अवधान के कारण उसकी आत्मा को सन्तोष प्राप्त हुआ माना जाता था और बड़ा स्मारक बड़े सम्मान का प्रतीक समझा जाता था। परन्तु, इस मामले में प्राचीन जर्मन लोगों का कैल्टों (Celts) से मतभेद था; वे दाह-स्थान पर केवल मिट्टी का ढेर लगा देते थे और कहते थे कि बड़ी कब्रें बनाने से मृतक को दुःख पहुँचता है। कब्रों पर पत्थर डालने का दूसरा कारण यह है कि इससे अपराधियों और खोटे मनुष्यों के दाह-स्थान को पहचानने में सहूलियत होती है; डा. स्मिथ का कहना है कि यह चाल ड्रूइड (Druids) लोगों की चलाई हुई है। यह बड़ी विचित्र बात है कि दो परस्पर विरोधी भावनाओं के परिणाम में एक ही तरह के ढंग का रिवाज़ चल पड़े। परन्तु, बात सच है और ग्रन्थकर्त्ता भी अपनी युवावस्था में कभी किसी आत्मघात करने वाले की कब्र के पास से गुजरा है तो रिवाज़ के माफिक उस पर पत्थर डालने से कभी नहीं चूका है। इस मामले में असली उद्देश्य मृतक की आत्मा को प्रसन्न करने का

कर उनका भला करते रहते है। वे सूर्य के रूप में प्रकट होते है और फिर उस घर के रहने वाले उनका बहुत मान करते है। गुजरात मे यह साधारण मान्यता है कि

रहा है, जो, कैल्ट पुराणों के अनुसार अवकाशहीन कब्रों के चारों ओर चक्कर लगाती रहती हैं।

एबर्डीनशायर (Aberdeenshire) की डान (Don) नामक कविता की टिप्पणी में एल्फोर्ड (Alford) परगने का विवरण इस प्रकार दिया है:—

"यहां पर लेनटर्क (Lenturk) जैसों की बहुचर्चित बहुत-सी बड़ी-बडी कब्रें हैं; वे बडी विशाल हैं; लोगों का खयाल है कि वे भय का सृजन करने वाले स्थान हैं, परन्तु वे बहुत निम्न स्थानों में बनी हुई है इसलिए, मेरे विचार मे, वे उन वड़े आदमियों के मकवरे है, जो अपने जीवन काल में देश-हित के कार्य करते रहे हैं। जब कोई पुरुष सार्वजनिक हित में दान करता है तो ग्रामीणों में आज भी यह कहावत सामान्य रूप में प्रचलित है "यदि मैं तुम्हारे बाद जीवित रहा तो अवश्य ही तुम्हारी कब्र पर एक पत्थर चढ़ाऊँगा, परमात्मा इसका साक्षी है; और, आज भी बहुत से वृद्ध पुरुष इन कब्रों की तरफ़ एक पत्थर डाले बिना उधर से नही गुजरते हैं। बहुत से लोगों का खयाल है कि जहाँ मृतकों को दफनाया गया है उस स्थान के इर्दगिर्द उसकी आत्मा घूमती रहती है और वह मकबरा पृथ्वी से जितना ऊँचा होता जाता है वह आत्मा भी स्वर्ग की ओर ऊँची पहुँचती चली जाती है।

अपने (Views in Spain) नामक लेख में जो ब्राण्ड (Brand) की (Popular Antiquities) के Ell वाले संस्करण मे उद्धृत हुआ है हॉक लॉकर (Hawk Locker) ने ग्रेनेडेला (Grenadilla) का वर्णन करते हुए लिखा है—"हमने दो या तीन 'क्रास' देखे जो स्थान का सूचन करते थे जहाँ रास्ते में कुछ अभागे मनुष्यों ने भीषण मृत्यु प्राप्त की थी। इनमे से कुछ तो सम्भवतः दुर्घटना से मारे गए थे परन्तु सभी के विषय में ऐसा विवरण दिया गया कि उनका बड़े ही बर्बर ढग से वध किया गया था और जो वर्णन हम को सुनाया गया वह ऐसा लगता था मानो वह हम सैकड़ों बार पहले सुन चुके है। इन असामयिक कब्रों पर पत्थर डालने का पुराना रिवाज अब भी स्पेन में सर्वत्र देखा जाता है। प्रीति अथवा वहम से प्रेरित होकर, मृतक के लिए चुपचाप प्रार्थना करते हुए यह भेंट चढाई जाती है। परन्तु इन भावनाओं से रहित कोई अजनबी भी मृतक के प्रति मान प्रकट करने के देशाचार से प्रेरित होकर उस ढेर में एक पत्थर और जोड़ देने से सन्तोष प्राप्त करता है।

हम नीचे जो उदाहरण दे रहे हैं उससे पत्थर डालने वालों की एक दूसरी ही भावना का पता चलता है। यह उदाहरण लैप्सिउ (Lepsiu) के Letters from Egypt (Bohu, p. 216) से लिया गया है—

जहाँ धन गड़ा होता है वहाँ सर्प रहते हैं और वे सर्प उन मृतकों के भूत हैं जिन्होंने वह धन संचित किया था तथा अब उसी के मोह में पृथ्वी पर विचरते हैं।

"इस पर्वत श्रेणी (Gebel el Mageqa) में प्रवेश करने से पहले हम एक ऐसे स्थान पर आए जो पत्थर के ढेरों से भरा हुआ था; इनके नीचे यद्यपि किसी को नहीं दफनाया गया था फिर भी इनको देख कर कब्रों का ख़याल किया जा सकता था। जब जब खजूर के व्यापारी (जिनमें से बहुत से अपनी गुथी हुई टोकरियों के साथ हमको दूसरे दिन मिले थे) इस रास्ते से गुजरते हैं तो उनके ऊँट चलाने वाले इस स्थान पर उनसे एक तुच्छ भेंट मांगते हैं। जो नहीं देता है उसको कठोर-हृदयता के अपशकुन के रूप में ऐसी ही एक कब्र बनेगी। ऐसा कहते हैं। कोरस्को (Korusko) के जंगल में भी हमको ऐसी ही कब्रों का समूह देखने को मिला था।"

ऐसी भी कथा देखने में आई है कि जिनमें एक साथ युद्ध व अन्यथा मरे हुए बहुत से लोग सामूहिक रूप से भूत हो गये और वे किसी अपने उपयुक्त स्थान पर रहने लगे। आस पास में अपने चमत्कार दिखाने लगे और लोग उनसे भयभीत रहने लगे। मादर ढाढ़ी कृत **वीरमायण** में एक ऐसी ही कथा आती है।

एक समय आलणसी और मल्लीनाथ का तीसरा कुंवर कूंपा जैसलमेर जाते हुए एक जंगल में पहुंचे जहाँ एक स्थान पर आधी रात को भूतों ने एक माया रची। भूतों ने आलणसी से कहा कि तू हमारा भाई है, हम एक ही वंश के हैं, और फिर भूत ऐधूले ने अपना सब वृत्तान्त और उद्देश्य उससे कहा। आलणसी ने जो शर्तें रखीं भूतों ने उसे स्वीकार किया जिस पर आलणसी ने उन्हें विश्वास दिलाया कि आपकी पुत्री, कूंपा अवश्य ब्याह लेगा और उनकी लड़की कूंपे ने ब्याह ली। हथलेवे के समय उनसे वचन ले लिया कि समय पड़ने पर आपकी सहायता में बीस हजार भूत लड़ने को हाजिर हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त भूतों ने अरखाणां खांडा, फतहजीत नगारा और कवलिया घोड़ा दहेज में दिया। इससे दोनों प्रसन्न होकर महेवे आए और यह सब कथा मल्लीनाथ ने आलणसी से कह दी।

"ऐधूलो सोढ़ो भूत हुवोड़ो आलणसी भाटी सूं मिलिया ने कूंपाजी नैं आपरी बेटी परणाई"

भूत कमावै भागरा देखो आछो दन्न।
तेजल रै नवनिधि घरै आलण रे नह अन्न॥
चन्दण नै चावो कियो आलण रो उपगार।
धन जोड़े वत धूड़ में केवल कै कुणवार॥

ठाकुर भूरसिंह जी राठोड़ पेफाना जिला गंगानगर का मत है कि ये भूत मुसलमानी धर्म में परिवर्तित राजपूत थे और उस समय यह रिवाज था कि कोई

निबन्धकर्ता ने लिखा है, "एक बार एक श्रावक बनिए के घर दो पाहुने आए। घर का मालिक बाज़ार-चौहटी गया हुआ था इसलिए उसकी पत्नी ने अतिथियों को बिठाया और वह कुएँ पर पानी भरने चली गई। मेहमान बैठे हुए गृहस्वामी की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि उनको एक विशाल सर्प दिखाई दिया। तुरन्त ही एक पाहुने ने लकड़ी से उस सर्प को दबा लिया और दूसरा सँड़ासा ढूँढने लगा, जो प्रायः हर घर में साँप पकड़ने के लिये रखा जाता है। इतने ही में वह स्त्री पानी लेकर आ गई और साँप को लाठी से दबाया हुआ देख कर चिल्लाई 'इन्हें छोड़ दो, जाने दो, यह तो हमारे पूर्वज देव हैं; यह मेरी सास के शरीर में आते थे, वह पूजती थी, कुछ समय पूर्व मरे मेरे श्वसुर का नाम बताती थी और कहती थी कि यह वही हैं।" वह शरीर में आकर यह भी कहते थे "मेरी आत्मा सम्पत्ति में उलझी हुई है इसलिए मैं सर्प होकर इस घर में रहता हूं।" एक दिन इन्होंने (सर्प ने) पड़ोसी को काट लिया तो जती उसका इलाज करने आया। तब पूर्वज देव ने पड़ोसी के शरीर में आ कर कहा, "मैंने इसको इसलिए काटा है कि यह अपने लड़के से लड़ता है, अब यदि यह आश्वासन दे कि आइन्दा झगड़ा नहीं करेगा तो मैं इसे छोड़ दूंगा।' उसी दिन से यदि यह सर्प हमारे पड़ोसी के घर में भी चला जाता है तो इसे कोई नहीं छेड़ता तुम इसे बीस मील दूर ले जाकर भी छोड़ दो तो यह वापस इसी स्थान पर आ जावेगा। कई बार मेरा पैर इससे छू गया परन्तु मुझे कभी नहीं काटा; और, कभी मैं पानी लेने चली जाती हूँ और बच्चा रोने लगता है तो यह उसके पालने को झुलाने लगता है। ऐसा मैंने कई बार देखा है।" इस तरह उस स्त्री ने उनको साँप को छेड़ने से रोक दिया और उसे छुड़ा कर नमस्कार किया। जिस मेहमान ने उसको पकड़ा था वह भी अपनी पगड़ी उतार कर कहने लगा, 'हे साँप बाबाजी! मैंने तुमको लकड़ी से रोक दिया था, मुझे माफ़ करो, मैं तुम्हारा बच्चा हूँ।" थोड़ी देर बाद एक बिल्ली ने आकर उस सर्प को मार डाला; तब घर वालों ने उसके टुकड़े बटोर कर चिता पर रखे और उसमे चन्दन की लकड़ी, नारियल तथा घृत की आहुति दी।"

"एक ब्राह्मण ने धोलका के प्राचीन नगर मे जमीन मोल ली और वहां पर नया मकान बनवाने के लिए वह नींव खुदवाने लगा; तब एक जमीदोज कोठे में बहुत-सा धन निकला। उस धन की रक्षा के लिए वहां पर एक बड़ा सर्प रहता था जिसने सपने में आकर ब्राह्मण को कहा, "यह धन मेरा है और मैं इसकी रक्षा के लिए यहां

परिवर्तित राजपूत असली राजपूत की लड़की से विवाह नहीं करता था। ऐवूना सोढा के एक लड़की थी जो उस समय पैदा हुई थी जब वह हिन्दू था इसलिये उसका हिन्दू राजपूत से ही विवाह करना आवश्यक था। इसलिये यहां मुसलमान हुए सोढ़ा राजपूतों को मृत लिखा है।

रहता हूँ इसलिए न तुम कोठे को तुड़वाओ और न इस धन की इच्छा करो। यदि ऐसा करोगे तो मैं तुम्हारा वंश नहीं चलने दूँगा।" सुबह होते ही ब्राह्मण ने गरम-गरम तेल का घड़ा कोठे में उंडेल दिया जिससे वह साँप मर गया। तब उसने कोठा तुड़वा दिया और पहले वहाँ से धन हटा कर बाद में उस सर्प को विधिवत् उसी चौक में जला दिया। इस प्रकार धन प्राप्त कर के उसने आलीशान मकान बनाया परन्तु उसके पुत्र नहीं हुआ और उसकी लड़की भी निस्सन्तान ही रही; यही नहीं, जिस किसी ने उस धन में हिस्सा लिया, उस ब्राह्मण की नौकरी की, या उसके प्रतिनिधि रूप काम किया अथवा जो भी उसका कुल पुरोहित बना वह भी निस्सन्तान रहा। कहते हैं कि यह कोई चालीस वर्ष पहले की बात है।[22]

---

22. गुजरात की तरह भारत के अन्य प्रान्तों तथा राजस्थान में भी गड़े हुए धन पर साँपों के बैठने की बातें प्रचलित हैं। 'साँप बन कर बैठने' का तो मुहावरा ही बन गया है। कोई आदमी पास में धन होते हुए भी खाने खर्चने में कजूसी करता है तो कहते हैं 'यह सर्प होगा।' ऐसे दो किस्से हमारी जानकारी में भी हैं—

जयपुर में एक बहुत बड़े ठेकेदार थे। वे दो भाई थे। कहते हैं पहले वे बहुत गरीब थे। धन्धे में कुछ पैसे इकट्ठे करके उन्होंने एक पुराना मकान खरीद लिया। उसकी मरम्मत कराने को जब इन्होंने एक हिस्सा तुड़वाया तो उसमें गड़ा हुआ धन निकला। उसकी रक्षा करने वाले कई सर्प थे। उन्होंने उन साँपों को पकड़-पकड़ कर मरवा दिया। एक भाई ने इसका विरोध किया परन्तु दूसरे ने नहीं माना। सर्पों को मरवाने वाले भाई का वंश नहीं चला; दूसरे भाई के लड़के की स्त्री के गर्भ धारण करते ही वह लड़का चल बसा। इसी तरह जब उसके पौत्र की स्त्री गर्भवती हुई तो पौत्र मर गया। चौथी पीढ़ी में कहीं उनका वंश कायम रहा। धन मिलने के बाद वे लोग बहुत बड़े और करोड़पति तक हो गए परन्तु सन्तान का सुख किसी को नहीं मिला। अलबत्ता जैसे-जैसे धन बढ़ा उन लोगों ने पुण्य परोपकार भी खूब किया।

जयपुर की प्राचीन राजधानी आमेर में एक सज्जन की पुरानी हवेली है। वे जयपुर में आकर रहने लगे थे। उस हवेली में धन के चरवे लटकने की बात बहुत प्रसिद्ध थी। वे सज्जन अपने कामदार और एक नाई को लेकर तहखाने में उतरे। नाई के हाथ में मशाल थी। वहां जाकर उन्होंने धन के पात्र और उन पर कुण्डली मारे सर्पों को देखा—परन्तु, उसी समय वे तीनों पागल हो गए। कामदार तो पागल अवस्था में ही कुछ दिन बाद मर गया। वे सज्जन भी बहुत दिन पागल रहे, उनकी स्त्री भी पागल हो गई, दो पुत्र थे, वे भी पागल हो हो कर ही मरे। नाई भी पागल रहा और उसका पुत्र तो अब भी पागल ही बना घूमता है। अब वे सज्जन नहीं रहे। इन सभी को मैं व्यक्तिगत रूप से जानता था।

ऐसी बहुत सी कहानियाँ गुजरात में प्रचलित है और यह सामान्य मान्यता है कि जहाँ धन गड़ा होता है वहाँ सर्प अवश्य पाए जाते हे।[23]

जीवित मनुष्य के शरीर मे जब भूत का आवेश हो जाता है तो उसे निकालने के लिए जो वैदिक कर्मकाण्ड सम्बन्धी बौद्ध या मुसलमानी तरीके काम मे लाये जाते हैं उन सब का वर्णन हमको 'भूत निबन्ध' मे मिलता है। कभी-कभी तो पीडित को आराम होने का ही सम्पूर्ण नही तो मुख्य उद्देश्य रहता है; और, कभी-कभी अपराध के कारण भूत गति को प्राप्त आत्मा को दुःख पूर्ण एवं आवारा भ्रमण से मुक्ति प्राप्त कराने का लक्ष्य प्रधान समझा जाता है। ऐसे विषयों का एक-एक उदाहरण यहाँ पर पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का उपक्रम करते हे।

निबन्धकार कहता है, "कोई तीस वर्ष पहले की बात है कि काठियावाड़ मे एक चारण सायला के ठाकुर से कुछ रुपया मागता था। ठाकुर ने उस कर्ज को चुकाने से इन्कार कर दिया। इस पर वह चारण अपनी जाति के चालीस आदमी लेकर ठाकुर के द्वार पर 'धरना' देने को सायला रवाना हुआ और ऐसा धरना देने का इरादा किया कि जब तक कर्ज न चुका दिया जाय तब तक न किसी को अन्दर जाने दिया जाय और न बाहर आने दिया जाय। जब ठाकुर को उनका विचार मालूम हुआ तो उसने दरवाजे बन्द करवा दिए। चारण बाहर ही रह गए; तीन दिन तक वे उपवास करते रहे; चौथे दिन उन्होंने इस प्रकार 'त्रागा' करना शुरू कर दिया—"कुछ लोगो ने अपने हाथ काट लिए; कुछ लोगों ने तीन वृद्धाओं को मारकर उनकी मुण्डमाल दरवाजे पर लटका दी। उन्होंने चार बूढ़े आदमियो के सिर भाले पर टाँग दिए और तीन छोकरियो के सिर दरवाजे से टकरा दिए; कुछ चारण स्त्रियो ने अपने स्तन काट डाले। फिर, जो चारण कर्जा मागता था उसने रुई का तेल से भीगा हुआ दगला[24] पहन कर आग लगा ली। इस प्रकार वह जीवित जल मरा; परन्तु, मरते समय उसने चिल्ला कर कहा, "मै मर रहा हूं परन्तु मर कर खवीस[25] बन कर गढ में रहूंगा और ठाकुर के प्राण ले लूंगा तथा उसका वंश नही चलने दूंगा।" इस बलिदान के बाद बचे हुए चारण अपने-अपने घर चले गये।

चारण की मृत्यु से तीसरे दिन ही भूत ने रानी को सीढियो से गिरा दिया और उसके बहुत चोट आई। दूसरे भी कई लोगों ने महल मे मस्तक-विहीन कबन्ध की छाया देखी। अन्त मे, वह भूत ठाकुर मे आविष्ट हो गया और वह कापने लगा।

---

23. ऐसी बहुत सी कथाएं ओरिण्टल मेम्वायर्स मे संगृहीत हैं। देखिए—मूल संस्करण, पृ॰ 384
24. इस जमाने मे शायद वह टेरेलिन का कपडा पहनता।
25. बिना सिर का भूत; खबीस अरबी शब्द है; प्राय. मुसलमान भूत को खबीस कहते है।

रात के समय वह पत्थर फेंकने लगा और एक दासी को तो उसने जान से ही मार डाला। होते-होते उसका उत्पात इतना बढ़ गया कि दिन-दहाड़े भी ठाकुर के महल में जाने की कोई हिम्मत नहीं करता था। भूत निकालने के लिए बहुत-से जोगी, जती, फकीर, ब्राह्मण और दूसरे टोना-मन्तर जानने वाले लोगों को जगह-जगह से बुलाया गया। परन्तु जो भी इलाजी आता उसी को ठाकुर के शरीर में भर कर भूत मारने लगता जिससे वह हिम्मत हार कर चला जाता। भूत के आवेश में ठाकुर उसके हाथों में बटके भरकर माँस नोंच लेता था। यही नहीं, भूत की करतूतों से चार-पाँच आदमियों की जान भी चली गई; परन्तु, उसको निकालने की किसी में शक्ति नहीं थी। अन्त में, एक परदेशी जती उस देश में आया हुआ था उसको गाड़ी भेज कर ठाकुर ने ससम्मान अपने गाँव में बुलाया। वह जती अपनी मन्त्रविद्या और जादू-टोना के लिए बहुत विख्यात था और उसके साथ कई और भी आदमी थे। बहुत-सी आवश्यक सामग्री एकत्रित करके उस जती ने गढ़ में प्रवेश किया और वहाँ देव का पूजन किया। पहले, उसने घर के चारों तरफ अभिमंत्रित सूत लपेट दिया; फिर, मन्त्रित किया हुआ दूध और पानी सर्वत्र छिड़का; तदनन्तर, अभिमन्त्रित लोहे की कीलें दरवाजे पर ठोक दीं। मकान को पवित्र करके उसने देव की स्थापना की और पास में एक नंगी तलवार रख कर एक दीपक घृत का व एक तेल का प्रज्वलित किया। यह सब विधान करके वह मन्त्र जाप करने बैठ गया। इकतालीस दिन तक वह इस प्रयोग में लगा रहा और प्रतिदिन श्मशान में जाकर कई तरह की बलि चढ़ाता रहा। ठाकुर को एक अलग कमरे में रखा गया; उसमें निरन्तर भूत भरा रहता था और वह चिल्लाता था, "अरे मूँडिया! तू मुझे निकालने आया है! मैं जाने वाला नहीं हूँ! और ले तेरा भी जीव जोखिम में है।" जती एक अच्छी तरह बन्द कमरे में बैठ कर जप करता था परन्तु लोग कहते हैं कि इस हालत में भी पत्थर आ-आकर खिड़कियों और दीवारों पर पड़ते थे। जब प्रयोग समाप्त हुआ तो जती ने अपने ही आदमियों से ठाकुर को ऊपर के महल में बुलाया, जहाँ देव की स्थापना की हुई थी, और ठाकुर के आदमियों को दरवाजे से बाहर रखा। उसने अनाज के दाने छिड़के और थाली के सूत लपेटा कि जिससे भूत ठाकुर के शरीर में आ जाय। वह काँपने लगा और फिर मस्ती करने लगा परन्तु जती और उसके आदमियों ने उसकी पिटाई करने में कोई कसर नहीं छोड़ी; उसे इतना मारा कि अन्त में वह बिलकुल वशीभूत हो गया। फिर ठाकुर के आदमियों को बुलाया गया; एक हवन कुण्ड बना कर उसमें नींबू छोड़ दिया गया। जती ने भूत को नींबू में प्रवेश करने का आदेश दिया। सिर धुनते हुए भूत ने कहा, 'तू क्या तेरा देव भी आ जाय तो मैं इसको नहीं छोडूंगा।' सुबह से दो-पहर तक ऐसा ही होता रहा। अन्त में, महल से निकल कर वे सब चौक में इकट्ठे हुए; वहाँ बहुत तरह के धूप लोबान आदि जलाए गए और मन्त्रित जल छिड़का गया; आखिर, भूत नींबू में

आ गया। जब नीबू उछलने लगा तो सबने जती की प्रशंसा की और कहा, 'नीबू में भूत उतर गया, उतर गया।' अभिभूत ठाकुर ने भी जब नीबू को उछलते देखा तो उसे आश्चर्य हुआ और उसने कांपना बन्द कर दिया। उसे पूर्ण सन्तोष हो गया कि भूत उसके शरीर को छोड़कर नीबू में प्रवेश कर गया है। तब सब गाँव वालों के सामने जती ने भूत को पूर्वीय दरवाज़े से बाहर निकाला। यदि वह नीबू सड़क से इधर-उधर हो जाता है तो वह जती अपनी छड़ी से रास्ते पर ले आता था। कुछ नंगी तलवारों वाले सिपाही साथ थे और जुझाऊ ढोल बज रहा था; ठाकुर भी साथ था। भूत के रास्ते मे वे राई और नमक बिखेरते जाते थे। जब वे इस तरह भूत को गाँव के किनारे तक ले गये तो वहाँ पर उन्होंने सात हाथ गहरा खड्डा खुदवाया और नीबू को उसमें गाड़ दिया, उस पर राई और नमक डाला, फ़िर मिट्टी और पत्थर से खड्डे को भर दिया, और जहाँ जहाँ पोल रही वहाँ वहाँ शीशा और पत्थर भर दिया। हर एक कोने में जती ने पहले अभिमन्त्रित दो-फीट लम्बी कीलें गाड़ दी। जब नीबू गाँव की सरहद पर पहुँचा तो कुछ लोगों ने राय दी कि यदि उसे सीमा के बाहर दफनाया जावे तो अच्छा रहेगा परन्तु पडौस के गाँव वालों ने धमकी दी कि यदि ठाकुर अपनी सीमा से बाहर भूत को गाड़ेगा तो भयंकर झगड़ा हो जायेगा। जती ने भी कहा, 'डरने की कोई बात नही है, गाड़ने के बाद भूत ऊपर नही आयेगा; अगर इसको अच्छी तरह दफना दिया जायेगा तो थोडे ही दिनों मे यह सूख-सूख कर आप मर जायगा।' जब नीबू को गाड़ दिया गया तो सब लोग अपने अपने घर चले गए और उस दिन के बाद किसी ने भूत को नही देखा। ठाकुर ने भी जती को पुष्कल भेंट दी और सब को विश्वास हो गया कि भारत मे ऐसे तान्त्रिक इने-गिने ही है।'' परन्तु, निबन्धकर्ता का कहना है कि असली बात किसी के भी समझ मे नही आई। उसके कथनानुसार यह उपचार नीबू मे पारा भर कर किया गया था।[26]

26. कर्नल टॉड ने एनाल्स ऑफ राजस्थान भा. 3 (1920) पृ० 1734 पर ऐसा ही वर्णन 'मरी' या हैजे को निकालने का किया है। मि ह्यू ने अपने यात्रा विवरण मे बयान किया है कि तातार लामा लोग गाँव के भूत को कुछ इसी तरह बाहर निकालते हैं। यह गांव का भूत Tchutgour कहलाता है।

सत्ताधारी जागीरदारों या ठाकुरों से कर्जा वसूल करने का एक हठपूर्ण तरीका यह भी था कि जब कर्ज़ा माँगने वाला अन्य सब उपाय करके हार जाता तो वह गाँव के बाहर या ठाकुर के गढ के बाहर नीम के या किसी दूसरे ऊँचे वृक्ष के ऊपर चढकर बैठ जाता था और अनशन शुरू कर देता था या वहाँ से गिर कर मर जाने की घोषणा करता था। वह वहाँ से ज़ोर ज़ोर से चिल्ला कर अपनी माँग और ठाकुर के अन्याय की बात गांव वालो को कहता था। इस तरह का हठ करने वाला

"जब किसी को ज्वर आ जाता है; किसी की आवाज़ बन्द हो जाती है या जबड़े भिंच जाते हैं तो इन लक्षणों से लोग समझते हैं कि उसके भूत लग गया है। वे उसका नाम ले कर पुकारते हैं परन्तु वह उत्तर नहीं देता; तब वे किसी ऐसे ब्राह्मण को बुलाते हैं जो दुर्गा-पाठ जानता हो। यदि ब्राह्मण के आने में देरी होती है तो कोई आदमी यह सुझाव देता है कि रोगी को लाल मिर्ची या कुत्ते के मल की धूनी दी जाय जिससे भूत बोल उठेगा। ऐसा उपचार करने पर तो वह मनुष्य बोल उठता है और कभी नहीं भी बोलता। जैसे ही दुर्गा-पाठी आता है वह शुद्ध वस्त्र पहन कर आसन पर बैठ जाता है। फिर वह एक चौकी पर नया लाल कपड़ा फैला कर गेहूं के दानों से अष्टदल यन्त्र बनाता है और नौ कोष्ठकों में अन्न की ढेरियाँ लगा कर नव-दुर्गा का आवाहन करता है। उनके नाम ये हैं—1. शैलपुत्री, 2. ब्रह्मचारिणी, 3. चन्द्रघण्टा, 4. कूष्माण्डा, 5. स्कन्दमाता, 6. कात्यायनी, 7. कालरात्री, 8. महागौरी, 9. सिद्धिदा। इस मण्डल पर पानी का घट स्थापित करके उस पर नारियल रखता है; कभी-कभी केवल नारियल ही रखता है। इसका पूजन करता है। लोबान या गुग्गुल जलाता है और भूत का दीपक जलाता है। रोगी के मित्र उसको पवित्र वस्त्र पहना कर सामने बिठा देते हैं। तब ब्राह्मण पाठ आरम्भ करता है। हाथ में चावल या जल लेकर नवार्ण मन्त्र (नौ अक्षरों के मन्त्र) का जप करके उसे रोगी पर छिड़कता है जिससे वह कांपने लगता है। भूत को अच्छी तरह भगाने के लिए वह एक खाली घड़े पर पीतल या ताँबे की थाली रख कर सूत लपेट देता है और फिर नवार्ण मन्त्र से जल या चावल को मन्त्रित करके भूत का आवाहन करता है। इस पर वह रोगी अपने किसी भूत सम्बन्धी या पूर्वज का नाम लेकर कहता है कि 'मैं वह हूं।' वह आगे कहता है कि उसका जीव मकान, सम्पत्ति या स्त्री में अटका रह गया इसलिए वह भूत हो गया। कभी-कभी वह अपने सगे सम्बन्धियों से कहता है मेरा धन माल तो तुम्हारे कब्जे में है परन्तु तुम लोग मेरे पुत्र की परवरिश के बारे में मेरी इच्छानुसार ठीक-ठीक ध्यान नहीं देते हो इसलिए मैं तुम सब को तंग करूंगा।" फिर वह अपनी मुक्ति के विषय मे उपाय बताता है। कुछ रिश्तेदार उसकी

'नमोकड़ा' कहलाता था। गाँव वाले तब ठाकुर के पास समझाने बुझाने को जाते और कभी-कभी मामला सुलझ भी जाता था। कदाचित् ठाकुर भी अड़ जाता और परिणाम वही होता जो 'नमोकड़ा' के प्राण ले लेता था। ऐसी दशा मे प्राण त्याग करने वाला भी भूत होता था और मरने के बाद ठाकुर या उसके वंशजों को दुःख देता था।'

यह बात मुझे मेरे एक रिश्तेदार श्री हरिनारायण जी ने बताई जिनके पूर्वज पीढ़ियों से भूतपूर्व जयपुर राज्य के एक ठिकाने में कामदार रहते आए थे।

(हि. प्र.)

बातों को स्वीकार करते हैं और आगे वह उनको न सतावे इसलिए दुर्गा के पवित्र पाठ या चण्डी-पाठ की पुस्तक पर उसका हाथ रखवाते हैं। चण्डीपाठ 'मार्कण्डेय पुराण' में है; इसमें एक श्लोक इस प्रकार है—

> ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
> ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ॥ 1 ॥
> नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ।
> मानोन्नतिर्भवेद्राज्ञस्ते जोवृद्धिकरं परम् ॥ 2 ॥

अर्थात् जिस मनुष्य के हृदय में देवी का कवच होता है उससे ग्रह, भूत, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, ब्रह्मराक्षस, वेताल, कूष्माण्ड और भैरव आदि मलिन देव दूर भाग जाते हैं। यदि राजा पाठ करे या धारण करे तो उसकी प्रतिष्ठा और तेज में बहुत वृद्धि होती है।

जब किसी मनुष्य में भूत आता है तो कभी-कभी वह कहता है 'मुझे सोमेश्वर पत्तन ले चल कर मेरी शुभ गति कराओ। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति यात्रा करे और मैं किसी के भी शरीर में पैठ कर गति प्राप्त करने को चला चलूँगा। फिर, गन्तव्य स्थान पर पहुँचने तक किसी प्रकार की आखड़ी (प्रतिज्ञा) रखने की भी वह भूत शपथ दिला देता है। परिवार का कोई भी व्यक्ति एक समय भोजन करने, दूध, दही, शक्कर, गुड़ या मसाले न खाने का व्रत ले लेता है। सबसे कठिन आखड़ी घृत न खाने की है। कुछ लोग घुटनों के नीचे हो कर ग्रास (निवाले) लेने का व्रत लेते हैं। प्रायः घर की कोई स्त्री ही ऐसी आखड़ी लेती है। एक व्रत ऐसा भी है कि काली मिट्टी के पात्र में रख कर खड़े-खड़े बाएँ हाथ से ही भोजन किया जाय। कुछ लोग पगड़ी बाँधना छोड़ देते हैं और उसकी एवज छोटा सा 'फालिया' लपेटे फिरते हैं; कोई जूते न पहनने की और नगे पैर ही यात्रा करने की शपथ लेते हैं। स्त्रियाँ काँचली न पहनने का खरा (प्रण) लेती हैं। जब अवसर आता है तब ही व्रत लेने वाला व्यक्ति यात्रा करके अपनी 'बाधा' से मुक्त हो जाता है। यदि उसके यात्रा पर प्रस्थान करने से पहले ही घर का और कोई आदमी बीमार पड़ जाता है तो आखड़ी (प्रण) लेने वाला कहता है कि उसने यात्रा पूरी नहीं की इसलिए वह भूत रोगी को सता रहा है। तब वह तुरन्त ही यात्रा के लिए चल देता है।

एक तरीका यह भी है—जब कोई आदमी बीमार पड़ता है तो उसका कोई रिश्तेदार एक नग (जवाहरात) उस पर वार कर अलग रख देता है और रोगी के ठीक हो जाने पर अमुक संख्या में ब्राह्मण भोजन कराए बिना उस अलंकार को न पहनने की सौगन्ध खाता है। गरीब आदमी ताँबे या पीतल के लोटा या थाली को ही इस निमित्त प्रयोग करता है। यह विधि 'उछीतो' कहलाती है।

प्रभास अथवा सोमेश्वर पाटण की यात्रा प्रायः कार्तिक शुक्ला एकादशी से चालू होकर पंच रात्री तक चलती है; यह पूर्वजों की पंचरात्री कहलाती है।

साधारणतया यह नियम है कि सम्पूर्ण परिवार को भाइयों और उनकी पत्नियों समेत इस यात्रा में जाना चाहिए क्योंकि कदाचित् यात्रा में न जाने वाले के साथ ही भूत भी घर पर रह जाय।[27] वह संघ बिना जूता पहने, नंगे सिर या जैसी उनकी आखड़ी (प्रण) हो, पैदल ही रवाना होता है। प्रभास में सोमपुरा जाति के ब्राह्मण उनकी अगवानी करते हैं। जब कोई यात्री दल जाता है तो वे अपने-अपने यजमानों को ढूँढ लेते हैं; वे अपनी वही दिखाकर उनको अपना गोर (गुरु) नियुक्त कर गए थे।[28] दूसरे दिन प्रातःकाल सरस्वती नदी के किनारे जाकर वे देह शुद्धि प्रायश्चित्त और श्राद्ध कराते हैं (जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है) फिर वे यात्री गुरु के निर्देशानुसार नदी में स्नान करते हैं—यदि स्त्री और पुरुष ने एक ही लम्बा वस्त्र पहन कर स्नान[29] करने की शपथ ली होती है तो वे उसी तरह नहाते हैं। गुरु यात्री को कहता है 'नदी में उतरो और तीर्थदेव को नमस्कार करो।' यात्री ऐसा ही करता है और गुरु यह मन्त्र बोलता है—

---

27. कहते हैं कि यदि कोई मनुष्य निस (Nis) से पिंड छुड़ाना चाहे तो यह बहुत कठिन काम है। (स्काटलैण्ड) आदि स्थानों में घर का कामकाज करने वाले पिशाच को ब्राउनी (Brownie) कहते हैं और जर्मनी में कोबोल्ड (Kobold) कहते हैं; वहीं स्कैण्डेनेविया में निस (Nis) कहलाता है। एक मनुष्य के घर में निस के उत्पात बहुत बढ़ गए थे तो उसने उस (निस) को वहीं छोड़ कर दूसरे घर में जाकर रहने का इरादा किया। कुछ गाड़ियों में सामान लदकर जा चुका था और वह आदमी आखिरी गाड़ी लिवाने आया था जिसमें खाली डिब्बे, नलिए और ऐसी तरह का काठ-कबाड़ था। जब गाड़ी भर गई तो उस आदमी ने मकान और निस से आखिरी सलाम किया। उसने सोचा कि अब नए निवास में आराम मिलेगा। तभी वह किसी वजह से गाड़ी के पिछले हिस्से को देखने गया तो वहाँ उसने एक टब में निस को बैठा हुआ देखा। स्पष्ट है कि वह भला आदमी बहुत परेशान हुआ क्योंकि उसका किया-कराया सब बेकार हो गया था; परन्तु, निस तो खिलखिला कर हँस पड़ा और उसने पीपे में से सिर निकाल कर परेशान किसान को कहा 'अहा हा' अब हम लोग रवाना हो गए हैं, देखा ?

यह कहानी जर्मनी, इंगलैण्ड और आयरलैण्ड में प्रचलित है। जर्मन कथा के अनुसार उस किसान ने कोबोल्ड को जलाने के लिए अपने कोठार में आग लगा दी थी। जब वह चलने लगा तो उसने जलने वाले भण्डार की तरफ मुड़ कर देखा तो कोबोल्ड को अपने पीछे ही गाड़ी में देख कर उसके होश गुम हो गए; वह चिल्ला रहा था "हम ठीक समय पर निकल आए" ठीक समय पर निकल आए।

28. पुष्कर, सोरों, गया आदि स्थानों में भी इसी तरह के तीर्थ गुरु रहते हैं।

29. इसको 'गठजोड़े' या गठबन्धन का स्नान कहते हैं।

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती !
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

'हे गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी ! (समस्त भारत की प्रमुख नदियों) इस जल में प्रवेश करो ।'

फिर वह गुरु संस्कृत में वर्ष, मास, तिथि और वार बोल कर संकल्प कराता है, 'मन, वचन और कर्म से मैंने जो भी पाप किये हों उन सब को धो डालने के लिए मैं इस तीर्थ में स्नान करता हूँ; और, श्री परमेश्वर की कृपा सम्पादन करने के अर्थ, देह शुद्धि निमित्त तथा अपने पूर्वजों को सद्गति प्राप्त कराने में स्नान करता हूं ।'' इस प्रकार उच्चारण करने के बाद गुरु कहता है 'अब तुम अपना स्नान पूर्ण करो ।' इसी तरह एक-एक करके सभी को स्नान कराया जाता है । जब यात्री स्नान करके जल से बाहर निकलते हैं तो माँगने वाले, मुख्यतः ब्राह्मण, उनको घेर लेते हैं और वे अपनी श्रद्धानुसार दक्षिणा देते हैं वहां एक बड़ का वृक्ष है जिसको लोग श्री कृष्ण के समय का समझते हैं । यात्री उसका पूजन करके उसकी जड़ में ठण्डा जल सींचते हैं; उनका खयाल है कि पूर्वज देव इस पानी को पीते हैं । फिर, वे इस वृक्ष की प्रदक्षिणा करते हैं । जिस मनुष्य में भूत आता हो वह इस पेड़ को देखते ही काँपने लगता है और उसकी आँखें फिरने लगती हैं । तब गुरु कहता है, ''अब तुम यहीं रहो, तुम जो कुछ धर्म-कर्म करने को कहोगे वही तुम्हारे निमित्त किया जायगा ।' यदि भूत मान लेता है तो वह एक सौ आठ ब्राह्मणों को भोजन कराने या नील (बछेड़ा बछड़ी) का विवाह करने को कहता है । नीलोद्वाह की विधि में उसके सम्बन्धी मनुष्यों के विवाह की सी सभी रीति पूरी करते हैं और अन्त में दोनों पशुओं की पूँछ एक आदमी हाथ में पकड़ लेता है तथा समस्त कुटुम्बीजन पानी, दूध और तिलों से तर्पण करते हैं । वैदिक कर्मकाण्ड में ये सब विधियां वर्णित हैं । एक पद्य इस प्रकार है—

भूतयोनिषु ये जाताः प्रेतयोनिषु ये गताः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु नीलपुच्छेषु तर्पिताः ॥

अर्थात् जो कोई मेरे पूर्वज भूतयोनि में उत्पन्न हुए हैं या प्रेतयोनि में चले गए हैं वे सब नील बछड़े-बछड़ी की पूँछ पकड़ कर तर्पण करने से तृप्त हों ।

ऐसे ही कोई एक सौ बीस पद्य हैं जिनका उच्चारण करता हुआ तर्पण करने वाला व्यक्ति जल छोड़ता है । फिर जितने पूर्वजों के नाम याद होते हैं उनके निमित्त उसी स्थान पर पिण्डदान करता है । इस तरह एक सौ आठ पिण्ड दिए जाते हैं । जिन पूर्वज देवों का नाम याद नहीं होता उनके लिए कर्मकाण्ड (पुस्तक) में यह पद्य है—

विद्युच्चोरहता ये च दंष्ट्रिभिः पशुभिस्तथा ।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥

अर्थात् जो बिजली से मारे गए हैं या जिनको चोरों ने मार दिया है अथवा जो दाँत वाले पशुओं के द्वारा मरण को प्राप्त हुए है उन (पूर्वजों) के उद्धार के लिए यह पिण्ड देता हूं।

तब भी कई बार भूत कहता है, "यहाँ मुझे अच्छा नहीं लगता है, इसलिए मैं तो अपने घर जाकर ही रहूंगा, तुम मेरे लिए वहां ही एक 'गोखा बनवा दो।' तब गुरु उसको कई तरह से फुसलाता है 'सरस्वती के किनारे के ऐसे रमणीय तीर्थ स्थान को छोड़कर तुम जा रहे हो? नहीं, नही तुम्हे तो अब यही रहना है।" कुछ भूत इतना होने पर भी घर लौटने की जिद करते है। जब भूत तीर्थ में रहना स्वीकार कर लेता है तो परिवार के लोग उसकी इच्छानुसार प्रभास मे पुण्यदान करते हैं।

सन्ध्या समय वहां पर एकत्रित हुए हजारों यात्री सरस्वती नदी का पूजन करते हैं। इसके बाद वे पत्तों के बने दोनो में घृत के दीपक जला कर नदी के जल में छोड़ते है। नदी की सतह इन दीवों से जगमगा उठती है।[30]

इस प्रकार यात्रा पूरी होती है और संघ घर लौट आता है।

कदाचित् भूत नीच जाति का हो तो उसको भूवा लोग[31] निकाल देते है। उनसे शूद्र देवी या स्थानीय देवियां—जैसे, बहुचराजी, खोडियार, गढ़ेची, शिकोतरी, मेलाड़ी आदि प्रसन्न रहती हैं। भूवा सभी जातियों मे होते है, ब्राह्मणों में भी। वे जिस देवी के उपासक होते हैं उसका स्थानक अपने घर में बना लेते हैं। यदि आज्ञा मिल जाती है तो वह भूवा ढोली को साथ लेकर रोगी के घर जाता है, जो अपना ढोल पीट-पीट कर देवी का गीत गाता है—

मानसरोवर[32] री माय, चाले चुंआलाना चोकनी।
बरदाली बेहेचरा, आवे उगमण गोखनी ॥
....

अथवा

खरी देवी खोड़ीयार,[33] दीहो वाहे डूंगरे।
समरी साच देवार, आवे माता आकरी ॥

---

30. अवश्य ही पापमोचन की यह चाल चाणक्य की चलाई है।
देखिए—भा. 1 (पूर्वार्द्ध) पृ. 144 (हि. ग्र.)

31. भूत निकालने वाले तांत्रिक 'भूवा' या 'भूरा' कहलाते हैं। देश के अन्य भागों में इनको 'ओझा' या स्याणा' भी कहते हैं।

32. मानसरोवर या मीनलसर वीरमगांव के एक सरोवर का नाम है जो सिद्धराज की माता मीनल देवी ने बनवाया था।

33. खोडियार माता का देवल सीहोर के पास राजपुर में है। यह गोहिल राजपूतों की कुल देवी है।

रोगी के सामने बैठा हुआ भूवा संगीत की आवाज सुनते ही ऐसी चेष्टाएं करता है मानो देवी का उसमें आवेश हो गया है और भूत को भाँति-भाँति से डराने लगता है। यह प्रयोग पाँच छः दिन तक चलता है; अन्त मे, (भूत के रूप मे) रोगी चिल्लाता है 'मैं जाता हूं, मैं जाता हूं" और देवी के निमित्त कुछ धन खर्च करने की सौगन्ध खा कर निकल जाता है।[34]

---

34. 'शैतान कई बातों में खुदा की नकल करता है; इस विषय में भी वह इसी तरह का अनुकरण करता है' ऐसा विशप (पादरी) हाल (Hall) ने अपने अनुभव के आधार पर लिखा है। यह बात हमें अन्य विषयों के प्रमाण में भी ज्ञात होती है। एलिशा (आलीजहाँ) (2 Kings iii, 15) के विषय में ऐसा ही उल्लेख मिलता है कि उसने एक गवैये को बुलाया। "और ऐसा हुआ कि जब वह गाने लगा तो परमात्मा का हाथ उस पर आ गया।' ग्रन्थकार का कथन है कि 'एलिशा ने जो संगीत का आयोजन किया था वह उनके कानों के लिए नहीं था परन्तु उसके अपने हृदय के लिए था कि जिससे उसके मनोविकार अथवा भूत बहुत कुछ हलचल मचाने के बाद शात हो जाएँ और परमेश्वर का शान्तिमय दर्शन करने के योग्य बन जाएँ।"

आहाब एक दुष्ट राजा था, उसने ईडम की लड़ाई के लिए ईहोश्काट को कहा, जो एक भला राजा था। उसने उत्तर दिया—'यदि परमात्मा की यही इच्छा है तो मैं उसका आश्रय ग्रहण करता हूं।' आहाब ने कहा, 'हां, ऐसा ही है।' इसके बाद वे एलिशा के पास वचन लेने को गये। आहाब दुष्ट था इसलिए एलिशा उसका मुंह देखना नही चाहता था परन्तु दूसरे भले राजा के कारण वह ठहरा; फिर भी उस दुष्ट को देखकर उसके मनोविकार (भूल) प्रबल हुए। उन्ही को शान्त करने के लिये उसने गायकों को बुलाया था। —(गु. अ.)

आहाब इजरायल का बादशाह था। उसने ई० पू० ८75–853 तक राज्य किया था।

एलिशा हिब्रू पैगम्बर था जो एलिजा का उत्तराधिकारी था। उसके बहुत से चमत्कार (Two Kings) नामक पुस्तक में वर्णित हैं। कहते हैं, उसने एक विधवा के मृत पुत्र को पुनर्जीवित कर दिया था।-(हि. अ.)

ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह के शिष्यों के कृत्य (बाइबिल के) सोलहवें अध्याय के सोलहवें पद में वर्णित है। उसमे पिशाच अथवा सर्प से अभिभूत भविष्य कथन करने वाली स्त्री का वर्णन इन देवी के आवेश युक्त व्यक्तियों से बहुत समता रखता है, जिनका विवरण यहां दे रहे है।

वहुत से पहाड़ी भागों में कोली और भरवाड़ अपने घरों में मेलाडी, शिकोतरी आदि माताओं के स्थानक वना लेते है। वह स्थानक या वेदी 'डेरा'

वम्वई की सदर अदालत ने कुछ चुने हुए फैसले प्रकाशित कराए है। उस पुस्तक के 91 पृ. पर एक मुकदमे का विवरण है। यह दावा एक नीच जातीय भूवा के भूत नचाने के कारण हुआ था। मुकदमा इस तरह है:—

'पीताम्वर नरोत्तम, पुर्नविचार प्रार्थी (अपीलाण्ट)

वनाम

मुकनदास कूवर और रायजी मुकन, प्रतिवादी

अहमदावाद

''यह दावा पुर्नविचार प्रार्थी (अपीलाण्ट) ने प्रतिवादी के विरुद्ध चरित्र-निन्दा (इज्जतहतक) के विषय में प्रस्तुत किया है। हर्जाने के 995) रु. माँगे गए हैं।

पक्षकार दशा दिशावाल वणिये है और अपीलाण्ट ने अपने प्रार्थनापत्र में प्रकट किया है कि ईश्वर मूलजी नामक उनका एक सजातीय कार्तिक शुदि 8 संवत् 1880 (4 नवम्बर, 1829 ई.) के दिन अपने जाति गुरु नानाभाई विष्णुराम के यहाँ, रिवाज के माफ़िक, जातिभोज की परवानगी लेने गया था। जव इजाज़त मिल गई तो प्रतिवादियों ने ईश्वर मूलजी को कहा कि वे उसके यहाँ भोजन करने तभी आवेंगे जव कि वह अपीलाण्ट के घर को टाल दे (निमंत्रित न करे)। पूछने पर कारण यह वताया गया कि अपीलाण्ट के घर में कोई वीमार था तव उसने किसी भगिया (भूवा) को वुला कर ढम-ढम (ढोल) वजवाया था, इसलिए वह जाति-वाहर हो गया। जाति गुरु और दूसरे लोगों ने उसे समझाने की वहुत कोशिश की कि मात्र ढम-ढम वजवा लेने से कोई जातिच्युत नहीं हो जाता। (ढम-ढम एक प्रकार का ढोल होता है; इसको ढम-ढम इसलिए कहते हैं कि जव इस पर एक वार एक जगह और दूसरी वार दूसरी जगह चोट पड़ती है तो 'ठा-म, ठा-म' ऐसी आवाज निकलती है; 'ठाम' स्थान को कहते है) परन्तु, प्रतिवादियों ने उनकी एक न सुनी और नतीजा यह हुआ कि ईश्वर मूलजी ने जातिभोज नहीं किया और न दूसरे इच्छुक जाति वालो ने ही कोई जातिभोज किया। इसलिए अपीलाण्ट ने यह तौहीन का दावा पेश किया है।

'प्रतिवादियों ने प्रार्थी की कभी मानहानि करने से इनकार किया और यह भी कहा कि कदाचित् अपीलाण्ट के कथनानुसार उन्होंने कुछ कह भी दिया हो तो वे जाति के पटेल या मुखिया तो थे नहीं कि उनके कहने का कोई असर लिया जाय; इसके अलावा अपीलाण्ट ने जो दिन जाहिर किया है उसके वाद भी उनको जातिभोज के निमन्त्रण मिलते रहे है।' इसके अलावा उन्होंने ईश्वर मूलजी और अपीलाण्ट पर आरोप लगाया कि दुश्मनी के कारण उन लोगों ने उन पर यह तोहमत लगाई है।

कहलाता है, जो प्रायः घर के भीतर एक अलिंद (चौक) का सा रूप ग्रहण कर लेता है; वहां एक काष्ठ-मूर्ति को लाल रंग कर रख देते हैं और ऊपर चँदोवा तान देते हैं। ये लोग जब आपस में एक-दूसरे से नाराज होते हैं तो अपना 'डेरा' कोपपात्र के घर में भेजने की धमकी देते हैं। धमकी न भी दी जाय तो भी साधारणतः ऐसा विश्वास किया जाता है कि जिसके घर में 'डेरा' होता है उसकी माता उसके शत्रुओं से अवश्य ही बदला लेती है। जिस मकान पर 'देरू' भेजा जाता है वह हिलने लगता है, जैसे भूचाल आ गया हो, ईंटें बजने लगती हैं, घर में बंधे ढोर कांपने लगते हैं और घर का स्वामी भी देवी से बहुत त्रस्त और अभिभूत हो जाता है। फिर, कुछ ऐसा होता है कि आसपास खड़े हुए लोग आक्रान्त से पूछते हैं 'तू कौन है।' वह मरोड़े खाकर हाथ-पैर फेंकता हुआ चिल्लाकर कहता है, "मैं शिकोतर हूं. मुझे बेचरिया कोली ने भेजा है; बेचरिया राजी होगा तभी मुझे वापस बुलावेगा, मैं भी तब ही जाऊंगी वरना घर के सब आदमियों की जान ले लूंगी और जानवरों को बरबाद कर दूंगी।" फिर बेचरिया को बुलाकर कहा जाता है 'भाई, तुम्हें चाहिए

जब द्वितीय सहायक न्यायाधीश के सामने यह वाद सुनवाई के लिए प्रस्तुत हुआ तो वादी अपीलाण्ट ने अपना उत्तर और प्रतिवादी ने प्रत्युत्तर दिया; सहायक जज ने प्रतिवादी के तिरस्कार और उसके फलस्वरूप जातिभोज के स्थगन के सुबूत में ईश्वर मूलजी और जातिगुरु नानाभाई विष्णुराम की गवाहियां लीं और मुद्दा साबित होने के कारण अन्य चौदह साक्षियों को रद्द कर दिया, जिनको उसने आवश्यक नहीं समझा क्योंकि उक्त दो गवाहों के बयानों से ही उसने विषय को प्रमाणित मान लिया था। अपीलांट ने यह मुद्दा साबित करने को चार गवाह और प्रस्तुत किए, कि 'जिस मंगिये ने ढोल बजाया था वह घर के अन्दर नहीं घुसा था और न वादी की स्त्री पर, जो बीमार थी, कोई पानी छिड़का था इसलिए घर अपवित्र नहीं हुआ था। सहायक जज ने इन्हीं साक्षियों को पर्याप्त माना और अन्य दो गवाहों को, जिनको अपीलांट ने हाजिर किया था, रद्द कर दिया। उसने फैसला दिया कि अपीलांट ने अपनी आबरू को हानि पहुँचना साबित कर दिया है और भूत निकालने की क्रिया मात्र उसको जाति बाहर करने का व उसको बदनाम करने का पर्याप्त कारण नहीं था; इसलिए अपीलाण्ट की तौहीन और उसको जातिभोज से वंचित किये जाने के तथ्य को ध्यान में रखते हुए उसने अपीलाण्ट को हर्जाने के 99) रु० और खर्चे के दिलाये जाने का निर्णय दिया और प्रतिवादी ने जो गवाह विरोध में पेश करने चाहे उन्हें रद्द कर दिया क्योंकि अदालत ने उन्हें गैर-जरूरी समझा।"

सहायक जज के फैसले को जज (सदर) ने उलट दिया परन्तु मूल में अपीलांट के मुद्दे को ही अपील की अदालत में सही माना गया (सन् 1832 ई०) और असल वादी को एक रुपया तथा पूरा खर्चा दिलाया गया।

सो ही ले लो, परन्तु 'देरा' वापस बुला लो। फिर वेचरिया में देवी का भाव भरता है, वह तेल में भीगे हुए कपड़े को जलाकर घर के आदमियों और जानवरों के सिर पर घुमाता है और दो तीन बार उसे अपने मुंह में लेकर वापस जलता हुआ निकाल लेता है इससे वह यह दिखाता है कि उसने 'देरा' अपने शरीर में वापस ले लिया है। देखने वालों को इससे बहुत आश्चर्य होता है। कभी-कभी 'देरू' से आक्रान्त मनुष्य के मित्रों में से कोई गांव के ठाकुर के पास फ़रियाद करने दौड़ जाता है। तब वह ठाकुर अनिच्छा से वेचरिया को बुलाता है और ऊपर से तटस्थता एवं अधिकार की मुद्रा बनाता हुआ उसे 'देरा' हटा लेने को कहता है—परन्तु, वह अपने मन में डरता ही रहता है कि कहीं वेचरिया अपना 'देरा' उसी के घर न भेज दे। उधर वेचरिया समझता है कि ठाकुर के साथ हुज्जत करना ठीक नहीं है इसलिए तुरन्त ही अपनी माता को वापस बुला लेने का वादा कर लेता है।

कभी-कभी ठाकुर का अपना 'देरा' होता है। हमारी जान पहचान के एक ठाकुर के यहाँ केसर बाई माता का बहुमूल्य 'देरा' था। जब कभी इसके किसान गाँव छोड़ने का इरादा जाहिर करते तो वह उनको यह इशारा करके डरा कर रोक लेता था कि माता उनका पीछा कर सकती है। कहते हैं कि वह कई बार अपने ऋण माँगने वालों को भी इसी तरह बता-बता देता था।

देरू या देरा से त्रस्त मनुष्यों को छुटकारा दिलाने के लिए भी कभी-कभी भूवों को बुलाया जाता है।

ज्योतिष में कुछ ऐसी तिथियां बताई गई हैं कि उनमें जन्म लेनी वाली स्त्री या तो 'विषकन्या' होती है या खोटी नजर वाली होती है। ऐसी स्त्री को 'डाकण' कहते हैं और यह समझा जाता है कि जिसको उसकी नजर लग जाती है वह उसी तरह दुख पाता है जैसे भूत लगने पर। कुछ लोग बेचैन या बीमार होने पर यही खयाल करते हैं कि उनके किसी डाकिण का देव लग गया है। चारण और वागरिया जाति की स्त्रियों में डाकणें ज्यादा होती हैं। कुदृष्टि से बचने के लिए कई तरह के उपाय किए जाते हैं; सब से अच्छा यह है कि लोहा या लोहे की बनी कोई चीज पास में रखी जाय, शरीर पर काला निशान बना दिया जाय या मन्त्रित ताबीज बांध लिया जाय।

मन्त्रशास्त्र के अनुसार गुजरात में छः प्रकार के मन्त्र चलते हैं। 1. मारण मंत्र में मनुष्य को मार देने की शक्ति होती है, 2. मोहन मन्त्र से आंखों व कानों में भ्रम उत्पन्न हो जाता है, 3. स्तम्भन मंत्र से चल वस्तु को अचल बना दिया जाता है, गति स्तम्भित हो जाती है, 4. आकर्षण मन्त्र के द्वारा किसी भी वस्तु या मनुष्य को खींच कर पास बुलाया जा सकता है, 5. वशीकरण मंत्र में वश में करने की शक्ति होती है और उच्चाटन मंत्र में शारीरिक क्षति या घातक चोट (मृत्यु नहीं) पहुंचाने की शक्ति होती है।

भावनगर के रावल वजेसिंह के टीलायत पुत्र दादु भा की मृत्यु 1845 ई. में सीहोर में हुई थी। उस समय उसके सौतेले छोटे भाई नारू भा ने भावनगर में पचीस ब्राह्मण बैठा कर प्रयोग कराया था। दादु भा भी, अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले, रावल के साथ वार्षिक सागरपूजन मे सम्मिलित होने को भावनगर आया था; उसी समय से वह बीमार हो गया। इसी बात पर सीहोर के लोगों को सन्देह हो गया कि नारू भा ने अपने भाई की जान लेने के लिए ब्राह्मणों से प्रयोग कराया और उसकी माता नानीवा ने उस अवसर पर कुँअर पर बरसाए जाने वाले फूलो के साथ मन्त्रित दाले रख दी थीं। दादु भा की माता ने बहुत से देशी और परदेशी आदमियो को एकत्रित कर लिया, ब्राह्मणों, जतियों, फकीरों और जो भी तांत्रिक मिला उसको बुलाया तथा अपने पुत्र की जान बचाने वाले को मुँह माँगा धन देने की बात कही। रानी द्वारा आमन्त्रित ब्राह्मणों में हमारा निबन्धकार भी था। जिसके लेख से हम सामान्य मान्यताओं के उद्धरण दे रहे हैं। ऐसे कोई एक-सौ तांत्रिक इकट्ठे हुए थे। ब्राह्मणों ने मृत्युंजय का जप करते हुए महादेव का अभिषेक किया; कुछ लोगों ने बगलामुखी आदि देवियों का पूजन किया। कलकत्ते के एक बनिए ने भी जत्र मंत्र में अपनी कुशलता बतलाई–परन्तु, यह सब कुछ करते-कराते भी राजकुमार दादु भा मर ही गया, उसका जीवन बढाने के सभी उपाय निष्फल गए। तब स्पष्ट रूप से यह बात चल पड़ी कि नारू भा ने हवन कराया, बकरों के मुँह में चावल की पोटलियाँ भर कर उन्हें जीवित हो अग्नि मे होम दिया गया तथा जो ब्राह्मण इस प्रयोग मे लगे हुए थे उन्होंने तेल एव रक्त मे स्नान किया था। इन ब्राह्मणो का मुखिया गिरिजाशंकर तो इस बात से इतना डर गया कि कही मृत कुँवर के हितैषी उसकी हत्या न कर दे इसलिए उसने नरू भा को कह कर अपने साथ निरन्तर रहने के लिए पाँच सिपाही तैनात करा लिए थे। अब भी बहुत से लोग उसको बता कर कहते हैं कि इसी ब्राह्मण ने मंत्र प्रयोग करके कुँअर दादु भा को नष्ट किया था।

'मारण मंत्र' के प्रयोग के विषय में और भी बहुत-सी ऐसी ही बातें सुनने को मिलती हैं। वास्तव में, जब किसी की अचानक मृत्यु हो जाती है तो यही समझ लिया जाता है कि उसे उक्त प्रयोग से मरवा दिया गया। ऐसा भी विश्वास है कि 'मारण मंत्र' के प्रयोग से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, चट्टानें फट जाती हैं तथा और भी ऐसी-ऐसी बातें हो जाती है कि उनका वर्णन कहाँ तक किया जाए ?

'मोहन मंत्र' के विषय में शास्त्रों में लिखा है परन्तु, ऐसा लगता है कि, आजकल गुजरात के लोगों को इसका ज्ञान शास्त्रकारों से भी अधिक है। जो लोग इस विद्या में कुशल हैं वे किसी रत्न को कुएँ में डाल देंगे और फिर उसी को दूसरी जगह से निकाल देंगे या ऐसे-ऐसे लोगों के भी नाम बता देंगे जो उन्होंने शायद कभी सुने भी नही होंगे। वे कपड़े के चिथड़े-चिथड़े करके उसको जला देंगे और फिर

साबुत थान का थान निकाल कर दिखा देंगे; एक क्षण में ही आम का पेड़ खड़ा कर देंगे, चमड़े के टुकड़े में सांप पैदा कर देंगे, कंकड़ों के सिक्के बना देंगे, खाली हाथ दिखाकर फिर कई चीजें बता देंगे और कई ऐसे चमत्कार दिखाएंगे कि दर्शक उनको देव-माया के अतिरिक्त सम्भव ही नहीं मानेंगे।

कहते हैं कि 'स्तम्भन मन्त्र' के प्रयोग से आगे बढ़ती हुई सेना को रोक दिया जाता है, बजते हुए वाद्ययन्त्र को बन्द कर दिया जाता है, विरुद्धवादी की बुद्धि मन्द कर दी जाती है बहता पानी रोक दिया जाता है और भागते हुए चोर को रुकने के लिए बाध्य कर दिया जाता है।

'आकर्षण मन्त्र' के बारे में यह कथा बहुत कही जाती है—'एक रानी ने अपनी दासी को फुलेल लेने को चौहटी में भेजा। लौटते समय उसको एक जती मिला और उसने फुलेल की एक फुरेरी मांगी। जब दासी ने हां कह दी तो वह फुलेल में सींक डाल कर हिलाता रहा और आकर्षण मंत्र का उच्चारण करता रहा। दासी को इसका पता भी नहीं चला और उसने फुलेल ले जाकर अपनी मालकिन को दे दिया। जब रानी ने उसे हाथ में लिया तो देखा कि फुलेल तो शीशी में चक्कर मार रहा है। उसने दासी से पूछा कि रास्ते मे कौन मिला था? सेविका ने उत्तर दिया, 'गुरुजी ने तो इसमें से एक सींक भरी थी, और तो कोई नहीं मिला।' रानी ने वह फुलेल एक बड़े-से पत्थर पर डाल दिया जो, मंत्र के प्रभाव से, रात को लुढ़कता हुआ जती के उपाश्रय में चला गया। जब राजा को इस घटना की खबर हुई तो उसने जती को मरवा दिया।'

हम देख चुके हैं कि भीमदेव द्वितीय का मंत्री अमरसिंह सेवड़ा इसी मंत्र के प्रभाव से मनुष्यों, स्त्रियों और देवों को आकर्षित कर लेता था। कहते है कि उसके स्वामी पर भी मंत्रविद्या का प्रयोग करने का दोष लगाया जाता है।[35]

कहते हैं, किसी राजा के दो रानियां थी। उन दोनों ने ही एक ब्राह्मण से वशीकरण मंत्र की एक-एक चिट्ठी प्राप्त की। प्रत्येक चिट्ठी मे लिखा था 'बड़ी रानी पर प्रसन्न हों तो ठीक है, छोटी रानी पर प्रसन्न हों तो भी ठीक है।' दोनों ही रानियां मन में प्रसन्न थीं कि उन्हें अपनी इच्छानुसार चिट्ठी मिली थी। जब राजा को इस बात की गन्ध मिली तो उसने तावीजों में से निकलवा कर चिट्ठियां पढ़ीं और बहुत हंसा। इसी तरह पुत्र को जन्म देने की इच्छा वाली स्त्रियां जब मंत्र विद्या जानने वालों से पूछती हैं तो वे एक चिट्ठी लिख कर दे देते हैं और कह देते हैं कि बच्चा पैदा होने से पहले उसे न खोलें। ऐसी चिट्ठियों में वे लिखते हैं 'पुत्र नहीं पुत्री' जिसका अर्थ दोनों ही पक्षों में लगाया जा सकता है। कभी-कभी कोई सयाना पिता को तो चुपके से कह देता है कि पुत्र होगा और इसी तरह माता को पुत्री के लिए कह देता है। पैदा तो जो होना होता है वही होता है, तब वह निराश पक्ष

---

35. देखिए—रासमाला (हिन्दी अनुवाद) भा. 1. (उत्तरार्द्ध) पृ. 234.

को कहता है 'तुम्हारे अन्दर श्रद्धा तो है नहीं, इसलिए मैंने सच्ची बात छुपा कर रक्खी[36] (और सही बात तुम्हारे पति या तुम्हारी पत्नी को बता दी थी।)

36. डॉ. हैनरी लिखित हिस्ट्री ऑफ ग्रेट ब्रिटेन, पृ० 383 के अनुसन्धान में स्कॉट कृत डिसकवरी ऑफ विचक्राफ्ट का उद्धरण देते हुए एण्ड्रयूज ने लिखा है कि "हमारे विनोदी ग्रन्थकार ने जादू टोनो के विषय मे जो ऊपर से विश्वसनीय सी लगने वाली, हास्यास्पद कथाएं उद्धृत की हैं वे अत्यन्त हास्यजनक मात्र हैं। एक कहानी मे एक गरीब वृद्धा की प्रशसा की गई है क्योंकि वह रोगी के सामने कुछ शब्दों का उच्चारण करके उसे सभी रोगों से मुक्त कर देती थी; इस सेवा के बदले मे उसे एक पेनी और एक पावरोटी मिलती थी। बाद में, इस जगत् और परलोक में जल मरने का भय उसको हो गया और उसने कबूल किया कि उसका समस्त जादू इन पंक्तियों मे समाया हुआ था, जो वह रोगी के सिर के पास मुंह ले जा कर धीरे-धीरे हल्की आवाज में हमेशा दोहराया करती थी—

'तेरी पाव रोटी मेरे हाथ में,
तेरा पेनी मेरे 'बटुए' में;
न तू कभी अच्छा होगा
और, न मैं कभी खराब हूंगी।'

पाठकों को याद होगा कि Bride of Lammernoor के एक दृश्य की समाप्ति पर इन पंक्तियों का प्रयोग किया गया था। सर जॉन हैड ने आपुलियस के अनुवाद मे भी कुछ इसी तरह के गूढ प्रत्युत्तर दिए हैं।

प्रथम अंग्रेज शिल्पशास्त्री के विषय मे कहा जाता है कि जब उसने विण्डसर के किले का काम पूरा कर लिया तो एक दीवार पर ये शब्द खुदवा दिए—

"वाइकेहाम ने इसे बनाया या इस (इमारत ने) वाइकेहाम को बनाया"

उसके शत्रु तो इस वाक्य को उसकी धृष्टता का ही प्रमाण मानते थे परन्तु वाइकेहाम नम्रतापूर्वक यही अर्थ बताया करता था कि 'मैंने इस किले को नहीं बनाया है प्रत्युत यही मेरे बनने का कारण है।'

जब क्रोसस (Croesus) ने साइरस (Cyrus) पर चढ़ाई की और उसको जो उत्तर मिला वह प्रसिद्ध है "हैलिस (Halys) को पार करके क्रोसस एक बड़े राज्य को उलट देगा।" क्रोसस ने समझा कि वह शत्रु की शक्ति को उलट देगा परन्तु वास्तव में, उसकी स्वयं की शक्ति उलट गई। दोनों ही घटनाओं के प्रति भविष्यवाणी सही मालूम पड़ती थी।

शेक्सपीयर ने भी लिखा है—

"The Duke yet lives, that Henry shall depose,
But him outlive and die a violent death. Why, this is just.
"Aio Te, Aeacida, Romanos Vincere passes.

—Second part of King Henry VI, Act I, sc. 4.

भूत निकालने का एक मंत्र और चलता है, उसी का वर्णन हम यहाँ और करेंगे; यह बौद्ध मंत्र है और 'घटाकर्णवीर मंत्र' कहलाता है। इस मत्र के द्वारा जो भी शुभ अथवा अशुभ कार्य साधना होता है उसी के अनुसार इसको शुक्ल या कृष्ण पक्ष में आरम्भ किया जाता है। साधक किसी बगीचे, देवमन्दिर या घर के किसी पवित्र एकान्त स्थान में साधना के लिए बैठता है। पहले वह इस मंत्र से स्नान करता है:—

'ह्रीं क्लीं गंगाजलाय नमः'

फिर, वह इस मंत्र का उच्चारण करके शुद्ध वस्त्र धारण करता है:—

'ह्रीं क्लीं आनन्ददेवाय नमः'

इसके बाद निम्न मंत्र से भूमि को शुद्ध करके बैठता है:—

'ह्रीं श्री भूम्यादि देवतायै नमः'

तदनन्तर धूप जलाता है, घृत और तेल के दीपक जलाता है और घण्टाकर्णवीर का ध्यान करता है। फिर एक कागज या ताड़पत्र पर घण्टाकर्णवीर की आकृति अंकित करता है जिसमें उसके कानों में घण्टे चित्रित करता है और नीचे यह मंत्र लिख कर जप आरम्भ करता है:—

नमो घण्टाकर्णो महावीरः सर्वव्याधिविनाशकः।
विस्फोटकभये प्राप्ते रक्ष रक्ष महाबल! ॥1॥
यत्र त्वं तिष्ठसि देव लिखितोऽक्षरपंक्तिभिः।
रोगास्तत्र प्रणश्यन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ॥2॥
तत्र राजभयं नास्ति याति कर्णे जयाक्षरम्।
शाकिनी भूत वेताला राक्षसाः प्रभवन्ति न ॥3॥
नाकाले मरणं तस्य न च सर्पेण दृश्यते।
अग्निचोरभयं नास्ति घण्टाकर्ण नमोऽस्तुते ॥4॥
ठः ठः ठः स्वाहा

"सब प्रकार की व्याधियों का नाश करने वाले घण्टाकर्ण महावीर को नमस्कार! यदि शरीर में फोड़े फुंसियों का भय हो गया है तो हे महाबली! हमारी रक्षा करो, रक्षा करो; हे देव! जहाँ अक्षरों और पंक्तियों के बीच मे चित्रित होकर विराजते हो वहाँ से वात, पित्त और कफ से उत्पन्न होने वाले रोग नष्ट हो जाते हैं; वहां राजा का भय नहीं होता, कानों में जय के ही अक्षर प्रविष्ट होते हैं। वहाँ शाकिनी, भूत और वेताल आदि का जोर नहीं चलता, अकालमृत्यु नही होती, सर्प दिखाई नही देता और आग तथा चोर का भय नहीं होता।

घण्टाकर्ण! तुमको नमस्कार!

ठः ठः ठः स्वाहा।"

इस मन्त्र का बयालीस दिन में तेंतीस हजार बार जाप किया जाता है। फिर, धूप देने के बाद जाप परिपूर्ण होता है। घण्टाकर्ण मन्त्र को यदि तावीज में पहना जाय तो पहनने वाले की भूत, प्रेत और घातकों की बाधा से रक्षा होती है; मनुष्य को बुद्धि प्राप्त होती है; शत्रु उसके वश में हो जाते हैं; या उसकी स्त्री उसके वश में हो जाती है (ऐसा कभी-कभी कठिन होता है)। कभी-कभी इस मन्त्र को (सिद्ध करके) मकान की दीवार पर चिपका देते है, जिससे साँप, चूहों, कृमि-कीटों तथा भूतादि की बाधा नहीं होती।[37]

---

37. सदाचार कायम रखने व लम्पटता से बचाव करने के लिए, मानों लगाम डाल दी हो, कुलीन रोमन लड़कों के गले में 'बुल्ला' (Bulla) या ताबीज़ पहनाने का प्लूटार्क ने उल्लेख किया है परन्तु, यह असम्भव नहीं है कि कुछ यहूदी, क्राइस्ट के समय में और बाद में भी, मंत्र एवं तावीजों को अशुभ से रक्षा का साधन मानते रहे हैं। हिब्रू टारगम अथवा यहूदियों की भाषा में, क्राइस्ट से कोई पांच सौ वर्ष बाद, एक धर्मपुस्तक लिखी गई है, उसमें एक चमत्कारक वाक्य है जिससे ईसा ने क्या कहा है (Matt. xxiii, 5) और आधुनिक यहूदियों का अपने रक्षोपायों और तावीजों आदि के विषय में क्या विचार है, ये दोनों बातें सिद्ध हो जाती है। वह इस प्रकार है:—

इजरायल के मूर्तिपूजक समाज का कहना है 'मुझे सब लोगों में श्रेष्ठ चुना गया है क्योंकि मैं अपने बांएँ हाथ और सिर पर रक्षणी (ताबीज) बाँधता हूँ और मेरे घर के दरवाजे के दाएँ हाथ एक लिखित खर्रा चिपका हुआ है, जिसका तीसरा भाग मेरे शयन कक्ष के सामने है उसमें लिखा है। कि दुष्ट पिशाचों में मुझे हानि पहुँचाने की शक्ति नही रहेगी।'

–देखिये—Parkhurst's Great Lexicon तथा Bishop Patrick and Calmet, quoted by D'oyly and Mant in a note on the passage in St. Mathew.

सुधार आन्दोलन से पूर्व बने हुए एडिनबर्ग के बहुत से दरवाजों पर पुराण-वाक्य लिखे मिलते हैं; जैसे—

'In Thee, O' Lord, is all my trust,'
'In deo est honor et gloria.'
'Blissist be Ye Lord in all his gifts'
'हे परमात्मा, मेरा आप में पूर्ण विश्वास है।'
'परमात्मा में ही सम्पूर्ण सम्मान और वैभव है।'
'हे परमात्मा, आपकी दी हुई वस्तुएं शुभ हों।'

ये सभी लेख मंत्र या तावीज के रूप मे लगाए गए हैं कि दुष्ट पिशाच प्रवेश

ऊपर से देखने में तो इन मंत्रों में अर्थहीन और असंबद्ध तथा समझ में न आने वाली भाषा दिखाई पड़ती है परन्तु, कहते हैं कि, इनकी रचना और प्रयोग वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय नियमों पर आधारित है।

निबन्धकार का कहना है कि आजकल के जमाने में पहले की अपेक्षा भूतों की संख्या बहुत कम हो गई है। इसके लिए जो कारण बताए गए हैं उनमें से एक तो बहुत ही मनोरंजक है। "कुछ अज्ञानी लोगों का ख्याल है कि अंग्रेजों के ढोल की

न कर सकें और यह परम्परा आगे इस कारण दृढ़ हो गई जान पड़ती है कि देवता का नाम तो हमेशा लिखा ही जाता है।

—देखिए ट्रेडिशन्स ऑफ एडिनबरा (ले० चैम्बर्स)

सेन्ट इफ्रेम का कथन है कि जिस तरह क्रिश्चियन लोग अपने मुख्य दरवाजों पर बहुमूल्य और जीवन को प्रेरणा देने वाले खास चिन्ह बनवाते थे उसी तरह यहूदियों में बलिदान किए हुए मेमने के सद्य खून से चौखट पर निशान बनाने का रिवाज था। हमने अपनी आंखों से कई बार देखा है कि मुसलमानों के घरों में कुरान की आयतें लिख कर दरवाजे पर चिपका दी जाती हैं ताकि हैजा घर में प्रवेश न कर सके।

नाइजर नदी का उद्‌गम तलाश करने के लिए जो लोग गए थे वे एक गाँव में बड़ी-सी गोल झोंपड़ी में ठहरे। उन्होंने उसका वर्णन (भा. 1; पृ. 217) इस प्रकार किया है—'इसके बीचों-बीच एक पेड़ का तना है जो छत को सहारा देता है; आमने सामने दो दरवाजों के लिए दो बड़े छिद्र हैं; ठीक, उनके ऊपर ही दीवार पर कागज में अरबी अक्षरों में लिखे हुए दो मंत्र लटकाए हुए हैं; उनका मकसद यह है कि वे घर में आग लगने की घटना को रोकते हैं।"—उसी पुस्तक का भाग, 2, पृ. 231–32 भी पठनीय है।

रूस में अब भी ऐसे धार्मिक मंत्रों का उपयोग बहुत किया जाता है। "उदाहरण के लिए, व्यापारी, मुख्यतः सदर बाजार के दुकानदार, (हिन्दुओं की तरह) अपनी दुकानों में नहीं सोते हैं और अच्छी तरह ताला कुंजी लगाकर छोड़ देते हैं; परन्तु, उनको उस ताले कुंजी के प्रबन्ध की अपेक्षा अपने देशवासियों के परम्परागत विश्वास पर अधिक भरोसा रहता है। वे दरवाजों और खिड़कियों के किवाड़ों पर मोहर लगा देते हैं; और राष्ट्रीय साधुश्रेष्ठ सेन्ट निकोलस (प्रायः ऐसे स्थानों का रक्षक माना जाता है क्योंकि इन मोहरों को तोड़ने की कोई हिम्मत नहीं करता जब कि ताले-कुंजी और सांकलों आदि को तोड़ने में उसको कोई बाधा नहीं होती।......" नाजिदुना के युग में बुद्ध (देवता) का पूजन भी ऐसे ही होता होगा।'

—देखिये–Russia by Thompson, Smith Elder & Co., 1848.

आवाज़ से भूत भाग गए हैं क्योंकि इसके एक ओर तो गाय का चमड़ा मँढा होता है (जिसकी आवाज़ से हिन्दू देवता पलायमान हो जाते हैं) और दूसरी तरफ सूअर का चमड़ा होता है (जिससे मुसलमान जिन्नात खौफ़ खा जाते हैं); और इसलिए वे कहते हैं कि भूत भाग गए हैं तथा मन्त्र झूठे पड़ गए हैं। इसी तरह कुछ सेन्ट टाम क्रिश्चियन गिर्जाघरों[38] का निरीक्षण करने के बाद क्लाडियस बुकानन ने अपने वर्णन में लिखा है कि वहाँ ऊपर के शिखरों में घण्टे लटकाने के बजाय उन्हें भवन के भीतरी भागों में लटकाया गया है; इसका कारण उन्होंने यह बताया कि जब कोई हिन्दुओं का मन्दिर गिर्जाघर के पास होता है तो वे गिर्जा के घण्टों को ज़ोर-ज़ोर से बजाना पसन्द नहीं करते क्योंकि, उनके कथनानुसार, इनकी आवाज से उनके देवता डर जाते है।'[39]

---

38. सेन्ट टाम क्रिश्चियन नेस्टर शाखा के ईसाई हैं और मालाबार तट के निवासी हैं। उनका कहना है कि धर्मगुरु थामस ने उन्हें ईसाई धर्म में परिवर्तित किया था, जो बाद में मयलापुर चला गया था। वह स्थान अब भी संत थामस का पर्वत कहलाता है क्योंकि वह वहीं पर शहीद हुआ था। दूसरे वृत्तान्त ऐसे भी मिलते हैं कि गोण्डोफरनीज नामक पार्थियन राजा ने उसे मरवा दिया था। इन बहुत से नेस्टोरी ईसाइयों को गोआ के पुर्तगालियों ने कैथोलिक धर्म में परिवर्तित कर लिया। क्लाडियस बुकानन के आने के बाद अंग्रेज मिशनरियों ने भी इन लोगों की ओर बहुत ध्यान देना शुरू कर दिया है। बुकानन की क्रिश्चियन रिसर्चेज इन एशिया नामक पुस्तक 1811 ई० में प्रकाशित हुई थी और उसने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

39. कभी-कभी हिन्दू लोग मुअज्जिन (अजान देने वाले) की बांग सुन कर कानों में उंगलियां दे लेते हैं। सिख सरकार ने तो अज़ान देना बिलकुल ही बन्द करवा दिया था।

—देखिये Shore's Notes on Indian Affairs. Vol. ii. p. 412

नवीं शताब्दी के मध्य में जब सेन्ट एनशार के प्रयत्नों से जटलैण्ड मे क्रिश्चियनों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हुई तो 'अन्य सुविधाओं के साथ उन्हे गिर्जाघरों मे आजादी से घण्टे बजाने की भी छूट मिली, जिसके लिए जादू के डर से मूर्तिपूजक पहले कभी इजाजत नहीं देते थे। इंगलैण्ड में मुर्दे को गिर्जाघर में ले जाते समय और गिर्जाघर से कब्र में ले जाते समय लगातार आत्मघण्ट (soul bell) बजाया जाता था; इसका तात्पर्य भूतो और पिशाचों को भगाने का ही था।

देखिए—Brand's Popular Antiquities.

स्कैण्डिनेविया के गिर्जाघरों मे घण्टे बजने के परिणामस्वरूप ही वहां से

टिप्पणी अ

अन्य देशों में भूत

भूत-निबन्ध के विषय में नीचे लिखी टिप्पणी 'बाम्बे क्वार्टर्ली मैगज़ीन एण्ड रिव्यू' के प्रथम अंक अक्टूबर, 1850 में "भारत में भूतों का आवेश, भविष्य-कथन और वैद्योपचार क्रिया" शीर्षक लेख के अन्तर्गत प्रकाशित हुई है—

"भूत-निबन्ध के प्रकाश में आने से पहले डबलिन यूनिवर्सिटी मैगजीन में 'वारण' के विषय में विचार शुरू हुआ था; वह तभी से चल तो रहा है पर रह-रह कर कभी-कभी किश्तों में आता है इसलिए बीच-बीच में अन्तराल आ जाता है।[0] शुद्ध और मलिन रूप में पिशाच या भूत के प्रभाव सम्बन्धी विद्या को मराठी भाषा में 'वारण' कहते हैं; यह शब्द ग्रीक के 'न्यूमा' शब्द से बहुत समानता लिए हुए है। लेखक का मत है कि यह आत्मा का दोहरापन ऊपरी है; यह मनुष्य के संवर्धन की दो अवस्थाएँ बताने वाला है; ये भिन्न अवस्थाए, लोक-सम्बन्ध का विचार करते हुए एक के बाद एक, इस तरह भिन्न-भिन्न काल में चलती है अथवा अपने दैहिक और आत्मिक चमत्कार से लोक समूह पर, भिन्न-भिन्न वेला में प्रकट होती हैं, अथवा भिन्न-भिन्न वर्ग के मनुष्यों पर वे दोनों नितान्त भिन्न आत्मिक प्रभाव डाल कर भिन्न-भिन्न अंग-भाग में एक साथ रहती है ? 'वारण' के सम्बन्ध में जो तथ्य निश्चयपूर्वक इन लेखों में व्यक्त किए गए हैं उनकी बहुत कुछ सम्पुष्टि 'भूत-निबन्ध' से होती है। इन तथ्यों को पढ़ कर यूरोपीय पाठकों को अप्रतीति हुई हो, ऐसा तो नहीं लगता परन्तु उनको आश्चर्य अवश्य हुआ। ये पाठक उस स्थल से बहुत दूर बसने वाले है जहाँ ऐसी घटनाएँ घटती हैं; वे सभ्यता के उस युग में रह रहे हैं जिसमे उन्हीं का स्थान है और शिक्षा के परिणामस्वरूप उनका दृष्टिकोण, भूत भरने के विषय में, लेखक के दृष्टिकोण से मूल रूप में बहुत भिन्न नहीं है; परन्तु, पिशाच की सत्ता के विषय में (जो मूलतः खूनी की सत्ता है, जिसमें मारण की सत्ता है और जो मारते समय सिंह के समान दुःख देता हुआ इधर से उधर भटकता रहता है), तात्कालिक उपचार के साधन के विषय में, प्रभाव के विषय में, जिसको सभी लोग समान रूप से स्वीकार करते हैं, इनकी मान्यताएँ भिन्न पड़ती है।

समस्त ट्राल (Trolls)+ निकल कर चले गए। ब्रिटानी के कॉरीगन (Korrigans) भी इसी प्रकार बहुत असुरक्षित हो गए थे।

देखिये—**Keightley's Fairy-mythology.**

0. मार्च 1848 से अप्रेल 1850 तक किसी-किसी अंक में।

....

\+ स्कैण्डिनेविया की लोक-कथाओं में 'वर्णित भूत या प्रेत जैसी ही आत्माएँ। ये लोगों को बहुत पीड़ा पहुँचाती थीं।

'सिंहली लोगों में भी वही विश्वास और प्रयोग प्रचलित है जो मरहठों और गुजरात के लोगों में हैं। श्रीलंका (लंका) में रहने वाले एक अंग्रेज पादरी ने वहां पर प्रचलित और प्रभावशील ऐसे तरीकों व विचारों का बड़े लम्बे समय तक आश्चर्य एवं रुचिपूर्वक अवलोकन किया; उसके देखने में जो चमत्कार आए हैं उनका वर्णन 'वारण'-विषयक वर्णन से बहुत समानता लिए हुए है। एक प्रवासी द्वारा उक्त दोनों ही स्थानों की रीतियों का विवरण लिखा हुआ पत्र हमारे पास प्रमाण में मौजूद है।

"ऐसी बातें और विचार आज भारत में ही प्रचलित हैं, ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता। स्थानीय अमेरिकन जातियों के सरदारों की उपवास विधि और साइबेरिया के जादूगरों की क्रियाओं के विषय में जो वर्णन मिलता है उसमें और 'वारण' ग्रहण करने वाले भक्तों की क्रियाओं में भी आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है।

"परन्तु, हिन्दू भूत-विधि की अत्यन्त चमत्कारिक और परिपूर्ण समानता एक ऐसे स्थान पर मिलती है जहाँ, इस उन्नीसवीं शताब्दी में, हमें उसकी वर्तमानता की सम्भावना भी नहीं हो सकती। पिछले साल, डब्लिन यूनिवर्सिटी मैगज़ीन में आयरलैण्ड निवासियों के लौकिक विश्वासों के विषय में दो या तीन लम्बे-लम्बे लेख प्रकाशित हुए थे; उनमें सिड (Sidds) नाम की परियों अथवा पार्थिव देवियों और मनुष्य प्राणी के शरीर पर उनकी सत्ता के विषय में जो विवरण दिए गए हैं वे लोक-प्रचलित विश्वासों में चमत्कारपूर्ण साम्य प्रकट करने वाले हैं, मुख्यतः स्त्रियों में भूत का आवेश, हृदय की शून्यता, ज्वर अथवा अन्य न मिटने वाले विलक्षण-विलक्षण रोगादि के विषयों में तो 'वारण' विषयक लेखों में प्रकाशित और 'भूत-निबन्ध' में वर्णित विधियों में तो बहुत ही बारीकी से समानता का अवलोकन किया जा सकता है। भारत की भूत-विद्या का चित्रण करने के प्रथम प्रयास में बहुत सी विलक्षण बातों का समानान्तर विवरण दो बहुत दूर-दूर स्थित स्थानों के वर्णन से सम्पुष्ट करना एक साथ विचित्र और सन्तोषकारक प्रतीत होता है। भूत-विद्या में श्रद्धा और उसका प्रदर्शन जैसा हमें दक्षिण तथा कोंकण के गांवों में देखने को मिलता है वैसा ही या उसके समान यदि ब्राह्मण प्रभावित गुजरात और बौद्ध श्रीलंका में मिल जाता है तो हम इसकी संभावना कर सकते हैं; घने जंगलों और गुफाओं वाले प्रदेशों में अथवा साइबेरिया के शुष्क मैदानों में बसने वाली जातियों में, जहाँ ईश्वरीय ज्ञान और प्रेम की किरण का प्रसार नहीं हो पाया है, यदि धार्मिक हिंसा और कट्टर उदण्डता पाई जाय तो भी कोई बहुत बड़ा आश्चर्य नहीं होगा; परन्तु, हिन्दुस्तान से इतनी दूर तक क्रिश्चियन द्वीप में, अलौकिक आवरण के नीचे किंचित् परिवर्तन के साथ, यदि वही विश्वास और मान्यताएँ पाई जावें तो अवश्य ही आश्चर्य-जनक बात है—और, वह द्वीप है आयरलैण्ड।

'भूत' का वास्तविक अर्थ है 'तत्व', गुजरात में भूत को 'शैतान' नहीं मानते (परमात्मा और मनुष्य के महान् शत्रु की कल्पना वहाँ नहीं है) वरन् वे मरे हुए स्त्री-पुरुषों के प्रेत के रूप में मानते है जो उस स्थिति में भी मानवीय मनोविकारों, इच्छाओं और चिन्ताओं में लिपटे रह कर दुःख पाते है:—

बेचारा भूत !

वही जीवित मनुष्य के शरीर में थोड़ी देर के लिए प्रवेश करके उसी को साधन बना कर किसी को दुःख पहुँचाते है, बेहोश करते है या स्वल्प सुख भोग करते हैं।

भारत के विभिन्न भागों में ये भूत भिन्न-भिन्न रूपों में माने जाते हैं। मैसूर के हिन्दुओं के विषय मे पादरी डूबोइस (Dubois) का कहना है कि इन लोगों में पिशाच-पूजन का सर्वत्र प्रचार है। ये लोग इसको 'भूत' कहते हैं जिसका अर्थ 'तत्व' भी होता है; मानों, दुष्ट आत्माएँ ही शरीरधारी तत्व है जिनके कोप और उत्पात से ही प्रकृति में ही गड़बड़ी उत्पन्न होती है। अति दुष्ट भूत को पिशाच अथवा दैत्य भी कहते है।

"बहुत-सी जगह दुष्ट आत्माओं के पूजन के लिए मन्दिर भी मिलते है। कई परगने तो ऐसे है कि जो अप-देवताओं की पूजा के कारण ही प्रसिद्ध है। मैसूर के पश्चिमी भाग मे जो पहाड़ों की लम्बी कतार चली गई है वह ऐसी ही जगह है और वहाँ के निवासी भूत-प्रेतादि अप-देवताओं के अतिरिक्त और किसी की पूजा नहीं करते। प्रत्येक घर और कुटुम्ब का अपना-अपना भूत होता है जो उसका इष्ट-देव कहलाता है; प्रतिदिन उसकी स्तुति की जाती है और शान्त्यर्थ बलिदान चढाया जाता है; यह केवल इसलिए नही कि वह स्वयं शान्त रहे और दुख न दे अपि तु इसलिए भी किया जाता है कि वह पड़ोसियों के उत्पाती भूतों से उस घर व कुटुम्ब की रक्षा करे। इन स्थानों मे सभी जगह भूतों की मूर्तियाँ देखने को मिलती है; वे बड़ी विकराल होती हे और कभी-कभी आकृतिविहीन पत्थर की ही बनी होती है। प्रत्येक भूत का एक नाम होता है और जो दूसरे की अपेक्षा जितना ही अधिक प्रबल होता है उसकी उतनी ही अधिक पूजा होती है।

सभी भूत प्राणियों के बलिदान के प्रेमी होते है, इसलिए उनके कट्टर भक्त जीवित भैंसो, पाड़ों, शूकरों या बकरों आदि की बलि चढ़ाते रहते है। जब चावल-चढ़ाया जाता है तो उसको रक्त से रंग देना आवश्यक होता है; नशीली शराब चढाकर भी इन भूतों को शान्त किया जाता है। केवल लाल रंग के फूल ही इनके चढ़ाने योग्य होते हैं।

भूतों की पूजा और विधि के विषय में हिन्दुओं के चतुर्थ वेद अर्थात् अथर्वणवेद में लेख है और इसीलिए ब्राह्मण इसको सावधानी से छुपाकर रखते हैं।

"मैंने प्रायः देखा है कि भूतों का प्रत्यक्ष पूजन जंगलों, सुनसान स्थानों और पहाड़ी हिस्सों में होता है; इसका कारण यह है कि ऐसे स्थानों में रहने वाले लोग मैदान के निवासियों की अपेक्षा कम सभ्य, अधिक अज्ञानी और डरपोक होते हैं और इसीलिए तरह-तरह के वहमों (भ्रान्तियों) के शिकार रहते हैं। इसीलिए वे अपनी सभी विपत्तियों और पीड़ाओं का कारण अपने भूतों के कोप को ही समझते हैं।

"जंगली लोगों के बहुत से जत्थे, जो मालाबार तट के जंगलों मे बिखरे-बिखरे रहते हैं और काडू, कुरुवेरू, मोलिगुएरू और इरूलर के जंगलों और पहाड़ों में पड़े रहते हैं, वे भूतों के अतिरिक्त और किसी देवता को नहीं मानते।

—Dubois, Hindu Manners Customs and Ceremonies, 3rd ed., Oxford, 1906, pp. 644 ff.

"वहीं पर 'जर्मन इवांजेलिकल मिशन' है, उसकी दसवीं रिपोर्ट में, जो 1850 ई० में बंगलोर में छपी है, लिखा है—

"बंगलोर से तीस मील उत्तर में अचलेला नामक गांव है। गत वर्ष वहाँ एक छोटा सा मेला लगा, जहाँ कुछ समय पूर्व 'मिशन' को एक बड़ा भूखण्ड कृपापूर्वक धर्मार्थ प्रदान किया गया था। इस स्थान के पास ही रहने वाला कोराजी नाम का प्रसिद्ध पुजारी मूर्तिपूजक धर्म को छोड़कर और अपने भूत-देवल को नष्ट करके बाइबिल को मानने वाले धर्म में आ मिला है।"

'इसके आगे वोलमा गांव के बिलावर फकीर का किस्सा है; बहुत समय तक सोच-विचार करने के बाद अन्त में बाइबिल पर उसकी आस्था जमी। अगले साल वह पूरे वर्ष भर मौन रहा और अभी तीन सप्ताह पूर्व जब उसके माँ-बाप ने उसको कुल-भूत का पूजन करने का आग्रह किया तो उसने स्पष्ट कह दिया कि 'मैं अब इतना पतित नहीं बनूंगा; यह सब पूजा झूठी और पापभरी है।'

मैसूर से भी दूर दक्षिण में कन्याकुमारी के पास तिनेवली प्रदेश है। वहाँ रहने वाले शानार जाति के लोगों के विषय में रेवरेण्ड मिस्टर काल्डवेल ने बड़ा रोचक वर्णन लिखा है जिसमें भूतों के दो भेद बताए गये है। उनमें से अपर भेद को यद्यपि पिशाच या शैतान कहा गया है परन्तु वे गुजरात के भूतों के बहुत कुछ समान हैं। वह कहता है कि प्रथम प्रकार के भूत काली अथवा मुख्यतः भद्रकाली के समान हैं; उनको 'आमेन' या माता कहते हैं। उनकी पूजा की विशेष विधि होती है जो गुजरात स्थानीय देवियों, बहुचराजी, खोडियार आदि के समान ही होती हैं परन्तु, 'बहुत सी किस्म के भूतों का मूल शानार या तामिल ही है जिनका ब्राह्मण धर्म अथवा उसके किसी अंग से कोई सम्बन्ध नहीं है।' इनका वर्णन उसने इस प्रकार किया है—

'यह साधारण मान्यता है कि बहुत से भूत मूलतः मनुष्य प्राणी ही थे।

प्राय: भूत योनि में वे लोग जाते हैं जो अचानक मर गए हैं अथवा अपमृत्यु को प्राप्त हुए हैं या जो अपने जीवनकाल में बहुत भयंकर रहे हैं।' (भाग. 2 में चाँदनी के ठाकुर सूरजमल का वृत्तान्त पढ़िये) "भूत पुरुष भी होते हैं, स्त्री भी; ऊँची जाति के भी होते हैं, नीच जाति के भी, हिन्दू भी होते हैं; और अन्य भी। उनके चरित्र और जीवन क्रम में कोई थोड़ा बहुत अन्तर आता है तो इसी प्रकृति के कारण आता है। सभी भूत प्रबल, द्वेषी और उत्पाती होते हैं; सभी बलिदान और उन्मत्त नृत्य के इच्छुक होते हैं। इनके निमित्त निर्मित देवलों की बनावट, मूर्तियों, पुजारियों द्वारा धारण किए हुए चिन्हों, पूजाविधि अथवा बकरे, शूकर या मुर्गे की बलि तथा परिवार-भूतों को चढ़ाई जाने वाली दारू के आधार पर ही इनका अन्तर जाना जा सकता है। बहुत करके भूतों का निवास पेड़ों में माना जाता है; कुछ उजाड़ और टूटे-फूटे मकानों में इधर-उधर या ऊपर-नीचे भटकते रहते हैं कुछ अन्धेरे स्थानों में आवाजें करते रहते हैं, कभी-कभी वे अपने लिए बनाए गए देवालयों में या फिर घरों में कहीं रहने लगते हैं। प्राय: ऐसा होता है कि अपने उपासक की आत्मा को बाहर निकाल कर उसके शरीर में निवास करने की तरंग भूत में उत्पन्न होती है; ऐसी दशा में भूत के द्वारा अभिभूत व्यक्ति की चेतना लुप्त हो जाती है और उस शरीर के द्वारा चिल्लाने, मरोड़े लेने व भविष्य-कथन आदि की जो क्रियायें होती हैं वे सब भूत के ही करतब समझे जाते हैं।"

"उत्तरी हिन्दुस्तान में भी भूत होते हैं। भारत के उत्तरपूर्वी प्रान्तों के विषय में एक लेखक ने कहा है "छोटा नागपुर में नौकरी लेने में इन दिक्कतों के अलावा एक और मुसीबत है, जो कुछ लोगों के दिमाग में भरी बैठी हुई है। जादू टोना और जंत्र-मंत्र पर विश्वास भारत में सर्वत्र फैल गया है; बहुत से सुशिक्षित भी इस प्रकार के भ्रम से मुक्त नहीं है। देश के अधिकांश सुसभ्य समाज में यह सामान्य मान्यता है कि दक्षिण के लोग मन्त्र-विद्या में अधिक प्रबल हैं और वहां के पर्वतों और जंगलों में भूतावली रहती है।[40]

बिशॉप गोबाट ने अपने अबीसीनिया प्रवास के विवरण' (Journal of a Resid nce in Abyssinia) में वहां पर प्रचलित विश्वासों को देखते हुए उस देश को 'जादूगरों की जमात' कहा है। स्थानीय लोगों में उनको 'बाउदा' (Boudas) कहते हैं।

लोगों की ऐसी धारणा है कि वे बाउदा जब चाहते हैं तब अदृश्य हो जाते हैं; जब कोई आदमी बैल आदि को मारता है तो उसमें मांस के बजाय पानी भरा मिलता है या वह खाली मिलता है, लोगों का खयाल है कि कोई 'बाउदा' उसको खा जाता है; जिन लोगों को जाहिरा तौर पर कोई बीमारी नहीं होती और भूख भी ठीक लगती है फिर भी वे दुबले पतले हड्डियों के ढांचे बने हुए हैं तो कहा जाता है

40. बनारस मेगजीन के भाग 3, पृ. 340 पर रामगढ़ परगने के एक सरकारी अधिकारी की टिप्पणी।

कि उनको अन्दर ही अन्दर कोई 'बाउदा' खा रहा है; और, खास तौर से जिनके कान विंधे होते हैं, और कभी-कभी जिनके कानों में बालियां होती है उन तरसुओं को तो बाउदा मार ही देता है।'

"अबीसीनिया वासियों का विश्वास है कि बहुत से बाउदा तो इस तरह मारे गए तरसु (जानवर) ही हैं क्योंकि जिन लोगों पर बाउदा का असर होता है वे तरसुओं की तरह ही चिल्लाते हैं। वे यह भी मानते है कि सभी फालाश (Falashas), बहुत से मुसलमान, और कुछ क्रिश्चियन भी बाउदा हो जाते हैं। डाक्टर गोबाट ने बयान किया है कि एक बार जब उनको तेज बुखार चढ़ा तो उनके आसपास के लोगों ने यही समझा कि उन पर 'जादूगरों' का असर हो गया है। ऐसा लगता है कि बिशप को उन लोगों को यह समझाने में तो सफलता मिली कि वास्तव में, कोई भी मनुष्य अदृश्य नहीं हो सकता न अपने सहवासियों का शिकार करने के लिए तरसु का रूप धारण कर सकता है परन्तु वह उनको यह विश्वास नहीं दिला सके कि 'बाउदा' होते ही नहीं अथवा उनमें पीड़ा उत्पन्न करने की शक्ति ही नहीं होती। अबीसीनिया वालों का मूल सिद्धान्त क्या था, इसका परीक्षण करने को तो डा. गोबाट आतुर नहीं थे परन्तु अपनी तकरीर में उन्होंने जो प्रत्युत्तर दिए हैं उनसे ज्ञात होता है कि वे लोग मनुष्य प्राणी के अतिरिक्त रूप वाले बाउदों में भी विश्वास करते थे, जिनको 'न्यू टेस्टामेण्ट' में वर्णित शैतान या दुष्ट आत्मा की समानता देते थे। 'भूत' और 'बाउदा' ये दोनों शब्द नाम और लक्षण के लिहाज़ से बहुत मिलते-जुलते हैं; इससे इस शोध के लिए सुझाव मिलता है कि इन दोनों का निकास (उद्भव) या मूल एक ही तो नहीं है, जो उस समय से सम्बद्ध हो, जब एकदा शक्तिशाली अबीसीनिया साम्राज्य का व्यापार भारतीय समुद्र तट तक चलता था और जो व्यापार मार्ग अब बिलकुल विस्मृति में पड़ गया है।

इस भ्रम का परिणाम लोगों को कितना दुखी करता है, इसका उदाहरण देते हुए डा० गोबाट ने लिखा है कि 'अबीसीनिया के निवासी प्रायः चंचल प्रकृति के होते हैं, परन्तु जब किसी की कुछ तबीयत खराब हो जाती है तो वह, इस खयाल से कि उस पर जादूगर या बाउदा का असर हो गया है, दुहरा दुखी हो जाता है।'

नथानियल पीयर्स (Nathaniel Pearce) ने अबीसीनिया निवासियों की रीति भांति विषयक स्वल्प किन्तु सत्य विवरण है जो Transactions of the Literary Society of Bombay के तीसरे भाग में छपा है; वह इस प्रकार है—

"अबीसीनिया में कई प्रकार के रोग हैं; इन लोगों का कहना है कि ये भूत-बाधा से उत्पन्न होते हैं। इस विषय का एक खरा-खरा वर्णन मैं यहां दे रहा हूँ। एक रोग को टेग्री में 'बदर' कहते हैं और आमेरर में 'टब्बीह' कहते है; मेरा ख़याल है कि मैंने अपने देश में कुछ चिन्ता आदि के कारण क्षुब्ध लोगों को दौरे पड़ते देखे

हैं, यह भी कुछ वैसी ही हालत है; परन्तु, ये लोग कुछ और ही कहते हैं कि जो लोग चाकू, छुरी, भाले, हल की फाल आदि बनाने का, लोहे का काम करते हैं या मिट्टी के बर्तन बनाते हैं, उनसे ये रोग आते हैं। ये सब लोग 'बदर' और 'टव्वीह' नाम से बोले जाते हैं और मुसलमानों से भी बुरे समझे जाते हैं; क्रिश्चियन धर्म अपना लेने पर भी इनको संस्कार प्राप्त करने की आज्ञा नहीं है।

पीयर्स ने आगे 'ट्रिगेटियर' नामक एक अन्य रोग का वर्णन किया है जिसमें यह स्वीकार किया है कि 'इस रोग में अवश्य ही शैतान का कुछ हाथ रहता है।' यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'टव्वीह' और 'बदर' ये दोनों नाम एक ही शब्द के रूपान्तर मात्र हैं।

अफ्रीका में 'फेटिश' (भूत)–बाधा के विषय में लॉण्डर्स ट्रैवल्स (Launder's Travels) भा. 2, पृ 120, 123-26, 231 पर वर्णन है।

टांक्युइन (Tonquin) के भूतों के विषय में लिखा है:—

"दो बड़े जादूगरों में से एक का नाम टे-बॉउ (Tay-bou) है (चीन की ओर इण्डीज़ में टांक्युइन मे); वह लोगों को यह समझाता है कि जो कुछ होने वाला (भविष्य) है वह सब जानता है इसलिए जब लोगों को लड़के-लड़कियों के विवाह करने होते हैं, जमीन बेचनी या लेनी होती है या और कोई बड़ा काम करना होता है तो भविष्यवक्ता के रूप में पहले उससे जाकर पूछते हैं।

"उसके पास एक पुस्तक है जिसमें मनुष्यों और पशुओं की आकृतियाँ बनी हुई हैं तथा गोल और त्रिकोण रेखाचित्र खिचे हुए हैं; इसके अतिरिक्त उसके पास तीन पीतल के टुकड़े (पासे) हैं जिनके एक तरफ कुछ अक्षर खुदे हुए हैं। वह इन तीनों को तीन प्यालों में रख कर हिलाता है और फिर जमीन पर डाल देता है। उस समय यदि सब पासों का अक्षर वाला हिस्सा ऊपर रहता है तो वह कह देता है कि प्रश्नकर्ता दुनिया में बहुत सुखी रहेगा। परन्तु यदि सब पासे उल्टे पड़ जाते हैं तो यह अपशकुन माना जाता है।

"यदि एक या दो पासे सीधे पड़ते हैं तो वह अपनी किताब देखता है और जो कुछ उसकी समझ में आता है, वैसा कहता है। जो लोग पीड़ित होते हैं और यह समझते है कि टे-बाउ (फाउ ?) ने यह पीड़ा भेजी है उनके सामने वह इसका कारण जानने का भी दम भरता है और उनके शरीर में घुसी हुई पीड़ा देने वाली मृतक की आत्मा को बाहर निकालने का ढोंग रचाता है।

"जब वे लोग बीमार पड़ते हैं तो दूसरे जादूगर टे-फाउ-थानी (Tay-Phou-Thony) के पास जाते हैं (जो टांक्युइन में है); यदि वह कहता है कि भूत नाराज़ हो गया है इसीलिए बीमारी है तो उनको बलिदान, भेंट और चावल तथा मांस से सजी हुई मेज आदि अर्पण करना पड़ता है और इन सब वस्तुओं का किस तरह उपयोग करना चाहिये यह बात वह जादूगर अच्छी तरह समझता है। यदि इतना करने पर भी बीमार अच्छा नहीं होता तो रोगी के मित्र और रिश्तेदार कुछ

सिपाहियों को साथ लेकर मकान को घेर लेते हैं और भूत को भगाने के लिए तीन बार बन्दूकें चलाते हैं।

"यदि कोई मल्लाह या मछियारा बीमार पड़ जाता है तो वह जादूगर उ-को यह मूर्खतापूर्ण बात समझाता है कि उस पर जल देवता का कोप हो गया है; फिर वह नदी की तरफ रोगी के मकान से बहुत दूर अलग-अलग स्थानों पर तीन दिन तक अच्छे-अच्छे फर्श बिछवाता है, झोपड़ियाँ बनवाता है और जीमन करवाता है और कहता है कि ऐसा करने से वह देवता वापस अपने क्षेत्र में लौट जाएगा।

'परन्तु, ऐसी पीड़ाओं का ठीक-ठीक कारण जानने के लिए वह रोगियों को टे-वाउ के पास भेजता है; वह बतलाता है कि मरे हुए आदमियों की आत्माएँ ही बीमारी का कारण हैं और तसल्ली देता है कि दुखदाई भूत को वह अपनी कला से अपने शरीर में खींच लेगा (ये लोग आत्मा के परकाय प्रवेश में विश्वास करते हैं); और, जब वह उस शैतानी करने वाले भूत को पकड़ लेता है तो उसे एक पानी की बोतल में बन्द कर देता है और तब तक कैद रखता है जब तक कि बीमार अच्छा न हो जाय; बीमार के चंगे होने पर वह भूत को अपनी इच्छानुसार घूमने के लिए आज़ाद कर देता है। यदि रोगी मर जाता है तो भी वह भूत को, आइन्दा ऐसा न करने की हिदायत देकर छोड़ देता है।"

—N. Bailey's English Dictionary by Mr. Buchnan, Vth edition, London, 1760.

बेली (Bailey) की पुस्तक अब सुलभ नहीं है इसलिए उसमें से कुछ विचित्र और चमत्कारपूर्ण कामों के उदाहरण नीचे उद्धृत करते है—

'यहूदी लोग आत्मा द्वारा देहान्तर-प्रवेश के विषय में कुछ भी कहें परन्तु 'न्यू टेस्टामेन्ट' या 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है।

"ऐसा लगता है कि यहूदी लोगों ने यह विचार चाल्दिआ (Chald.a) में उस समय ग्रहण किया था जब वे बेबिलोन मे बहुत लम्बे समय तक बन्दी बनाकर रखे गये थे अथवा यह ग्रीक लोगों के साथ सम्पर्क का परिणाम हो सकता है, जिन्होंने यह धारणा पौर्वात्यों से ग्रहण की थी। परन्तु, यह निश्चित है कि जीसस क्राइस्ट (ईसा मसीह) के समय में यह विचार यहूदियो में गहरी जड़ पकड़े हुए था। यह बात उनके इन कथनों से स्पष्ट हो जाती है कि उनमें से क्राइस्ट को कोई जॉन बैप्टिस्ट समझते थे तो कोई इलायस (Elias), कोई जेरेमियास (Jerem.as) या फिर कोई पुराना पैगम्बर मानते थे। और, जब टेट्रार्च हैरॉड ने क्राइस्ट के चमत्कारों के बारे में सुना तो उसने कहा 'जिस जॉन बैप्टिस्ट का मैंने सिर उड़ा दिया था वह फिर उठ खड़ा हुआ है।"

"जोसेफस (Josephus) और फिलो (Philo) बहुत प्राचीन और असाधारण ज्ञान के धनी यहूदी थे; उनकी गणना शास्त्रकारों से दूसरी श्रेणी में होती है;

उनका भी कहना है कि देहान्तर-प्रवेश का विचार उनकी जाति के लोगों में सामान्य था। जोसेफस ने लिखा है कि फेरिसीस (Pharisees) के मत से भले मनुष्यों की आत्मा उनकी मृत्यु के पश्चात् एक देह को छोड़ कर दूसरी में आसानी से प्रवेश कर जाती है। अन्यत्र उसने लिखा है कि कभी-कभी खोटे आदमियों की आत्मा जीवित मनुष्यों के शरीर में भर कर उत्पात मचाती है और उनको दुख देती हैं। फिलो का मत है कि आत्माएँ हवा में से उतर कर शरीरों में प्रवेश करती हैं और उन्हें जीवित रखती हैं; शरीर की मृत्यु के उपरान्त पुनः वायु में ही चली जाती हैं। उनमें से कितनी ही आत्माओं को तो स्थूल पदार्थों से घृणा हो जाती है और वे पुनः पार्थिव शरीर में प्रवेश करने से भय खाती हैं; परन्तु, दूसरी आत्माएँ स्वेच्छा से लौट आती हैं और अपनी उन इच्छाओं को पूरी करती हैं जिनका प्रभाव उन पर पड़ा होता है। यहूदी विद्वान् इस सिद्धान्त को अस्पष्ट और गुह्य शब्दावली में लपेट कर प्रस्तुत करते हैं। उनका विश्वास है कि परमात्मा ने सभी आत्माओं के लिए पूर्णता की श्रेणी निश्चित कर दी है, जो उन्हें एक ही जीवन में प्राप्त नहीं हो पाती इसलिए उनको बारम्बार पृथ्वी पर आना पड़ता है और भिन्न-भिन्न योनियों में एक के बाद एक करके, जन्म ग्रहण करना पड़ता है कि जिससे धर्मानुसार विधि निषेध का पालन करते हुए वे ईश्वर-निर्दिष्ट पद को प्राप्त हो सकें। वे कहते है, क्या कारण है कि कुछ लोग भरी जवानी में ही चल बसते हैं? इसका कारण यही है कि उन्हें उस सीमा तक पूर्णता प्राप्त हो चुकी है और अब उनको इस क्षणभंगुर नाशवान् देह की आवश्यकता नहीं है। दूसरे मूसा (Moses) जैसे लोग अनिच्छा से मरते हैं क्योंकि अभी तक उनका कर्त्तव्य पूरा नहीं हुआ है। इसके विपरीत, डेनियल (Daniel) जैसे लोग सन्तोष की साँस लेते हुए देहत्याग करते है क्योंकि उनके लिए इस संसार में करने-धरने जैसी कोई बात बाकी नहीं रहती।

"देहान्तरप्राप्ति के दो प्रकार हैं। पहला तो यह कि कोई आत्मा चेतन शरीर में प्रवेश करती है—जैसे प्रशासक हैरॉड का विश्वास था कि जॉन बैप्टिस्ट की आत्मा अद्भुत कर्म सम्पन्न करने के लिए जीसस क्राइस्ट के शरीर में अवतरित हुई है। दूसरा मत यह है कि अपने शेष कर्मों को पूरा करने और पूर्णता प्राप्त करने के लिए कुछ आत्माएँ चेतन देह में प्रवेश करती है, जैसे मूसा की आत्मा मसीहा की आत्मा से सयुक्त (सम्पृक्त) हो गई, इत्यादि। देहान्तरप्राप्ति का दूसरा प्रकार यह है कि पूर्व देह में जो पाप कर्म किए हैं उनको धो डालने अथवा पवित्रता का विशेष पद प्राप्त करने के लिए कुछ आत्माएँ नवनिर्मित शरीर को ग्रहण करती हैं। यहूदियों का कहना है कि उनको ऐसा तीन या चार बार करना पड़ता है। वे कहते हैं, कुछ आत्माएँ बहुत ऊँची होती हैं, उन्हें भौतिक पदार्थों से अत्यन्त घृणा हो जाती है और बड़ी अनिच्छा और पश्चात्ताप से ही वे देहान्तर में प्रवेश करती हैं। दूसरी आत्माएँ विषय वासना से लिप्त और नीच प्रकार की होती हैं; उनका झुकाव और

लगाव शरीर से बना ही रहता है और वे अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए बारम्बार अनवसर ही देह का आश्रय ग्रहण करती हैं। इन विद्वानों का कथन है कि इस प्रकार का देहान्तरगमन मूक पशुओं और निर्जीव पदार्थों तक में होता है। इस मत को मानने वाले लोगों की संख्या भी नगण्य नहीं है। यहूदियों के अति प्रसिद्ध विद्वानों ने इस सिद्धान्त को माना है और उनका कहना है कि पैथागोरस, प्लेटो और वर्जिल जैसे प्राचीन महात्माओं ने भी इसको पूर्व पैगम्बरों के लेखों के आधार पर ही ग्रहण किया था।

"इस प्रकार का विचार पूर्वीय देशों में बहुत प्राचीन काल से चला आता है। चीनियों का कहना है कि इण्डीज (हिन्द) में इस मत का प्रथम प्रवर्तक क्सेकिया (Xekiah) नामक भारतीय विद्वान् था जो ईसा से लगभग एक हज़ार वर्ष पहले हुआ था। वहीं से बाद में, ईसा से 56 वर्ष पीछे यह मत चीन में प्रचलित हुआ। चीनियों का मत है कि क्येकिया ने आठ हजार बार जन्म लिया और अन्तिम बार वह सफेद हाथी के रूप में प्रकट हुआ। इसी सिद्धान्त को मानने वाले होने के कारण भारतीय और चीनी मरने में आगा-पीछा नहीं सोचते हैं और इसीलिए वे प्रायः मुसीबत में अपने बच्चों तक को मार देते हैं। इसी देश के एक राजा की बात है कि चेचक निकलने के कारण उसका चेहरा बहुत भद्दा हो गया था और ऐसी भयानक आकृति के कारण उसका जीवन भार बन गया था इसलिए उसने अपने भतीजे को अपनी गर्दन काट डालने का आदेश दिया। भतीजे ने ऐसा ही किया और बाद में वह (बदसूरत) राजा जला दिया गया। भारतीय दार्शनिक कालानस की कथा प्रसिद्ध ही है कि उसने सिकन्दर महान् के समय में अपने आपको जीवित जला दिया था। देहान्तर-प्राप्ति-विषयक विचार भारतीयों के मन में इतना गहरा पैठ गया है कि उनको इसके विषय में कोई शक-शुबाह नहीं रह गया है और इसीलिए वे मौत को अति तुच्छ मानते हैं। इसी कारण वे जीव-हिंसा नहीं करते हैं कि कहीं उनके पूर्वज या निकट सम्बन्धी उस पशु के शरीर में निवास करते होंगे तो उन्हें कष्ट होगा। वे जंगली हिंसक पशुओं से भी अपने बचाव की अधिक चेष्टा नहीं करते अपितु जो विदेशी उनको मारने के लिए उद्यत होते हैं उनसे भी धर्मरक्षा के लिए उन्हें छुड़ा लेते हैं।

टिप्पणी ब

अब तत्वज्ञान सम्बन्धी और शंकास्पद विचारों के पक्ष में साक्षी के लिए हम बैन्थम (Bentham)[41] का आह्वान करते हैं। ग्रन्थकार का कथन है कि यदि हम

41. Jermy Bentham अंग्रेज लेखक (1748–1832 ई.) उसने अपना समस्त जीवन लेखन और अध्ययन में ही बिताया। उसकी कृतियों में Introduction to the Principles of Morals and Legislation सबसे अधिक प्रसिद्ध है। N. S. E., p. 146.

मनुष्य के हृदय में और गहरे उतरें तो हमें एक ऐसे गूढ़ भाव का पता चलता है जो ऐसे अद्भुत कर्म में विश्वास उत्पन्न करता है मानो उससे अलौकिक साधनों पर भी हमारी सत्ता कायम करने की शक्ति प्राप्त होती है। फिर, जब ये विशुद्ध सृष्टि के प्राणी-ही विचार का विषय बन जाते हैं तो साक्षी का विवेचन करते समय विवेक बुद्धि भी अपेक्षित रूप में निष्पक्ष नहीं रह पाती। भय रास्ता रोक लेता है; संशय भयानक लगता है; हमें यह डर रहता है कि कहीं ये अदृश्य कार्यसाधक कुपित तो नहीं हो जाएंगे, और, लोकमुख से ऐसी कितनी ही कहानियाँ सुनने को मिलती हैं कि इनमें अविश्वास करने वालों से बदला लिया गया है। इन्हीं कारणों से वेतालों, भूतों आविष्ट आत्माओं, अपदेवताओं, पिशाचों, जादूगरों और तांत्रिकों में विश्वास जमता चला गया है। इन सभी भयंकर प्राणियों ने पहले 'दरबारों' में अपना चमत्कार दिखाना आरम्भ किया था और झोपड़ियों में तो अब तक दिखा रहे हैं।

इन अलौकिक कार्यशक्तियों में विश्वास न करने के परिणाम के विषय में हैबर (Heber) ने अपनी स्वाभाविक, मधुर और सुरीली आवाज़ में वर्णन तो किया हैं परन्तु वह इन विषयों में सर्वोत्कृष्ट प्रमाणों के विरुद्ध जो अश्रद्धा उत्पन्न होती है उसके लिए कोई अनुरोध नहीं करता है—

"दुष्ट पिशाचों में विश्वास रखना, वह सच्चा हो या झूठा, मनहूस और बेचैनी पैदा करने वाला होता है। यह एक ऐसा मसला है कि जिस पर नासमझी से सोचा जाय या बहुत गहरा विचार किया जाय तो भी भद्दे परिणाम ही निकलते हैं; इसने कई लोगों को घृणित अपराधों में धकेल दिया है तो बहुतों को असह्य पीड़ा के गड्ढ़े में डाल दिया है; धर्म और जादुई शक्ति का ढोंग ही इसका सामान्य मूल कारण है; और इसके दुष्परिणामों का दर्शन बचपन की भयभीति से लेकर क्रोधोन्माद के असम्बद्ध प्रलापों तक अगणित मानवीय व्यथाओं में किए जा सकते हैं।

यही ग्रन्थकर्ता आगे लिखता है—"परन्तु, यदि गदरा (Gadara)[42] के काल्पनिक भूतों के इतिहास में हम अपने ख्रिस्त (क्राइस्ट) और उसके विक्षुब्ध रोगी के अतिरिक्त और किसी व्यक्ति की आशंका नहीं करते हैं, यदि जिसने शैतान के

42. पैलेस्टाइन का एक प्राचीन नगर, जो गैलिली (Galilee) के समुद्र से दक्षिण-पूर्व में 6 मील पर है। यह ग्रीक नगर था। इसके खण्डहर अब भी उम्मकाल्स (Ummkals) ग्राम के पास पाए जाते हैं। वहाँ एक आदमी के शैतान लग गया था। उससे सब डरते थे। एक बार जब वह भटक रहा था तो क्राइस्ट की उससे भेंट हो गई। जब ईश्वर-पुत्र ने उसको निकल जाने की आज्ञा दी तो उसने प्रार्थना की 'यदि आपकी इजाजत हो तो मैं इन शूकरों के टोले में घुस जाऊं।' क्राइस्ट के हाँ करने पर वह उस टोले में घुस गया। बाद में वे शूकर दौड़कर समुद्र में पड़ गए और मर गए। वह मनुष्य तो शैतान से मुक्ति पा ही गया।

नाम से उत्तर दिया वह पीड़ित की रुग्ण और अव्यवस्थित कल्पना के अतिरिक्त कुछ नही था; और यदि यह ऐसा उन्मत्त प्रलाप हो जिसमें त्रासदायक के लिए मात्र यह इच्छा प्रकट की गई हो कि वह शूकरों में शरण ले, तो हम ऐसा क्यों कर सोच सकते हैं कि हमारा स्वामी (क्राइस्ट), सरल भाव से की गई प्रार्थना से सन्तुष्ट न होकर और अपने वचनपालन के प्रति सन्तोष न मानते हुए भी उन्मादी मनुष्य के असंबद्ध प्रलाप के अनुसार शूकरों के टोले में वैसा रोग फैलाकर, चमत्कारिक ढंग से ढोंग का समर्थन करेगा ?"

विशप हॉर्सली (Bishop Horsley) लिखता है, "इस बौद्धिक युग में हम सम्भ्रम से जिसको भूत का आवेश कहते हैं तो मूल कारणों पर बहुत कम विश्वास करते हैं। यदि हम धर्मशास्त्र के लेखों का आधार लें तो कहेंगे कि यह रोगी की कल्पना और चेतना शक्ति पर नारकीय दूतों की सत्ता का प्रभाव है। मुझे यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि यह बात सच है। मैं उन तार्किक श्रद्धालुओं की आस्था को दुर्बल और उनके तर्क को लंगड़ा मानता हूं जो अतीत की घटनाओं की सम्भावनाओं को, उस समय के इतिहासकारों की साक्षी के होते हुये भी, आधुनिक काल के अनुभवों से मापते हैं। मेरे विचारों का झुकाव तो इस बात पर है कि मनुष्य के तन और मन पर नारकीय प्रेतों की सत्ता का प्रभाव तभी से बहुत कम हो गया है जब से प्रभु के पुत्र ने अपने महान कार्य को साध लिया है—वह कार्य है, शैतान को अन्तिम रूप से मनुष्य के 'पैरों तले रौंद देना; इससे पहले मनुष्य नरक के चरों की इन्द्रिय-गोचर निर्बाध मत्ता के नीचे दबे हुए थे; अब तो वे उसी दिन से मुक्त हो गये हैं। यह बात हमारे स्वामी के उस महत्वपूर्ण कथन से ज्ञात होती है जो उन्होंने उस समय किया था जब सत्तर मनुष्यों ने आकर कहा 'आपके नाम के प्रताप से हमने शैतान को वश मे कर लिया है।' क्राइस्ट ने कहा, मैंने शैतान को आकाश में बिजली की तरह गिरता हुआ देखा।' हमारे स्वामी ने उसको अपनी सत्ता के आकाश से गिरता हुआ देखा; तब इसमे आश्चर्य की क्या बात है कि जो सत्ता वह खो चुका है उसका प्रभाव अब दृष्टिगोचर नहीं होता ? इन्हीं सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर, इस विषय मे अधिक ऊहापोह किये बिना, मुझे तो इस विश्वास पर श्रद्धा है और आप लोगों को भी श्रद्धा रखने के लिये अनुरोध करूंगा कि 'भूत का आवेश' जिस अर्थ का आरम्भिक क्रिश्चियन काल में सूचन करता था वही वास्तव में सही है। गड़बड़ी किसी भी तरह की हो परन्तु इसके परिणामों के विषय में दो मत नही है—उन्माद अथवा पागलपन का वेग जिसके साथ कभी-कभी एक या अधिक ज्ञानेन्द्रियों की निष्क्रियता भी जुड़ी रहती थी; पागलपन की उग्रतम अवस्था में उन्माद और उत्पात की प्रबलता होती थी।'

एक आधुनिक लेखक[43] का मत है "इस विषय पर इस तरह विचार करने में

43. इस विषय के विशद वर्णन के लिए देखिये Trench on the Miracles नामक पुस्तक में "The Demoniacs in the Country of the Gardenes" अध्याय पढ़ना चाहिए।

एक खामी है जिसको अब भी दूर किया जा सकता है–अर्थात् यदि यह प्रेत-बाधा चित्तभ्रम के विविध रूपों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है तो भी यह कैसे कहा जा सकता है कि अब भूत पूरी तरह अदृश्य हो गए है और दुनियाँ मे है ही नहीं ? इसके न होने का खयाल भी सुबूत का मुहताज है—

"यह बात अवश्य है कि चित्तभ्रम और मूर्च्छावायु रोगों में रोगी की दशा बहुत कुछ भूतग्रस्त के समान ही होती है यद्यपि रोगी और वैद्य के दृष्टिकोण में सामान्यत: अन्तर होता है।"

अब, एक ऐसा उद्धरण दे रहे हैं जिससे इस विषय का बहुत कुछ स्पष्टीकरण हो जाएगा -- "फिर भी, इसमें सन्देह नहीं है कि प्रभु का पुत्र देह धारण करके आ गया है इसलिए नरक की सत्ता बहुत कुछ टूट चुकी है और साथ ही, शैतान के सत्ता-प्रदर्शन पर भी रोक लग गई है। "मैंने शैतान को बिजली की तरह आकाश से गिरता हुआ देखा।" बप्तिस्मा की विधि और धर्मपुस्तक के उपदेशों से उसका कोप और उत्पात घिर गया है और उसका प्रभाव कुण्ठित हो गया है। मूर्तिपूजकों की भूमि में भी अब दशा बदल गई है; मुख्यतः जहाँ शैतान का पीछा नहीं छोड़ा गया है और जहाँ क्राइस्ट के उपदेश के प्रथम प्रवेश के कारण प्रकाश और अन्धकार में संघर्ष के रूप में उसके लिए महा संकट उत्पन्न हो गया है वहाँ हमको आशान्वित होकर देखना चाहिए कि ऐसे भूत-बाधा से-समानता लिए हुए प्रदर्शन अब तो बहुत कम हो गये हैं या नहीं। ल्युथेरन पादरी (Lutheran missionary) रेनिअस (Rehun's) ने हिन्दुस्तान से एक बड़ा रोचक पत्र लिखा है जिसमें उसने अपने अनुभव का ज्यों का त्यों वर्णन किया है कि "स्थानीय क्रिश्चियनों मे से बहुत से लोग प्रकाश के पुत्रों (क्रिश्चियनों) की तरह नहीं रहते हैं फिर भी आसपास में रहने वाले मूर्तिपूजकों के तन और मन पर जैसे शैतान की सत्ता प्रभाव जमा लेती है वैसे इन लोगों पर नही देखी जाती।" एक और चमत्कारपूर्ण उदाहरण देकर प्रत्यक्षद्रष्टा के रूप में वह लिखता है कि "अन्धकार के राज्य में जब क्राइस्ट के नाम पर आक्रमण होता है तो सभी प्रकार का शैतानी प्रतिरोध भीषण रूप में सक्रिय हो जाता है और जो मनुष्य शैतान की इच्छा के प्रत्यक्ष साधन बन जाते हैं उनके माध्यम से सत्य को भंग करने का प्रयत्न किया जाता है।"

एक और विद्वान[44] ने लिखा है "यह प्रेत-बाधा केवल मूर्तिपूजक धर्मानुयायियों में ही नही होती। मैं बहुत से ऐसे नव-दीक्षित क्रिश्चियनों और देशी प्राचीन क्रिश्चियनों से मिला हूँ जिनमें भूत-बाधा के वही सब साधारण लक्षण वर्तमान हैं जिनको शानार (Shanar) लोग मानते हैं। मेरा खयाल है कि तनेवली के बहुत से पादरियों को भी इसका ज्ञान है। जिसके भूत लग जाता है उसके सगे–सम्बन्धी

---

44. The Rev. R. Caldwell in his "Sketch of the Tinn velly Shanars."

सामान्यत; भूत निकालना अपने हाथ की बात नहीं समझते हैं। इसलिए कई बार विलायती तरीका आजमाने के लिए वे पादरियों को बुलाते हैं और जहां-जहां वे लोग गए हैं तो बुलाने वालों को और स्वयं उनको सन्तोष ही हुआ है। कुछ भूत तो नैतिक प्रभाव डालने या ऐसे ही अन्य उपायों से धीरे-धीरे निकल जाते हैं परन्तु बहुत से मामलों मे तुरन्त चमत्कारिक उपाय उल्टी करा देने वाला अर्क पिला देने का ही होता है।

"मै यह कभी नहीं कहता है कि मूर्तिपूजकों के देश में वास्तविक भूत-बाधा होती ही नही है। जहां शैतान की हुकूमत बेरोक-टोक चलती है और जहां भूत की सत्ता और निरन्तर बाधा में विश्वास जड़ पकड़ गया है वहां यह सोचना स्वाभाविक लगता है कि इस विश्वास के मूल में कुछ न कुछ बात तो होनी ही चाहिए। लौकिक भ्रमों में भी कोई न कोई तथ्य रहता ही है। इस विषय के साक्ष्य ग्रहण करने को मेरा मन खुला हुआ है; और जब प्रत्येक स्थानीय व्यक्ति कहता है कि उसको यह घटना किसी आंखो देखने वाले ने बताई है तो मैं स्वयं भी कभी ऐसी बात को किसी दिन आंखों देखने की आशा करता हूं। परन्तु, मुझे अभी तक किसी ऐसे स्थान पर उपस्थित होने का अवसर नहीं मिला है जहां प्रेत या पितरों के लक्षण प्रकट हुए हों यद्यपि बारह वर्ष बीत गए और इस समय का अधिकांश मैंने भूत-भक्तो की जमात में रहते हुए ही बिताया है। एक मात्र संदिग्ध मामले के अपवाद को छोडकर जहां तक मेरे सुनने मे आया है सभी अंग्रेज और अमरीकन पादरियों का भी ऐसा ही अनुभव है। हमारे जर्मन-बन्धु इस बात में अधिक भाग्यशाली रहे जान पड़ते हैं।"

हम यहां इतना और जोड़ देते हैं कि मिस्टर काल्डवैल और उनके मित्रों ने भी बहुत ज्यादा साक्षी प्राप्त करने की इच्छा की है।



जिन आत्माओं को ऊर्ध्व लोकों में प्रवेश पाने का स्पष्ट अधिकार प्राप्त नहीं होता उन्हें मौत की अंधेरी घाटी पार करके यमराज के न्यायासन के सम्मुख

प्रेत की गति, कर्मानुसार स्थान प्राप्ति, यमलोक, यमयातना, नरक आदि विविध विषयों का वर्णन है।

नारदपुराण में जो विषय सूची दी हुई है उसके अनुसार गरुड़पुराण में सूर्य-पूजन, श्राद्धपूजा, नवव्यूहार्चन, विष्णुपंजर, विष्णुपूजा, शिवार्चा, गणपूजा, गोपाल-पूजा, पंचतत्वार्चा, चक्रार्चा, सन्ध्योपास्ति, मोहेश्वरीपूजा आदि के अतिरिक्त वास्तुमान, प्रासादलक्षण और सर्वदेवप्रतिष्ठादि विषय भी वर्णित हैं। साथ ही रामायण, महाभारत और हरिवंश का सार इसमें समुद्धृत है। धर्मशास्त्रीय सभी विषयों का पौराणिक रीति से इसमें संकलन हुआ है। संक्षेप में, अग्निपुराण के समान गरुड़पुराण भी समस्त लोकोपयोगी विद्याओं का आकर माना जाता है। इसमें द्रव्यों के गुण, प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेदनिदान, रोगों का नाश करने वाले कवचों का भी उपादेय वर्णन है। योगशास्त्र, वेदान्त, सांख्य सिद्धान्त, ब्रह्मज्ञान और गीता-सारादि गूढ़ विषयों का ऊहापोह भी इसमे उपलब्ध है।

गरुड़पुराण के 146वें अध्याय से लेकर 172वें अध्याय तक विविध रोगों और चिकित्सा सम्बन्धी विवरण हैं। यह सब सामग्री वाग्भट कृत अष्टांगहृदय के इतनी समान है कि सहज ही में यह समझा जा सकता है कि यह उसी में से संकलित है। इतना अवश्य है कि अष्टांगहृदय के 3, 4 और 5वें अध्याय इस पुराण में दो-दो परिच्छेदों में बांट दिए गए हैं।

इसी पुराण के 108 से 115 अध्याय सामान्य एवं विशिष्ट राजनीति से सम्बद्ध हैं, जो कहीं-कहीं नीतिसार या बृहस्पतिसंहिता के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह सामग्री अष्टांग हृदय और चाणक्य राजनीति शास्त्र से समता लिए हुए है। अष्टांगहृदय और चाणक्य राजनीतिशास्त्र के तिब्बती अनुवाद उपलब्ध हुए हैं जो 10वीं शताब्दी के हैं। अतः इस पुराण का रचनाकाल 10वीं से पहले नवीं शताब्दी में विद्वानों ने माना है। यह पुराण कई स्थलों पर तार्क्ष्यपुराण के नाम से भी अभिहित हुआ है। इसका रचना स्थान मिथिला बताया जाता है।+

....

+. शौनक आदि ऋषिगण नैमिषारण्य में यज्ञ के लिए एकत्रित हुए थे। यज्ञ समाप्त होने पर ऋषियों ने पौराणिक सूत से पूछा कि 'मृत्यु के अनन्तर जीव की क्या गति होती है,' इस विषय में तरह-तरह की बातें कही जाती हैं, इसमें सत्य क्या है, यह हमें समझाइये। तब गरुड़ और गरुड़ासन श्री कृष्ण के संवाद रूप में सूतजी ने यह पुराण सुनाया था।

—(देखिए डा. हाजरा कृत पुराण (चतुर्थ खण्ड) पृ. 354–355.

उपस्थित होना पड़ता है। अपने-अपने सुकृत अथवा दुष्कृत के अनुसार उनको मार्ग में सुख अथवा नाना प्रकार के दुख प्राप्त होते हैं। पुराणों की रचना करने वालों का यह अभिमत जान पड़ता है कि मानव पर सदाशा की अपेक्षा भय का प्रभाव जल्दी और आसानी से पड़ता है इसलिए उन्होंने मरण के उपरान्त प्राप्त होने वाले कई प्रकार के भयों का ही वर्णन अधिक किया है।

प्रेतों की गति के विषय में संक्षिप्त-सा विवरण इस प्रकार है जो गुजराती भाषान्तर में दिया हुआ है—

'कुछ लोगों का अभिप्राय है कि जैसे खड़-मांकड़ी (तृण-जलौका) अपने अगले पैर जमा लेने के बाद पिछले पैर उठाती है उसी प्रकार यह जीव भी एक खोल (शरीर) को छोड़ कर तुरन्त ही दूसरे में प्रवेश करता है। दूसरे लोगों का मत है कि मृत्यु के बाद जो पिण्ड दिए जाते हैं उनसे नवीन देह का निर्माण होता है और उसी में जीव को प्रविष्ट होना पड़ता है तथा उसी के द्वारा कर्मजन्य नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं।

मृत्यु का समय निकट आने पर प्राणी को दैवी दृष्टि से यमदूत प्रत्यक्ष दिखाई देने लगते हैं और मानों यह लोक और परलोक दोनों उसको दृष्टिगोचर हो रहे हैं, ऐसा आभास होने लगता है। ऐसी आश्चर्यजनक दशा होने पर उससे कुछ भी बोलते नहीं बनता। यमदूतों के उपस्थित होते ही उसका इन्द्रियसंघात विकल हो जाता है, चैतन्य शिथिल हो जाता है, प्राण अपने स्थान से खिसकने लगते हैं, श्वास भी स्थान छोड़कर चलायमान होता है, एक-एक क्षण कल्प के समान बीतने लगता है, सौ-सौ बिच्छुओं के डँसने जैसी पीड़ा होती है, पापी के प्राण अधोद्वार से निकल जाते हैं। नग्न, भयंकर दिखने वाले, क्रोधयुक्त दृष्टि वाले, यमपाश तथा दण्ड धारण किये हुए, दांतों को कड़कड़ाते हुए, ऊर्ध्वकेश वाले, कौए के समान काले, वक्रतुण्ड एवं बड़े-बड़े नखायुधधारी यमदूतों को प्रत्यक्ष देखकर उसके मन में अत्यन्त त्रास उत्पन्न हो जाता है। अंगुष्ठ-प्रमाण के जीव को शरीर के बाहर निकलते ही यमदूत पकड़ लेते हैं; वह जीव अपने देह की ओर देखता रहता है। फिर यातना-देह में प्रविष्ट उस जीव के गले में पाश बांध कर नरक का भय दिखाते हुए तथा तर्जना करते हुए यम के दीर्घ मार्ग पर यमदूत उसको उसी प्रकार ले जाते हैं जैसे राजा के नौकर किसी अपराधी को ले जाते हैं। दो या तीन मुहूर्त में वह यम के सामने पहुँचता है; फिर आकाशमार्ग से उसको उसी स्थान पर ले आते है जहाँ उसका शव पड़ा होता है; वह अपने शरीर में प्रविष्ट होने की इच्छा करता है परन्तु यमदूत ऐसा नहीं करने देते इसलिए वह रुदन करता है।

मरणासन्न दशा में पुत्र द्वारा दिए हुए अष्ट महादान तथा मरणोपरान्त दिए हुए पिण्डों का भक्षण करने पर भी उसकी तृप्ति नहीं होती। मरने के बाद जिसको

मृत्यु के तेरहवें दिन यमदूत प्रेत को यमपुर के मार्ग पर धकेलते हैं। मार्ग में वे यमदूत तरह-तरह की धमकियाँ दे कर पातकी जीवों को त्रस्त करते हैं। वे कहते हैं 'दुष्टात्मा, जल्दी-जल्दी चलो, हम तुम्हें यमद्वार पर ले चलेंगे और कुम्भीपाक अथवा अन्य नरक में डालेंगे।' उस भयंकर मार्ग में विविध धमकियों से भयभीत हुआ वह प्रेत 'हाय हाय' करता हुआ अपने सगे-सम्बन्धियों के विलाप को कान लगाकर सुनता है; यह विलाप की आवाज़ ही उसका अन्तिम पार्थिव बन्धन होता है जो आगे बढ़ते-बढ़ते सुनाई देना बन्द हो जाती है।

पिण्डदान नहीं मिलता वह प्रेतयोनि को प्राप्त होकर अत्यन्त दुःख पाता हुआ निर्जन अरण्य में कल्प-पर्यन्त भटकता रहता है। फल-भोग के बिना पापकर्मों का क्षय नहीं होता और यम-यातना भोगे बिना उसको मनुष्य देह की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए दस दिन तक मृतक के पुत्र को पिण्डदान करना चाहिए। इन पिण्डों में से प्रत्येक के चार-चार विभाग किए जाते हैं जिनमें से दो भाग देह-निर्माण के लिए होते हैं, तीसरा यमदूतों को मिलता है और चतुर्थ भाग उसको खाने को मिलता है। इस प्रकार नौ दिनों तक पिण्ड-प्राप्ति के उपरान्त दसवें दिन उन पिण्डों में से एक हाथ जितना बड़ा देह बन जाता है जिससे वह मार्गगमन के योग्य होता है और अपने अशुभ कर्मों का फल भोगता है।

प्रथम दिवस के पिण्ड से मस्तक बनता है।
दूसरे दिन के पिण्ड से ग्रीवा और स्कंध का निर्माण होता है।
तीसरे दिन के पिण्ड से हृदय बनता है।
चौथे दिन के पिण्ड से पृष्ठभाग निर्मित होता है।
पाँचवें दिन के पिण्ड से नाभि बनती है।
छठे दिन पेडू और गुह्येन्द्रियों का निर्माण होता है।

सातवें दिन दोनों पार्श्व, आठवें दिन तथा नवें दिन जंघाओं और पैरों की बनावट पूरी होती है।

इस प्रकार देह-निर्माण के बाद दसवें दिन उसको भूख और प्यास सताने लगती है; ग्यारहवें और बारहवें दिन दिए हुए पिण्डों को वह खाता है।

तेरहवें के बाद वह यम-मार्ग में जाने लगता है। यमपुरी 86 हज़ार योजन दूर है। प्रतिदिन 2000 योजन के लगभग चलने पर 47 दिन में वह यमपुरी में पहुँचता है। मार्ग में 16 पुर आते हैं जिनमें सौम्यपुर अथवा याम्यपुर पहले आता है। वहाँ वह प्रस्थान करने के बाद 18वें दिन पहुँचता है। मासिक श्राद्ध करके दिया हुआ पिण्ड उसको वहाँ पर ही प्राप्त होता है। यहीं से अपने किए हुए दुष्कर्मों को याद कर करके वह रुदन करता है और 'हाय-हाय' करके रोने लगता है।

पृथ्वी के नीचे दक्षिण की ओर छियासी हज़ार योजन[3] की दूरी पर यमपुरी है। दुष्ट आत्माओं के मार्ग में काँटे बिछे होते हैं जिनसे उनके पैर छिद जाते हैं या उनको उस मार्ग में तपे हुए ताँबे के समान तप्त भूमि पर चलना पड़ता है। ऐसे दुःखदायी रास्ते में न कोई वृक्ष होता है कि जिसकी छाया में थका हुआ यात्री क्षण भर विश्राम ले सके, न रात्रि के गहन अन्धकार में कोई मार्गदर्शक दयालु हाथ ही दिखाई देता है; उसी मार्ग पर प्रेत को निरन्तर चलाया जाता है। वह पुकारता है 'हाय हाय ! मेरे पुत्र ! मैंने ब्राह्मणों को दान नहीं दिया।' यमदूत उसको तरह-तरह की यातना देते हैं और उसी तरह घसीटते हैं जैसे कोई निर्दयी स्वामी बन्दर के गले में रस्सी डाल कर घसीटता हुआ ले चलता है। तब वह मन ही मन में रुदन करता है "मैंने ब्राह्मणों को दान नहीं दिया; मैंने हवन यज्ञ नहीं किया; मैंने कोई तप नहीं किया; देवताओं का पूजन नहीं किया; मुक्ति-दायिनी गंगा नदी में स्नान नहीं किया; अब, हे देह ! अपने कर्मों का फल भोग !" वह फिर कहता है "मैंने किसी ऐसे स्थान पर जलाशय का निर्माण नहीं कराया जहाँ मनुष्यों और पशु-पक्षियों को जल की आवश्यकता थी, पशुओं के लिए गोचर भूमि का प्रबन्ध नहीं किया, नित्य-दान भी नहीं किया, न कभी गोदान किया, किसी को वेद अथवा शास्त्र का पुस्तक अर्पण नहीं किया; मेरे सत्कर्म भी मेरे साथ नहीं रहे, निःशेष हो गए।[4]"

यमयात्रा के अट्ठारहवें दिन प्रेत उग्रपुर[5] पहुँचता है जो यममार्ग के सोलह पुरों में प्रथम है। इसमें प्रेत ही प्रेत बसते हैं। वहाँ पुष्पभद्रा नाम की नदी और

---

3. एक योजन चार कोस के बराबर माना जाता है—'योजनं क्रोशचतुष्टयम्'—अमरकोष टीका अमरविवेकाख्या। पृ. 369
4. मूल श्लोक इस प्रकार है—

जलाशयो नैव कृतो मया तदा
मनुष्यतृप्त्यै पशुपक्षितृप्तये।
गोतृप्तिहेतो न च गोचरः कृतः
शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम् ॥
न नित्यदानं न गवाह्निकं+ कृतं
पुस्तं न दत्तं न हि वेदशास्त्रयोः।
पुराणदृष्टो न हि सेवितोऽध्वा
शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम् ॥

5. गुजराती अनुवाद में सौम्यपुर नाम लिखा है। मूल में Oograpur है।

\+ एक गाय एक दिन में जितना खा सके उतनी सामग्री का दान गवाह्निक कहलाता है।

एक विशाल वटवृक्ष है[6] जिसके नीचे विश्राम लेने के लिए यम-किंकर एक दिन ठहरते हैं। यहाँ पर सम्बन्धियों द्वारा श्राद्ध में दी हुई वस्तुएं प्रेत को प्राप्त होती हैं; जो मन्दभागी होते हैं वे अकेले बैठकर रुदन करते हैं और इस यात्रा के लिए पहले से दान-पुण्य न करने का पश्चात्ताप करते हैं—यह ऐसा प्रवास है कि जिसमें न कहीं कुछ मिलता है, न कोई देता है।

एक पखवाड़े बाद सौरिपुर आता है, जहाँ जंगम राजा राज्य करता है। वह यम के समान भयंकर है।[7] इस स्थान पर कम्पमान प्रेत दूसरा विश्राम प्राप्त करता है और उस दिन उसके कुटुम्बियों द्वारा सम्पन्न श्राद्ध की वस्तुएं उसे प्राप्त होती हैं। यहाँ से वरेन्द्र,[8] गन्धर्व,[9] शैलागम,[10] क्रौंच[11] और क्रूरपुर होता हुआ वह प्रेत

---

6. इस वटवृक्ष का नाम **प्रियदर्शन वट** है। यहाँ पर प्रेत अपने सगे-सम्बन्धियों के लिए सोच करता है। यमदूत कहते हैं 'मूर्ख ! उनमें से यहाँ कोई नहीं है। अपने कर्मों का फल भोग, आगे चल।'

7. त्रिपक्ष श्राद्ध (डेढ़ महीने के हन्तकार) का पिण्ड प्रेत को सौरिपुर में प्राप्त होता है। यहाँ के जंगमराजा को **गरुड़पुराण** में कामरूपधृक् लिखा है अर्थात् वह इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ है। **सारोद्धार** में उसे कालरूपधृक् अर्थात् यम का सा स्वरूप वाला कहा गया है।

8. गुजराती अनुवाद में इसको नगेन्द्रभवन लिखा है। यहाँ दूसरे मास का पिण्ड प्राप्त होता है।

9. यह नगर देखने में समीप जान पड़ता है परन्तु पास पहुंचने पर अदृश्य हो जाता है। इसीलिये इसको गन्धर्वनगर कहा गया है। यहाँ तृतीय मास के श्राद्ध का पिण्ड प्राप्त होता है।

10. यहाँ पत्थरों की वर्षा होती है इसीलिए यह शैल पत्थर + आगम–आगमन कहलाता है। यहाँ चतुर्थ मास का पिण्ड प्राप्त होता है। यहाँ पर प्रेत इस प्रकार पश्चात्ताप करता है—

न ज्ञानमार्गो न च योगमार्गो
न कर्ममार्गो न च भक्तिमार्गः।
न साधुसंगात् किमिति श्रुतं मया
शरीर ! हे निस्तर यत् त्वया कृतम् ॥

अर्थात जगत् में रहते हुये ज्ञानमार्ग, योगमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग में से किसी को भी ग्रहण नहीं किया, न कभी साधुओं की संगति में बैठकर ही सुना कि धर्ममार्ग क्या है। हे शरीर ! अब जैसा किया है वैसा भोग कर !

11. **गरुड़पुराण** में लिखा है कि प्रेत पाँचवें मास में क्रूरपुर और साढ़े पांच मास में क्रौंचपुर पहुँचता है। परन्तु **सारोद्धार** में लिखा है कि पांचवें महीने में

विचित्र नगर[12] में पहुँचता है। उसको रात दिन एक घने जंगल में हो कर चलना पड़ता है जहां कभी पत्थरों की वर्षा होती है और कभी अदृश्य हाथों से मार पड़ती है। विचित्रनगर में यम का भाई विचित्रराज राज्य करता है। विचित्रनगर छोड़ने पर प्रेत के प्रवास का सबसे संकटमय भाग प्रारम्भ होता है।

अब वह वैतरणी नदी के मार्ग पर चढ़ता है और असिपत्र वन का त्रास भी सहन करता है। वहां वृक्षों के पत्ते तलवार के समान पैने होते हैं और वे निरन्तर झड़-झड़ कर यात्री पर पड़ते रहते हैं।

श्रीकृष्ण कहते हैं, 'वैतरणी नदी का वर्णन बहुत भयंकर है। किनारे पर आते ही इसकी सौ योजन की चौड़ाई देख कर प्रेत भयभीत हो जाता है और चिल्लाने लगता है। इस नदी की रेती मनुष्यों के मांस की होती है; इसमें मनुष्यों का रक्त और पीब बहता है जो ज़ख्मों से इस तरह निकला हुआ होता है जैसे आय

क्रौंचपुर और साढ़े पांचवें में क्रूरपुर पहुंचता है। इसीलिये साढ़े पांच महीने के श्राद्ध पर छमासी श्राद्ध किया जाता है।

यहां पर प्रेत रुदन करता है—

हा मातर्हा पितर्भ्रातः सुता हा ! हा ! मम स्त्रियः।
युष्माभिर्नोपदिष्टोऽहं अवस्थां प्राप्त ईदृशीम् ॥

'हे माता, पिता, भाइयो, पुत्रो, स्त्रियो ! तुमने मुझे कभी शिक्षा नहीं दी, इसीलिए मैं इस अवस्था को प्राप्त हुआ हूं।'

12. छठे महीने प्रेत विचित्रनगर अथवा चित्रभुवन में आता है। उस समय दिया हुआ श्राद्धपिण्ड उसे यहां प्राप्त होता है; जलघट दान करने पर पानी भी पीने को मिल जाता है। भाले की नोंक से पीड़ित होकर वह विलाप करता है—

माता भ्राता पिता पुत्रः को पि मे वर्तते न वा।
यो मामुद्धरेत् पापं पतन्तं दुःखसागरे ॥

'माता, भाई, पिता, पुत्र, कोई भी मेरा नहीं है जो इस दुःख के समुद्र में पड़े हुए पापी का उद्धार करे।

इस प्रकार विलाप करता हुआ वह वैतरणी नदी के आगे आ पहुँचता है; वहां कैवर्त्त (नाविक) आकर कहते हैं 'तूने गोदान किया हो तो उसके पुण्य से वैतरणी नदी के पार उतर सकता है, इसीलिए यह वाहन लाए हैं। यह वचन सुन कर वह प्रेत 'हे देव ! मैंने दान नहीं किया' इस तरह रुदन करता है और नदी में गोते खाता है। मछलियों के कांटों से, मच्छीमारों की खींचतान से और ऊपर निकले हुए मुँह में कांटे डालकर यमदूतों द्वारा खींचे जाने से दुख पाता हुआ वह प्रेत नदी के पार जाता है।

पर रक्खा हुआ मक्खन पिघलता रहता है। नदी के पेटे में कहीं गहरे खड्डे आते हैं तो कहीं चट्टानें आती हैं; यह अगाध और दुस्तर दिखाई देती है; जब पापी इसमें बैठता है तो इसकी तरलता में बाढ़ आ जाती है; असंख्य कीड़े और मकोड़े तथा विकराल मगर और घोर पक्षी उसके पानी को आक्रान्त रखते हैं। आकाश भट्टी की तरह जलता है और अमुरक्षित पापी के लिए उस चिलचिलाती दाहिका आतप से बचने का कोई चारा नहीं रहता केवल कभी-कभी ऊपर उड़ते हुए लोहचंचु गिद्धों के पंखों की ज़रा-सी छाया ही उस पर पड़ कर रह जाती है। 'हे गरुड़ !' इतना कहकर दृश्य की भयंकरता का अनुमान करते हुए स्वयं श्रीकृष्ण भी कांप उठते हैं, 'हे गरुड़ ! उस समय भयंकर वेला में प्रलयकाल के बारहों सूर्य आग बरसाने लगते है।'

ऐसे महाभयंकर दृश्यों में कुछ पापियों को तो सदा के लिये ही छोड़ दिया जाता है विशेषतः उनको जिन्होंने वैतरणी तरने के लिये कोई साधन नहीं जुटाया होता है; जिनके पाप थोड़े होते हैं उनको अपने-अपने वाहनों मे बैठा कर पार उतारने को एक हजार कैवर्त्त (मल्लाह) रहते हैं।

जो प्रेत वैतरणी की यातना से बच कर निकल जाते हैं उनको बह्लापद,[13] दुःखद,[14] नानाक्रन्द, सुतप्तभवन, शीताढ्य, रौद्र, पयोवर्षण और बहुभीतिपुर मे वास करना पड़ता है। इस अन्तिम पुर मे वह पूरे एक वर्ष की यात्रा के बाद पहुँचता

13. सातवें मास मे प्रेत बह्लापदपुर मे पिण्ड आदि का भक्षण करता है। वहाँ परिघ के प्रहार से पीडित होकर कहता है:—
"मैंने कभी दान नहीं किया, होम हवन नहीं किया, तप नहीं किया, तीर्थ-स्थान मे जाकर स्नान नहीं किया तथा कोई भी ऐसा कर्म नहीं किया जिससे हित-साधन हो; अतः हे मूढ जीव ! जैसे कर्म किए हैं वैसे ही फल भोग !"

14. आकाशमार्ग में चलते हुए प्रेत को आठवे मास में दुःखदपुर पहुँच कर अष्टम मासिक श्राद्ध का पिण्ड प्राप्त होता है। वहाँ से चल कर नवें मास में वह नानाक्रन्द नामक पुर मे पहुँचता है। वहां पर यमदूत उसे मुशलों से मारते हैं। उन यमदूतों को देख कर नाना प्रकार से आक्रन्द करता हुआ प्रेत शून्य हो जाता है, कभी दुःख से रुदन करता है। सुतप्रभवन में आने पर दसवें मास का श्राद्ध पिण्ड मिलता है। यहाँ पर यमदूत हल से मारते हैं। ग्यारहवें मास में वह रौद्रपुर पहुँचता है; तब उस पर बाँसों की मार पड़ती है। वह कहता है 'यह पीठ नरम-नरम पथारी पर टिकती थी, वह सुख कहाँ और यह बांसों की मार कहाँ ? साढ़े ग्यारह महीने होने पर पयोवर्षण नगर आता है; वहाँ पर यमदूत कुठार से मारते हैं। तब वह कहता है 'मेरे सेवक मस्तक में सुगन्धित तेल मलते थे, वह सुख कहाँ और यह यमकिंकरों के कुठारप्रहार की

है। यहाँ सोलह श्राद्धों के फलस्वरूप उसे एक हाथ के परिमाण का[15] शरीर प्राप्त होता है और जो शरीर यात्रा में साथ रहा था वह उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे शस्त्र उठाने-पर परशुराम में से देवांश निकल कर राम में संक्रान्त हो गया था।'

उस समय जिनका सपिण्डी श्राद्ध हो जाता है उनको मुक्ति प्राप्त हो जाती है। जो जीव बहुभीतिपुर में रहते हैं उनको पृथ्वी पर किए हुए पुण्यदान के परिणामानुसार कम दुःख भोगने पड़ते हैं।

एक हज़ार योजन की एक मंज़िल और तय करने पर जीव को विस्तीर्ण यमनगर सामने दिखाई देता है। इसके द्वार पर ही लोहे की दीवारों और बुर्जों से घिरा हुआ चित्रगुप्त का महल है। यमराज का यह मुख्य सेवक एक रत्नजटित भव्य सिंहासन पर बैठता है—वह, अरब के फरिश्ते अज़रायल (Azrael) की तरह, मनुष्यों के लिए निर्धारित जीवनकाल की घड़ियाँ गिनता रहता है और उनके पुण्य-कार्यों एवं पापकर्मों का लेखाजोखा टीपता रहता है। अपने प्रधान के आजूबाजू मनुष्यों को दुःख देने वाली पीड़ाओं के प्रवर्तक रहते हैं—जैसे, ज्वर, लूता, विस्फोटक, विविध ज्वर, कोढ़, शीतला और अन्य तरह-तरह के रोग जो मनुष्य को आक्रान्त

व्यथा कहाँ? यहाँ पर प्रेत को सहन न हो सके ऐसी वर्षा होती है। ऊनाब्दिक श्राद्ध का पिण्ड भी यहाँ ही प्राप्त होता है। वर्ष समाप्त होने पर वह प्रेत शीताढ्य नगर में पहुँचता है। यहाँ पर छुरी से उसकी जिह्वा काट ली जाती है। इसी स्थान पर सौगुनी मार पड़ती है। तब वह प्रेत दसों दिशाओं में देख कर कहता है "हाय, हाय; मेरा कोई भी ऐसा बन्धु नहीं है जो मेरे दुःख को टाल सके।' यमदूत कहते हैं 'यदि पुण्य किये होते तो दुःख टलते।' वार्षिक श्राद्ध का पिण्ड भक्षण करने पर उसे कुछ शान्ति मिलती है।

15. एक हाथ परिमाण का शरीर तो उसको पहले ही प्राप्त हुआ था; अब तो, यह यातना शरीर मिलता है जो उसके मूल देह के बराबर ही होता है। इसी में सत्रह तत्व का अभिमानी अंगुष्ठ-मात्र जीव प्रवेश करता है। खेचर के समान इसकी ऊर्ध्वगति होती है। इस शरीर को प्राप्त करके ही वह यमदूतों के साथ यमपुरी में जाता है।

यमपुरी के चार दरवाजे हैं; यह उनमें से दक्षिण द्वार का वर्णन है।

अंग्रेजी मूल में कुछ उलट-पुलट लिखा है अतः यहाँ पर क्रम से लिख दिया गया है।

करते रहते हैं-यथा प्राचीन काल से ही वे पदच्युत एरिब्रस (Erebus)[16] के राज्य में रहते आए हैं।

'इन उमराओं ने, ओर्सि (Orci)[17] के संकटमय मार्ग में खेद उत्पन्न हो, ऐसी पीडायें प्रतिहिंसा के कारण उत्पन्न कर दी हैं। यहाँ नजलें खेदयुक्त वृद्धावस्था, त्रास और दुष्कर्मों की जनयित्री भूख, हीनता और दरिद्रता आदि का थाना रहता है।'

ये सब चित्रगुप्त के ही अनुचर हैं और उसकी सूचनानुसार जीव को नरक का मार्ग दिखाते हैं।

यमपुरी में गन्धर्वों और अप्सराओं की वस्तियाँ भी हैं। ब्रह्मा-पुत्र तेरह श्रवण इस पुरी के द्वारपाल हैं। वे बहुत दूर से ही सुन व देख सकते हैं तथा स्वर्ग, मृत्यु एवं पाताल लोकों में हैकेट (Hecate)[18] के समान स्वच्छन्द विचर सकते हैं; दृष्टि और श्रवणशक्ति के प्रसार में उनके लिए दूरी से कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती। ये द्वारपाल ही चित्रगुप्त को मर्त्यों के शुभाशुभ कर्मों की जानकारी देते रहते हैं। उनकी पत्नियां भी वैसी ही शक्तिशालिनी होती हैं। पुराणों के रचयिताओं के मन में भी यह बात रही है कि कोई कितना भी ऊँचा क्यों न बढ जाय, प्रलोभनों के वश में आ ही जाता है– इसलिए दान दक्षिणा देने से ये श्रवण भी प्रसन्न किए जा सकते हैं।[19] मुख्यतः इनमें से 'धर्मध्वज' नामक श्रवण का वर्णन है कि वह सप्त-धान्य के दान से प्रसन्न होकर यमराज के सामने जीवों के पक्ष मे बोलता है।

---

16. ग्रीक देवशास्त्र में लिखा है कि एरिवस अधोलोकों का देवता है। वह रात्रि का पति माना जाता है जिससे दिवस और प्रकाश की उत्पत्ति हुई है।
17. क्या इससे 'अर्चिर्मार्ग' की कल्पना करें ?
18. रात्रि, पशूत्पत्ति और अधोलोकों की अधिष्ठात्री देवता। पहले इसका एक ही रूप था; बाद में, चन्द्रमा की तीनों अवस्थाओं का सूचन करने वाले इसके तीन रूप हो गए। एथेन्स (Athens) के भवनों में स्तम्भों पर प्रायः इसकी आकृतियाँ कोरी जाती थीं।
19. बहुभीतिपुर से चौवालीस योजन पर धर्मराजपुर है; वहाँ पर पापियों का अनेक प्रकार का हाहाकार होता रहता है। उनको देख कर नवागन्तुक पापी जीव भी हाहाकार करता है जिसको सुनकर यमपुरी के कर्मचारी धर्म-ध्वज नामक प्रतीहार को उसकी सूचना देते हैं। वह चित्रगुप्त के आगे उस जीव की करणी का वृत्तान्त सुनाता है और चित्रगुप्त धर्मराज को निवेदन करता है। धर्मराज स्वयं सब के विषय में जानते हैं परन्तु रीति का पालन करने के लिए वे चित्रगुप्त को पूछते हैं और वह श्रवण को पूछता है। यदि आने वाला जीव स्त्री का होता है तो श्रवणों की स्त्रियों, श्रवणियों से

यमराज का प्रासाद पचास योजन लम्बा और बीस योजन ऊंचा है। यह रत्नों से मँढ़ा हुआ है; चौगरदम (निरन्तर) घण्टानाद होता रहता है; दरवाजों पर पुष्पहार लटकते रहते हैं और बुर्जों व प्राकारों पर ध्वजाएँ फहराती रहती हैं। भीतर एक विशाल सिंहासन पर बैठा हुआ पाताल-पति अपने न्यायासन के सामने पंक्तिबद्ध खड़े जीवों का न्याय करता है; रणवाद्य शंख के घोष के समान उसका स्वर गम्भीर होता है। अच्छे जीवों को वह प्रतापी महाराजा के समान दिखाई पड़ता है परन्तु, दुष्ट जीवों को वह महाविकराल लगता है और वे उसको देखते ही कांपने लगते हैं। सद्गति जीवों का वह अपने सिंहासन से खड़ा होकर सत्कार करता है और उन्हें सीधा स्वर्गलोक में भेज देता है; परन्तु, अवर जीवों पर क्रूर दृष्टि डालता हुआ उन्हें वह अपने दूतों के हवाले कर देता है जो उनको नरक के गर्त एवं अग्निकुण्ड में डालकर तब तक कैद रखते हैं—

'जब तक कि तेज आंच में जलकर जीवनकाल में किए हुए कुत्सित पाप भस्म नहीं हो जाते और निकल नहीं भागते।'

(शेक्सपीयर—हैमलेट, 1,5)

चौरासी लक्ष प्रकार के नरक हैं; इनमें से इक्कीस बहुत घोर और प्रसिद्ध हैं जिनके नाम रौरव, महाभैरव, तामिस्र, अन्धतामिस्र, कुम्भीपाक आदि हैं। इन नरकों को भोगने के लिए जीव को चार जातियों में इक्कीस-इक्कीस लाख योनियों में देह धारण करना पड़ता है[20]—ये जातियाँ अण्डज अर्थात् अण्डे से उत्पन्न होने वाली, उद्भिज अर्थात् वनस्पति के रूप मे उगकर उत्पन्न होने वाली, स्वेदज अर्थात् पसीने से पैदा होने वाली और जरायुज अर्थात् नर और मादा के मिथुन से उत्पन्न होने वाली होती हैं।

जिन जीवों को यमराज ऊर्ध्वलोकों में भेजते हैं उनमें से कुछ तो स्वर्ग अथवा देवलोक में जाने योग्य होते हैं और जिनके पुण्यकर्म थोड़े होते हैं वे अशुद्ध देवों में रहते हैं जिनमें शिवजी के गण यक्ष, भूत,[21] वेताल आदि होते है; लघु धर्मात्मा स्त्रियां यक्षिणी, शाकिनी आदि अशुद्ध देवियां होती है जो दुर्गा की सेविकायें

पूछताछ होती है। तेरहवें दिवस जो श्रवणकर्म या श्रावण (राजस्थान में इसको 'सिरावणी' कहते हैं) की जाती है उससे श्रवण श्रवणियां संतुष्ट होती हैं—परन्तु, यदि यह क्रिया नहीं की जाती है तो वे कुपित होते हैं। (गु. ग्र.)

20. एक-एक नरक में एक-एक जाति की एक-एक लाख योनियां हैं—इस प्रकार इक्कीस नरकों के लिए 84 लाख योनियां हुईं।

21. पहले जिन भूतों का वर्णन किया गया है वे इनसे हल्के होते हैं; उनको और इनको एक ही तरह के नहीं समझना चाहिए।

कहलाती हैं। अशुद्ध देव-देवियां भुवर्लोक[22] में रहती हैं जो ठीक भूलोक से ऊपर है। भुवर्लोक से ऊपर स्वर्गलोक या इन्द्रलोक है जिसका विशेष रूप से वर्णन करना आवश्यक है।

'साहित्य के चमत्कार' (Curiosities of Literature) नामक पुस्तक के लेखक ने राजाओं की कुछ ऐसी पदवियों की सूची दी है जो देखने में उपहासजनक लगती हैं; इनमे कण्डिया के (Kandyan) राजाओं को प्राप्त 'देव पद' का भी

22. देखिये—मनु 2.76; तथा Princes of the power of the air, Rules of the darkness of this world, सेन्ट पाल (St. Paul)† का एफिजियस् (Ephesiaus) के प्रति कथन, 2.2 और 6.12; अन्तिम वाक्य पर मिस्टर वाल्पी (Valpy) ने इस प्रकार लिखा है—

"इजयालों का तथा सामान्य लोगों का यह अभिप्राय था कि 'वायु अथवा स्वर्ग के नीचे के आकाश में दुष्ट पिशाच वसते हैं।" मिस्टर मीड (Mr. Mede) के अवलोकन के अनुसार सेण्ट पाल ने भी इस अभिप्राय को मान्य किया और इसी आधार पर इसको धर्मपुस्तकों में स्थान मिला-जान पड़ता है।"

मिल्टन (Milton) ने भी अपने Paradise Lost की 10वीं पुस्तक में (182, 190) इस विषय का सूचन किया है—

"इस भविष्यवाणी की सच्चाई तब प्रमाणित हुई जब दूसरी ईव (हव्वा) मेरी के पुत्र, जीसस क्राइस्ट ने शैतान को बिजली की तरह आकाश से गिरता हुआ देखा, जो वायुलोक का राजा था। फिर, अपनी कब्र मे से उठ कर उसने शैतान के राज्य और सत्ता को छीन लिया और स्पष्ट रीति से उस पर विजय प्राप्त की तथा स्वर्ग में आरोहण करते हुए उसने शैतान को कैद कर लिया जिसने औरों को वशीभूत कर रखा था और अन्त में वह (शैतान) हमारे पैरों तले कुचल जायगा।"

....

†. सेन्ट पाल का जन्म एशिया माइनर के तारसस (Tarsus) नामक स्थान में हुआ था। पहले वह क्राइस्ट का विरोधी था और उसके अनुयायियों को गिरफ्तार करवाता था; परन्तु दमिश्क (Damascus) जाते समय उसने क्राइस्ट का आभास देखा और वह क्रिश्चियन हो गया। रोम साम्राज्य में क्रिश्चियन मत का प्रसार करने में उसका सब से बड़ा हाथ था। उसने रोम साम्राज्य में विभिन्न जातियों और मतानुयायियों को पत्रात्मक लेख लिखे हैं जो Epistles of St. Paul के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हीं में से Epistle to Ephesiaus के प्रति यहाँ संकेत है। किंवदन्ती है कि सन् 64 ई० में नीरो ने संत पाल को मरवा दिया था।

उल्लेख है जिसका अर्थ उसने 'ईश्वर' किया है। जब मिस्टर डी इज़रायली ने इस प्रयोग में कुछ अटपटापन देखा तब बाद में उन्होंने इसका ठीक-ठीक अर्थ समझा कि यह 'परमात्मा' या 'सृष्टि के स्वामी' के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है अपितु उसकी अपेक्षा कम महत्व के भू अर्थात् पृथ्वी के प्रभु या देव अर्थात् पति के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है।

'देव' शब्द का प्रयोग सदा ही इस उत्कृष्ट अर्थ में नहीं होता। कण्डियन राजाओं के अतिरिक्त अन्य राजाओं के लिए भी उसी प्रकार प्रयुक्त होता हुआ हमारे देखने में आया है, जैसे जूलियस अथवा आगस्टस के लिए दिवस (Divus) का प्रयोग करते रहे हैं; प्रजाप्रिय कुमारपाल जैसे राजाओं को भी यह पद प्राप्त हुआ है; यही नही, यद्यपि कृतघ्न और अत्याचारी उसका उत्तराधिकारी[23] 'अपमृत्यु से मरा था' परन्तु उसको भी यह विरुद सहज ही प्राप्त था; अतः हिन्दुओं के ध्यान में 'देव' का पहला अर्थ तो 'पृथ्वी से ऊपर के किसी लोक में रहने वाला' तथा दूसरा अर्थ 'स्वर्ग-वासी,' ऐसा रहता है।

मोक्ष-प्राप्ति के लिए शिव अथवा विष्णु की स्तुति की जाती है। पुराने जमाने में ये देवता एक दूसरे के विरुद्ध नहीं माने जाते थे। चन्द बारहठ (वरदाई) अपने काव्य (पृथ्वीराज रासो) के आरम्भ में मंगलाचरण करता है—

'कवि ने जिस प्रकार हरि के गुण गाए है उसी प्रकार हर का स्तवन किया है। जो मनुष्य हर और हरि अर्थात् ईश और श्याम को एक दूसरे से भिन्न मानता है वह नरक में जाता है। नारायण की परम ज्योति[24] ऊँची से भी ऊँची है।

महेश्वर (शिव) की निन्दा करने वाला उसे कभी प्राप्त नहीं कर सकता।'+

परन्तु, आजकल लोग इन दोनों देवों की स्तुति साथ-साथ नहीं करते; ऐसी चाल पड़ गई है कि एक देव को पकड़ कर अन्य को उससे छोटा मानते हैं। इस कारण, कोई भी हिन्दू देव शब्द का ईश्वर के अर्थ में एक देवता के अतिरिक्त दूसरे के लिए व्यवहार नहीं करता।

फिर भी, हिन्दू शास्त्रों में तेतीस करोड़ देवी देवताओं का वर्णन है, जो एक इन्द्र की राज्यकालावधि पर्यन्त स्वर्ग में निवास करते है। वे उन देवताओं से बहुत इधर ही रह जाते हैं जो उनसे आगे बढ़कर मोक्षप्राप्ति[25] का उत्तम पद प्राप्त

---

23. अजयपाल।

24. मोक्ष।

\+ मूल पद्य इस प्रकार है—

करि अस्तुति कवि चंद हर, हरि जंपिय निय भाइ।
ईस स्याम जू जू कहै, नूक परंते चाइ॥18॥

25. मोक्षपद स्वर्ग-प्राप्ति से भी उत्तम है।

कर लेते हैं; ये उनसे ईर्ष्या करते हैं[26] और इन्द्र के लिए 'अमरपति' पद का प्रयोग खींचतान करके ही किया जाता है। गीता में कहा है कि "ये अपने पुण्य-कर्मों को लेकर सुरलोक में जाते हैं और देवताओं के सरस स्वर्गीय पदार्थों का भोग करते हैं; जो इस महनीय स्वर्ग का उपभोग करते हैं वे अपने पुण्य क्षीण होने पर पुनः मर्त्य लोक में प्रवेश करते हैं।[27] एक कवि के कथनानुसार वे उन क्षणभंगुर पदार्थों में हैं—

'जिनकी खिलती हुई मग़रूरी जल्दी ही मुरझा जाने वाली और ज्यादा न टिकने वाली है,

थोड़ा सा वक्त ही अपनी विनाशकारी दंताली से उसको तुरन्त साफ़ कर देता है।'

वे निरन्तर स्वर्ग में निवास करने के अधिकारी नहीं होते, न इस मृत्युलोक में पुनः जन्म लेने से ही उन्हें छुटकारा मिलता है और न बार-बार जन्म लेकर चौरासी लाख योनियों का चक्कर भोगने से ही बचते हैं। स्वर्ग में निवास करने की

---

26. देखिए–रासमाला (हिन्दी अनुवाद भा. 1 उत्तरार्द्ध) पृ. 247 पर मुचकुन्द विषयक टिप्पणी।

27. देखिए सर विलियम जोन्स का ग्रन्थ भा. 13; पृ. 295।

(यह संसार अथवा संसरणशील जीव का प्रसिद्ध सिद्धान्त है—अर्थात् पूर्व एवं इस ज़न्म के कर्मों का जब तक पूर्ण रूप से क्षय नहीं हो जाता है तब तक जीव भटकता ही रहता है। इस सिद्धान्त का प्रथम प्रतिपादन उपनिषदों में हुआ है और प्लेटो के कथन से इसका उल्लेखनीय साम्य है (देखिए प्लेटो के रिपब्लिक के अन्त में (Er the Pamphil.jan की कथा)

यहां जो अभिप्राय दिया गया है वह गीता के नवें अध्याय के 20–21 संख्या के श्लोकों का है—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकं अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुपपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते॥

'तीनों वेदों को जानने वाले, सोमपान करने वाले, निष्पाप होकर यज्ञों द्वारा मेरा पूजन करने वाले स्वर्ग में जाने की याचना करते हैं; पुण्यों का फल प्राप्त करके वे इन्द्र के लोक में पहुँचते हैं; वहां स्वर्ग में दिव्य देवभोगों को भोगते हैं। उस विशाल स्वर्गलोक के उपभोग को (पुण्यों के अनुसार) पूरा करके, पुण्य चुक जाने पर, वे (पुनः) मृत्युलोक में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों द्वारा प्रतिपादित धर्म का आश्रय लेकर काम्य कर्म करने वाले आवागमन करते रहते हैं।'

अवधि समाप्त होते ही वे पुनः पृथ्वी पर उतर आते हैं और उनका देवत्व फिर से मरणशील मनुष्य का चोला धारण कर लेता है। इसीलिए जब आकाश से टूटते हुए किसी तारे को देखते हैं तो हिन्दू कहते हैं कि यह कोई देव है जो पूर्वजन्म के पुण्यों को भोग चुकने के बाद पुनः पृथ्वी पर आ रहा है; हाय ! हाय ! अपनी पुण्यस्थिति की क्षीण स्मृति लिए हुए वह इस पृथ्वी पर पुनः जन्म ग्रहण करेगा !

इन्द्र भी किसी निश्चित अवधि तक ही राज्य करता है और फिर किसी ऐसे पुण्यात्मा को स्थान दे देता है जिसको सौ अश्वमेध यज्ञों के फलस्वरूप वह पद प्राप्त करने की अर्हता सुलभ हो गई है। इतना होते हुए भी अपने सत्ताकाल में वह एक प्रौढ राजा के समान होता है; आकाश में प्रकट होने वाला इन्द्र-धनुष उसका कार्मुक होता है, बिजलियों की चमक उसके शस्त्रास्त्रों की चमक होती है और मेघों का गम्भीर गर्जन ही उसकी राज-दुन्दुभि का नाद होता है।

इस जगत में जो वस्तुएँ अतिशय प्रिय होती हैं उन सब को इकट्ठी ही जिस एक स्थान पर प्राप्त की जा सकती हैं उसका नाम परलोक है। मनुष्य की कल्पना इससे आगे दौड नहीं लगा पायी। 'इस जगत् की वस्तुएँ परलोक की समृद्धि का किंचित् मात्र आभास कराने वाली हैं, ऐसा मानने के बदले वे वस्तुतः उनको उस लोक की जैसी ही मानते हैं।'[28]

---

28. देखिये—Sermons, Chiefly expository by Richard. Edmond Tyrwhitt, M. A. Oxford : J. H Parker, 1847. vol. i. pp. 537-540.

कदाचित् इस कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए सब से अच्छा उदाहरण भविष्यकथन विषयक The Desatir नामक ग्रन्थ से लिया जा सकता है जो ईरान के प्राचीन भविष्यवक्ताओं के पवित्र लेखों का संग्रह है। उसी में से नीचे लिखे वाक्य उद्धृत किए गए हैं। यह पुस्तक बनावटी हो सकती है परन्तु इसमें 'बहिश्त' (स्वर्ग) का जो वर्णन किया गया है वह विशुद्ध ईरानी कल्पना है—

"बहिश्त में जो मजे हैं उन्हें भोगने वाला ही जान सकता है। किसी गरीब से गरीब आदमी को अगर यह पूरी-की-पूरी नीचे की दुनियाँ बख्शीश में मिल जाय और उससे जो सुख उसको प्राप्त हो वह तो बहिश्त के हल्के से हल्के सुख के बराबर है। फिर, औरतों की खूबसूरती, दास-दासियाँ, खान-पान, पोशाक, बढ़िया कालीनों और खुशादा बैठकों से जो मज़ा मिलता है उसका तो इस नीचे वाली दुनियाँ में अन्दाज़ा भी नहीं लगाया जा सकता। सर्वश्रेष्ठ मेज़दाम (Mezdam) ने बहिश्त के रहने वालों को ऐसा बदन (शरीर) बख्शा है कि उसको जुदाई (वियोग) नहीं सताती; वह बुढ़ापे से ढीला नहीं पड़ता और उस पर किसी तरह के दुनियावी दुःख य नापाकी का भी असर नहीं पड़ता।'

'लारेंग के नाम पर।'

स्वर्ग के विषय में हिन्दुओं के विचार सामान्य नियमों से विपरीत नहीं हैं; फिर भी, ऐसी बात नहीं है कि इन नियमों की अपूर्णता शास्त्रकारों के ध्यान में न आई हो। वेदान्तसार में मोक्षप्राप्ति के चार प्रकार के साधन बताए गए हैं, उनमें से दूसरा प्रकार 'सभी तरह के इन्द्रियों से प्राप्त होने वाले सुखों और देवों द्वारा उपभोग्य सुखों के लिए भी वाञ्छा न करने की वृत्ति बनाने का है।' स्वर्ग की राजधानी अमरावती में कल्पवृक्ष है, जो वहाँ के निवासियों अथवा नीचे के लोकों में रहने वालों को सभी वांछित वस्तुएं प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करता है; और, मर्त्यलोक के मनुष्य प्राणी जिन शाश्वत आनन्द देने वाले पदार्थों की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते है वे सभी इस लोक के निवासियों के लिए कल्पतरु सुलभ करता है। इसी कारण स्वर्ग के देवता पूज्य माने जाते हैं।

जब तक देवता स्वर्ग में रहते है तब तक उन्हें ऐसा शरीर मिलता है जो सदैव जवान रहता है और किसी प्रकार की पीड़ा उन्हें नही सताती। अमृत उनका भोजन है। कामधेनु से उन्हें वे सभी गव्य (दूध, दही, घृत) पदार्थ प्राप्त होते हैं, जो हिन्दुओं के जीवन में सुख-सामग्री के रूप में अत्यावश्यक है। गन्धर्व स्वर्गीय संगीत से उनका मनोविनोद करते है। प्रेम-प्रीति के आनन्द से भी वे वंचित नहीं हैं। जिस प्रकार अरब निवासियों के बहिश्त मे हूरें, ओदिन का महल[29] और वाल्किरियर परियाँ होती है उसी प्रकार इन्द्र का प्राचीन स्वर्ग भी अपनी अप्सराओं पर गर्व करता है। (युद्ध में) कत्ल हुए वीरों का वरण करने वाली वलहला की कुमारियों के समान अप्सराएँ भी रणक्षेत्र की मारकाट में, वीरगति प्राप्त करने वाले योद्धाओं को स्वर्ग में ले जाने के लिए चक्कर लगाती रहती है। इसी कारण राजपूत सरदारों का उत्साह भी उन मुसलमान सिपाहियों की अपेक्षा कम नही होता जो धर्म की अपेक्षा थोड़े नुकसान के लिए—

'अपना जीवन जोखिम में डाल देते है कि बहिश्त
में उन्हें हूरो का शाश्वत प्यार मिले।'

—(Byron, Siege of Corith, xii)

परन्तु, ऐसी बात नहीं है कि केवल योद्धा[30] को ही मरणोपरान्त देवपद प्राप्त

---

29. इसका महल वलहला में माना गया है; यह देव एकाक्ष है और सभी आहत (घायल) होकर मरने वालों की आत्माएँ इसके पास जाती है।

30. इंकरमान (Inker mann) के रणक्षेत्र में कुछ रूसी सिपाही घायल होकर पड़े थे; एक फ्रांसिसी सैनिकों की टुकड़ी को दयावश उनकी देखभाल के लिए लगाया गया था; उन्होंने जो विवरण दिया है उसीमे से निम्न उद्धरण दिया जाता है—'परदेशी लश्कर का एक पोलैण्ड निवासी मनुष्य वहाँ मौजूद था; उसने उन गरीबों से कुछ प्रश्न पूछे। उन्होंने कहा 'हमारे धर्मगुरुओं और अफ़सरों ने विश्वास दिलाया है कि मूर्तिपूजक शत्रुओं ने पवित्र आटोक्रेट

होता हो। भडोंच (भृगुक्षेत्र) प्रभास, सिद्धपुर अथवा आबू में मरने वाले को भी इन्द्र-लोक की प्राप्ति होती है।[31] परन्तु, यह विधान श्रद्धालुओं के लिए ही है। पातकी मछलीमार तो नर्मदा के निर्मल नीर की ओर व्यर्थ ही निगाह लगाए रहता है। जो ब्राह्मणों को वर्षभर खाने योग्य दान करता है वह माता-पिता और पूर्वजों को स्वर्ग में ले जाता है। जो ब्राह्मणों को कन्या-दान देता है वह अपने पूर्वजों के लिए सुरलोक में निवास प्राप्त करता है; जो वापी, कूप, सरोवर, उद्यान और देवालय का निर्माण कराता है या इनका जीर्णोद्धार कराता है वह अमरपुर को प्राप्त होता है; और, जो ब्राह्मणों को आम्रवृक्ष का या नित्यदान करता है वह दिव्य विमान में बैठ कर स्वर्गलोक में प्रवेश करता है; उस समय चार देवदूत उस पर चँवर डुलाते रहते हैं। जो शिव की कमलपूजा में अपना मस्तक अर्पण करते हैं, किसी पवित्र पर्वत की करी से कूद कर भैरव-झाँप लेते हैं, गंगा के पवित्र जल में जलशायी होते हैं अथवा हिन्दू शास्त्रों के लेखानुसार स्वार्पण करते हैं, वे भी स्वर्ग में जाते हैं। इन स्वार्पण

(रूस के राजा) के गिर्जाघर को मानने वाले रूसी वन्दियों पर घोर अत्याचार किया है, उन्हें दारुण यातना दी है, इस धर्मयुद्ध में मारे गए जार के राजकुमार सीधे स्वर्ग में आरोहण करेंगे; जिन लोगों ने पाप किए हैं वे ही अपने देश में पुनः जन्म ग्रहण करेंगे।

31. Huc's Travels में लिखा है "इन मंगोल मकबरों का स्थान चाङ्-सी (Chan-si) परगने में 'पाँच बुर्जों वाले' प्रसिद्ध लामा के मठ के पास है; इस स्थान को इतना पवित्र माना जाता है कि जिसको भी यहाँ दफ़नाया जाता है वह अवश्य ही उत्तम अवतार प्राप्त करता है। यहाँ पर्वत के मध्यभाग में वृद्ध बुद्ध ने युगों तक निवास किया था इसलिए यह स्थान इतना पवित्र माना जाता है। टोकोरा (Tokcwra) के विषय में हम पहले लिख चुके हैं; 1842 ई. में वह अपने माता-पिता की अस्थियाँ वहाँ ले गया था और उसके स्वयं के वर्णन से ज्ञात होता है कि एक नली के छिद्र जितने ही छिद्र में हो कर उसने बुद्ध के प्रत्यक्ष दर्शन किए थे। पर्वत के मध्य में वह पलथी मारे हुए निश्चेष्ट बैठा हुआ था और उसके आसपास सभी देशों के लामा सतत प्रार्थना की स्थिति में उपस्थित थे।

"इन तातारी जंगलों में प्रायः मंगोल लोगों को अपने कन्धे पर अपने सगे-सम्बन्धियों की अस्थियाँ लेकर कारवानों में पाँच बुर्जों वाले मठ की ओर यात्रा करते हुए देखा जाता है; वहाँ के बराबर तोल के सोने के बजाय कुछ फीट जमीन खरीद कर समाधि-स्थान चुनवाते हैं। कुछ लोगों को तो पूरे वर्ष भर प्रवास करना पड़ता है और इस पवित्र स्थान तक पहुँचने के लिए बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं।

विधियों में सती होने की प्रथा बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित है। जो स्त्री अपने स्वामी के शव के साथ जलकर प्राणत्याग करती है वह पति के साथ स्वर्ग भोगती है; वह अपनी और अपने पूर्वजों की सात पीढ़ियों का उद्धार कर देती है चाहे उन्हे अपने पापकर्मों के कारण यम के राज्य में नरक-प्राप्ति हुई हो, फिर भी वे स्वर्ग मे चले जाते हैं। ब्रह्मपुराण में लिखा है कि "जब चिता तैयार होती हो तब पतिव्रता अर्द्धांगिनी को पातिव्रत धर्म का श्रेष्ठ उपदेश श्रवण कराना चाहिए; जो स्त्री अपने पति के शव के साथ जलती है वह पतिव्रता और निष्कलंक चरित्रवाली होती है।" गरुड़-पुराण का कथन है कि "सती होने वाली स्त्री तैंतीस करोड़ वर्षों तक अपने पति के साथ निरन्तर स्वर्गसुख का उपभोग करती है और वह अवधि पूरी होने पर उत्तम कुल मे जन्म ग्रहण करके अपने उसी प्रियतम का वरण करती है।"

कभी-कभी, जिस स्त्री का पति मर जाता है वह अन्य रोने-पीटने वाली स्त्रियों मे शामिल होने के बदले गम्भीर होकर चुपचाप अलग बैठ जाती है। फिर, तुरन्त ही आखे फेरती हुई और प्रचण्ड अंग-स्फुरण करती हुई वह उच्चस्वर मे बोलती है 'जय अम्बे।' 'जय रणछोड़।' तब सभी कहते हैं 'इसको सत चढ़ गया है, अर्थात् इसने स्वर्ग में निवास करने वालों की प्रकृति प्राप्त करली है।' इस नवीन देवी के हाथों पर सिन्दूर लगा कर उनकी छाप घर की दीवारो पर लगवा ली जाती है; यह छाप भावी सुख-समृद्धि का लक्षण मानी जाती है; वही हाथ उसके बच्चो के सिर पर भी फिराए जाते हैं। उसके परिवार के और सम्बन्धी-जन उससे आशीर्वाद प्राप्त करते है और भविष्य के बारे मे प्रश्न पूछते हैं। उसके शत्रु क्रोध से बचने के लिए काँपने लगते हैं या उसके सामने से हट जाते हैं कि कही उनको वह कोई शाप न दे दे। राजा और सामन्त नारियल आदि भेंट लेकर उपस्थित होते है; उसको विवाह के वस्त्र पहनाते है और घोड़े पर बैठाकर गाजे बाजे से पति की अरथी के साथ चिता की ओर ले जाते है। जब वह नव-वधू के से बहुमूल्य वस्त्र पहन कर जलूस के साथ शहर या गांव मे निकलती है तो लोग उसको नमस्कार करते हैं और आगे बढ-बढकर उसके चरण छूते है। वह ज़ोर-ज़ोर से कहती है 'जल्दी करो, जल्दी करो, देरी होने पर मेरे स्वामी कोप करेंगे, वे पहले ही मुझ से दूर चले गए हैं।' वह चिता की लपटो द्वारा उससे मिलने को आतुर हुई रहती है। वह बार बार 'जय अम्बे।' 'जय रणछोड़' का उच्चारण करती है और साथ वाले भी इस जयकार को दुहराते हैं। नगर के द्वार पर पहुंच कर वह अपने शुभ सिन्दूर-चर्चित कर चिन्ह किवाड़ो पर लगा देती है।

सती की चिता बहुत बड़ी बनाई जाती है; बड़े-बड़े गाड़ी के पहिए रख कर उनसे उसके अगो को बाध देते हैं, या कभी-कभी बहुत भारी लट्ठो पर चँदोवा तानते हैं जो गिर कर उसके शरीर को चकनाचूर कर देते है। वह अपने पति का सर गोद मे लेकर बैठ जाती है और मृत्यु तथा आसपास के वातावरण से किंचित्

भी भयभीत न होकर अपने हाथ से चिता में आग लगाती है। सती की चीख सुनना अपशकुन माना जाता है इसलिए ज्यों ही चिता प्रज्वलित होती है तो एक स्वर से सभी लोग 'जय अम्बे, जय रणछोड़ !' ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगते हैं और रणसिंगा तथा ढोल नगारों की कनफोड़ आवाज़ तब तक होती रहती है जब तक कि सब कुछ जल कर भस्म नहीं हो जाता।

ऐसे भयंकर दृश्य यद्यपि अब बहुत कम देखने को मिलते हैं फिर भी कभी-कभी कोई घटना हो ही जाती है।[32] राजपूतों में ही यह प्रथा आवश्यक थी; कुछ

32. विगत 1 अक्टूबर, 1853 ई० को गायकवाड़ के कड़ी परगना में आलुआ के वाघेला ठाकुर की पत्नी सती हुई।

ज़माने में बहुत बदलाव आ गया है परन्तु गहरे जमे हुए हिन्दू संस्कार कभी-कभी बड़े प्रबल रूप में उभर आते हैं। अभी सन् 1954 की बात है कि जोधपुर में ब्रिगेडियर जबरसिंह जी सीसोदिया की पत्नी सती हो गई। वह ठाकुर नाथूसिंह जी भाटी की पुत्री थी। नाथूसिंह जी ज़ोधपुर के स्व० महाराजा उम्मेदसिंहजी के रिश्ते मे साले है। जोधपुर के रातानाडा क्षेत्र में सतीमाता का स्थान प्रसिद्ध है, जहाँ पर कई श्रद्धालु अपनी मनौतियाँ मनाते है। मेरे मित्र श्री देवकरण जी बारहठ इन्दोकली वालों ने इस सगुनावती सती की प्रशंसा में कुछ सोरठे लिखे हैं—जो प्रौढ़ राजस्थानी रचना के नमूने हैं—

विमल पतारी[1] पौत्र वधु, धीया न थारी[2] धोक।[3]
खरा मतारी[4] नै खमा, अवतारी आलोक ॥1॥
आबू तल ऐलाह,[5] रल भेला[6] मानव रतन[7]।
साझै सामेलाह[8], सत वेला थारी सुगन[9] ॥2॥
तारा, मंदोदर, तीया, सीया किया मन सोक।
दिया थनै वरदायिनी, धिया प्रजापति[10] धोक ॥3॥
बैठां पलंग विछाय, सेवा पति लेटां सरल।
पण, मुसकल, भेटां माय, अगन लपेटां ऊपरां ॥4॥
धू धू घोखै[11] अगन धुन, सोखै अघदल सत्य।

1. महाराणा प्रताप की पौत्र वधू; जबरसिंह जी राणावत थे।
2. ओसियां के नाथूसिंह भाटी की पुत्री।
3. नमस्कार।
4. दृढ़ निश्चय वाली।
5. आबू की तलहटी की भूमि—राजस्थान।
6. मिलजुल कर।
7. मानवरत्न, जो पहले हो चुके हैं।
8. अगवानी सजा रहे हैं।
9. हे सुगन देवी !
10. प्रजापति (दक्ष) की पुत्री।
11. घोषित करती है।

हिन्दू जातियों में-जैसे नागर ब्राह्मणों में-सती प्रथा का पालन कभी नहीं किया गया।

थाय दास धोखै[12] थनै, रोकै दरियर[13], रत्थ ॥5॥
पतिव्रत भास प्रकासती, पूरण आसती[14] पास।
नास नासती को निपट (थनै), सास सास शाबास ॥6॥
करणी नंह जावै कथी, अती नथी भव आस।
पती-प्रेम पारायणी, सती सुगन शाबास ॥7॥
सिनामा नह सैल, निजरबन्द रा फैल नह।
खराखरी रा खैल मेहल[15] दिखाया मारवण ॥8॥
फिर चंवरी फेराह, घर डेरा सोरा घणा।
ले कुणह ल्हैरांह,[16] सत केरा थां जू सुगन ॥9॥
पहर वरी[17] पोसाक, वणणू सोरो वीणनी।
रंग इण देही राख, सोरो नह करणो सुगन ॥10॥
माया जग भण्डाण, काया होम कटिया।
बाया सुगन बखांण, साया जिव्हा सुरसती ॥11॥
पति भगत पणरीह, रजपूतां सुध रगत री।
अकथ कथा अणरीह, सकत परीक्षा दी सुगन ॥12॥
तरजन नस तूटीह, खूटीह आयुस खत्र्यां।
इक थू दे ऊठीह सजीवन बूंटी सुगन ॥13॥
जीवन जोती ज्वाल, पोतीवाला प्राक्रमा।
मय ऋषि मोतीमाल, कुल गोती आया किसन ॥14॥
भवरी फिरै अभीक, सग गोरी घवरी सदन।
कंवरी चढै कितीक, सत चंवरी थां जू सुगन ॥15॥
लिया चाहिला लाजरा, कर ढीला बिल कोड।
बिगसाया पहिला बिरद, महिला भारत मोड ॥16॥
सासण नासण सम्भवै, हासण जोग हुवाय।
दिव्य अगासण चढ़ दियो, मोटो भासण माय ॥17॥
सोम अंस जाई सुगन, वाई- संस वढ़ाय।
वापा रावल वंस नै, चावल दिया चढाय ॥18॥
श्रां मां सुद्ध सुअंस, कुलवतस मामा कमछ।

....

12. नमस्कार करते हैं। 13. दिनकर, सूर्य। 14. आस्तिकता।
15. महिला। 16. लहरें, मौजें।
17. विवाह के अवसर पर वधू द्वारा पहनी जाने वाली पोशाक वरी कहलाती है।

गुजरात में जगह-जगह पर ऐसे स्मारक बने हुए हैं जहाँ से इस मृत्युलोक के प्राणी ने स्वर्गलोक को प्रयाण किया है। इनमे बहुत से तो अनगढ पत्थरो के पालिए होते हैं जिन पर सिन्दूर पोत दिया जाता है, या खुले पत्थरों का ढ़ेर ही होता है, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है; परन्तु प्राय: एक उत्कीर्ण पत्थर सर्वत्र देखने में आता है जो या तो अकेला ही खड़ा कर दिया जाता है या उस पर छतरी बना कर ढक दिया जाता है और छोटे-बड़े मन्दिर बना कर उनमें देव-प्रतिमा स्थापित करने का रिवाज भी असामान्य नहीं है। कोरी हुई मूर्ति वाले स्मारक पालिया कहलाते हैं। इनमें मृतक योद्धा की अश्वारूढ या रथारूढ आकृति अन्दाजे से कोरी जाती है अथवा मरण के समय वह जैसी स्थिति में होता है वह उत्कीर्ण की जाती है। सती के पालिए पर सौभाग्यवती के पंजे की आकृति कोरी जाती है। छाती में या गले में कटार लगी हुई बताई गई हो तो वह किसी भाट का

वामा सांगा वेस, कुल जामा श्रीकिसन री ॥19॥
नही तुच्छ स्वारथ निकट, परमारथ में पैठ।
काव्य कला 'देवै' करी, भारत मां रै भेट ॥20॥
सती विवीसी सुगनरी, भेट करी सद्भाव।
देवै महिला विश्वरी, पतिव्रत सेवै पाव ॥21॥
जरी खरी समजेवरी, भर्यो वीजरी भात।
जान जबर जीवन जरीं, सुगन जरी जिन साथ ॥22॥

इसी प्रकार जयपुर मे ठा. रामसिंह जी थानेदार की पुत्री भी अपने पति के साथ सती हो गई थी। यह बात सन् 1944-45 की है। सती के भाई हरिसिंह मेरे पास सिटीपैलेस विभाग में कोई 2-3 वर्ष तक क्लर्क रहे थे। ठा. रामसिंह जी पुलिस में होते हुए भी बहुत ईमानदार और सज्जन थे। उनका समस्त परिवार ही ईमानदारी और आस्तिकता के लिए प्रसिद्ध है।

एक और चमत्कारपूर्ण वृत्तान्त लेखक का सुना हुआ है। जयपुर के पुरानी बस्ती में एक छीपा दम्पति रहते थे। उनके कोई सन्तान नही थी। वृद्धावस्था मे वे दोनों ही साथ-साथ बीमार पड़े। पुरुष नीचे की मंजिल में लेटा था और उसकी पत्नी ऊपर वाली मंजिल में। सगे-सम्बन्धी देखभाल करते थे। अन्तिम दिन, नीचे की मंजिल में वृद्ध छीपा का देहावसान हो गया। जब वहां कुछ हलचल होने लगी तो न जाने कैसे उस वृद्धा में शक्ति आ गई कि वह अपने बिस्तर मे से खड़ी हो गई और रविश में से नीचे देख कर उसने इतना कहा 'गये क्या ? मैं भी आती हूँ।' यह कह कर वह पुन: बिस्तर में जा लेटी और उसके प्राण निकल गए।

लोग इसको संयोग, आघात आदि कहते हैं—परन्तु, सबने उसको सती ही माना और उन दोनों के शव एक ही अरथी में पास-पास लिटा कर श्मशान को ले जाए गए। (हि. अ.)

(या चारण का) स्मारक समझना चाहिए, जहाँ उसने 'त्रागा' किया होगा। पालिया के नीचे मरने वाले का नाम, मृत्युतिथि और घटना का विवरण लिखा होता है। ऐसे पालिए या तो किसी तालाब के चौगिरदम बने हुते हैं या गाँव के दरवाज़े के बाहर बहुत-सारे देखने में आते है। प्रत्येक पालिए की पूजा मृतक के कुटुम्बी जन, या तो सवत्सरी (मृत्युतिथि) के दिन करते हैं या किसी और पर्व के दिन; और जब परिवार में कोई विवाह होता है तो नव वर-वधू उस पालिए पर पद-वन्दन करने को आते हैं।

कुछ स्मारक तो असाधारण रूप से पवित्र माने जाते है। यदि किसी स्थान पर बैठ कर की हुई कामना पूरी हो जाती है तो वह मनुष्य कृतज्ञ होकर उस स्थान पर ब्राह्मण भोजन में अथवा वहाँ पर देवालय बनवाने में द्रव्य व्यय करता है। दोनों ही अवस्थाओं में भक्तों द्वारा देव की प्रसिद्धि होती है और दूसरे लोग भी उस ओर आकृष्ट होते हैं।

हम देख चुके हैं कि देवी बहुचराजी का मन्दिर एक चारण स्त्री के मरण-स्थल पर खडे किए गए एक अनगढ़ पत्थर के स्थान पर निर्मित हुआ है। कच्छ के रण में एक और देवालय है जिसकी बहुत पूजा होती है; वह हलवद से आड़ेसर की सडक पर है। यह देवालय वरणाजी परमार[33] नामक राजपूत ठाकुर का है, जो अपने गाँव पर कोलियों के धावे मे ढोरों की रक्षा करता हुआ अपने विवाह के केसरिया वस्त्रों मे ही शहीद हो गया था। देवत्व-प्राप्ति के विषय मे सम्भवत: सद्रुवा भाटण का वृत्तान्त सब से अधिक रोचक है; वही यहां पर पाठको के लिए लिख रहे हैं।

असाई (Assaye) के विजेता[34] ने जिस वर्ष नेपोलियन की सत्ता को नष्ट

---

33. राजस्थान मे देवत्वप्राप्त पाबूजी राठौड़ की कथा भी ऐसी ही है। मारवाड़ के कोलू ग्राम के पाबूजी राठौड़ का विवाह अमरकोट के सोढ़ो के यहाँ हुआ था। वे तीन ही फेरे ले पाए थे कि देवल चारणी ने आकर खीचियो द्वारा अपनी गाँए ले जाने की शिकायत की। पाबूजी उसी समय हथलेवा व कंकण डोरड़ा छोडकर गाएँ छुड़ाने को अपनी केसर नाम की घोड़ी पर सवार हो रवना हो गए। झगड़े में वे अपने अनेक साथियों सहित काम आए; सोढी सती हुई।

इस गोरक्षक वीर के कितने ही पवाड़े और गीत स्थान-स्थान पर गाए जात हैं और पाबूजी को देव के समान यहां के लोग पूजते हैं।

जोधपुर की प्राचीन राजधानी मण्डोर में पर्वत-पाषाण मे उत्कीर्ण देव-प्रतिमाओं की सरणि में पाबूजी की मूर्ति भी मौजूद है। (हि. अ)

34. असाई (Assaye) गाँव हैदराबाद (दक्षिण) के उत्तर पूर्व में 261 मील पर है। वहां 23 सितम्बर, 1803 ई. को मरहठा राजा सिंधिया और बरार के

कर दिया था उसके दूसरे ही साल की बात है। उस समय अहमद के नगर में पेशवा और गायकवाड़ दोनों की सत्ता चलती थी; उन दोनों के प्रतिनिधि बहर (भद्र) और हवेली के दुर्गों में अपनी-अपनी कचहरी लगाते थे। उन दिनों शहर में कुछ बदमाशों की टोलियाँ घूमती रहती थीं; वे इधर-उधर की झूठी-सच्ची खबरें फैला कर पैसा ऐंठने का धन्धा करते थे और चाड़िया कहलाते थे। इनके द्वारा सरकार के खजानें में पैसा आता था और उस जमाने की हुकूमत का एक मात्र लक्ष्य यह था कि जैसे भी बने वैसे ज्यादा से ज्यादा पैसा बटोरना; इसलिए जिस चाडिया द्वारा जितना पैसा प्राप्त होता था उसी हिसाब से उसकी कदर होती थी। चाड़ियों ने पैसा ऐंठने का एक सामान्य तरीका यह निकाल रखा था कि वे इज्जतदार औरतों पर व्यभिचार की तोहमत लगा देते थे। कभी-कभी वे किसी बदचलन स्त्री से किसी आबरूदार आदमी के विषय में कहलवा देते कि उसके और मेरे सम्बन्ध हैं और इसी बात को लेकर सरकार वाले उस भले आदमी से दण्ड की रकम वसूल कर लेते। चाड़िया लोग इसमें से अपना हिस्सा तो ले ही लेते थे पर जगह-जगह अपने लवाज़मे के आदमी तैनात रखने की भी पूरी सावधानी बरतते थे।

इन चाड़ियों में एक उत्तम नाम का बनिया बहुत नामी था; वह नगर में भाटवाड़ा के पास शाहपुर बस्ती में रहता था। कहते हैं कि इस चाड़िया की खोटी नजर हरिसिंह भाट की स्त्री सदुबा पर लगी हुई थी; परन्तु, उसका कोई वश नहीं चल रहा था। अपनी असफलता का बदला लेने को उसने सदुबा पर व्यभिचारिणी होने का कलंक लगाया और एक रात को पेशवा सरकार के अफसरों को साथ लेकर उसे पकड़वाने को गया। भाटण ने अपने निरपराध होने के विषय में बहुत कुछ कहा और चाड़िया से भी दया की प्रार्थना की, परन्तु किसी ने कुछ नही सु ा। चाड़िया अपने बदले की भावना और पैसे के लोभ को नहीं छोड़ सका। जब सरकारी आदमी उस भयभीत भाटण को खींच कर ले जा रहे थे तो उसने अपने पति को भाटों की सामान्य परन्तु भयानक रीति से उसकी इज्जत बचाने को कहा। जब हरिसिंह को उसने इस प्रकार शपथ दिलाई तो वह अपने एक शिशु को घर से बाहर

स्वामी की सम्मिलित सेना के साथ लार्ड वेलेज़ली का युद्ध हुआ था। इस युद्ध में अंग्रेजों की जीत हुई।

सन् 1798–99 के लगभग फ्रांस के नेपोलियन बोनापार्ट की महत्वाकांक्षा एशिया महाद्वीप पर विजय प्राप्त करने के विन्दु तक पहुँच गई थी। मैसूर के टीपू सुल्तान से उसका गुप्त पत्र-व्यवहार भी हुआ था। परन्तु, उक्त युद्ध के बाद टीपू सुल्तान और अन्य देशी राजाओं की शक्ति टूट गई और वे नेपोलियन से मेलजोल करके अंग्रेजी सत्ता को समाप्त करने योग्य नहीं रह गए थे।

ले आया और उसको कत्ल करके पालने में भाटवाड़ा के मध्य एक आम के पेड़ पर लटका दिया। इस बलिदान पर भी उत्तम टस-से-मस नहीं हुआ और सरकारी आदमियों को उस भाटण को घसीटने के लिए कहता रहा। सदुबा ने विवश होकर अपने पति को अपने ऊपर तलवार का वार करने की प्रार्थना की। उन्मत्त भाट ने उसी समय अपनी स्त्री का सिर काट कर धड़ से जुदा कर दिया।

रात बीतते ही यह खबर सर्वत्र फैल गई और त्रागा करने में अभ्यस्त भाट व अन्य लोग घटनास्थल पर एकत्रित हो गए। उन्होंने सोचा कि 'आज हरिसिंह की यह गति हुई है तो कल हमको भी किसी माँग के लिए इसी तरह मजबूर किया जा सकता है', इस विचार से और सदुबा तथा उसके बच्चे की लाशों को देख कर उन्हें जनून चढ गया। जो कुछ हथियार हाथ आया उसे लेकर वे चाड़ियों का विध्वंस करने को दौड़ पड़े। सुबह होते-होते भाटों की जमात अजीम खाँ के मदरसे के सामने तालाब के चारों ओर इकट्ठी हो गई। पहले भद्र में जाने का राजमार्ग भी यही था। पेशवा सरकार का अफसर रामचन्द्र मोलेलकर भीड़ देख कर डर गया; भद्र के दरवाज़े बन्द होते-होते मौका देखकर उत्तम किले में किसी तरह चला गया और अपने को सरकार की शरण में ले जा पटका। दूसरा कुख्यात चाड़िया जीवण जवेरी भी किसी तरह बच निकला और उसने गायकवाड़ की हवेली में जाकर शरण ली। दिन भर भूखे प्यासे भाटों ने चाड़ियों का पीछा किया। उन्होंने कुछ को पीटा, कुछ को घायल किया और कितनों ही को जान से मार दिया। इस घटना का एक गीत है, उसमें वर्णन है कि एक चाड़िया कुएँ में जा कर छुप गया था जिसको भाटों की भीड़ ने खींच कर बाहर निकाल लिया और उसको चीर कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया।

दूसरे दिन भाटों की भीड़ गायकवाड़ की हवेली पर पहुँची और जीवण जौहरी के प्राण लेने को पुकारने लगी। गायकवाड़ का अधिकारी समझदार और लोक-मेलापी था; उसने उन लोगों को शान्त करते हुए समझाया 'यदि मैं चाड़िया को तुम्हारे सुपुर्द कर दूं तो सरकार का अपमान होगा, परन्तु मैं स्वयं जीवण जौहरी को बेइज्जत करके शहरबदर कर दूँगा।' और, वाकई में उसने मुश्कें बंधे हुए और काला मुँह किए हुए चाड़िया को उन्हें दिखा भी दिया। यह सब देख कर भाट आश्वस्त हो गए और वहाँ से लौट गए।

परन्तु, भद्र से वे इतनी आसानी से नहीं लौटे; पेशवा के सेनानायक को मजबूर हो कर उत्तम को गधे पर बैठाना पड़ा और कुछ सिपाहियों के हमराह कालापुर दरवाज़े तक भेजना पड़ा, जहाँ से उसको शहर से बाहर निकाल दिया गया। दरवाज़े तक तो भीड़ शान्ति से साथ-साथ गई परन्तु बाहर निकलते ही उन्होंने मरहठा सिपाहियों को चुपचाप वापस लौट जाने को कहा और समझा दिया कि उनका इसी में भला था। यह इशारा काफी था; सिपाही जल्दी से लौट गए और

अब शिकार उन लोगों के हाथ में था। उन्होंने उत्तम चाड़िया को गधे पर से गिरा लिया और पत्थरों से मार-मार कर उसका काम तमाम कर दिया; उन लोगों ने उस पर पत्थरों का ढेर लगा दिया। इस प्रकार जब बदला लेने का काम पूरा हुआ तो सब अपने-अपने घर चले गए।

अगले वर्ष के जुलाई मास में, जिस स्थान पर भाटण की मृत्यु हुई थी वहाँ एक छोटा-सा देवालय चुनवा कर उसमें देवी सदुबा की मूर्ति स्थापित कर दी गई। एक संगमरमर के पाषाण पर उक्त सूचना खुदी हुई है। स्वर्ग की नई देवी के मंदिर के आगे एक तुलसी-थाँवले में तुलसी का पौधा लगा दिया गया है और इस लोक में अपने जीवन का बलिदान किए बिना जिसके लिए अपनी इज्ज़त बचाना मुश्किल हो गया था वही स्वर्गीय वृक्ष (कल्पतरु) के समान उन लोगों को सब प्रकार के भौतिक पदार्थ प्रदान करने में समर्थ हो गई। जो धूप, दीप और लाल वस्त्रादि चढ़ाते हैं उनके लिए वह शक्तिमती संरक्षण करने वाली शक्ति बन जाती है।

मर्त्य लोक के जो प्राणी अपने शुभ आचरणों के द्वारा स्वर्ग में देवत्व-प्राप्ति से भी अधिक योग्यता प्राप्त कर लेते हैं वे मुक्ति के अधिकारी होते हैं। ऐसा लगता है कि इन्द्र के स्वर्ग का इस उत्तम लोक से वही सम्बन्ध है जो वलहला का स्कैण्डि-नेविया की गिमली (Gimli) से है। गिमली एक ऐसा प्रासाद है जो सोने से मँढा हुआ है और जहाँ सभी वस्तुओं को नवीन अवस्था प्राप्त हो जाती है; पुण्यात्माओं को वहाँ पर शाश्वत सुख प्राप्त होता है। गरुड़पुराण में श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो ब्राह्मण, गाय स्त्री और बालक की रक्षा करने में प्राण त्याग देता है उसे (भी) मुक्तिपद की प्राप्ति होती है। आगे कहा है—

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका।
द्वारावती पुरी चैव सप्तैताः मोक्षदायिकाः॥

तथा—

'जहाँ शालग्राम शिला है, जहाँ द्वारावती का चक्र है या जहाँ पर ये दोनों हैं वहाँ मुक्ति अवश्य है, इसमे कोई संशय नहीं है।'

सभी जीवित प्राणियों के तीन प्रकार के शरीर होते हैं जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर कहलाते हैं - वही (कारण शरीर) आत्मा है। यहाँ हम पाठकों के लिए इन शरीरों का सामान्य वर्णन दे रहे हैं। यह स्पर्शनीय देह स्थूल शरीर है जिसमें दस इन्द्रियाँ हैं—इनमें से पाँच तो पंचेन्द्रियाँ कहलाती है; इसके चार अन्तः-करण हैं अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। इसी प्रकार सूक्ष्म देह के भी पाँच इन्द्रियाँ और चार अन्तःकरण होते हैं। कारण शरीर के तीन गुण सत्व, रज और

तम होते हैं जो ब्रह्मा, शिव और विष्णु रूप में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। जो आत्मा इन तीनों देहों से विमुक्त हो जाता है वही मुक्ति प्राप्त करता है।[35]

---

35. गीता के 14वें अध्याय में श्रीकृष्ण ने कहा है—

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥5॥

....

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्‌भावं सोऽधिगच्छति ॥19॥
गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्‌भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥20॥

हे महाबाहो! (अर्जुन) सत्व, रज और तम, देह में रहने वाले ये तीनों गुण ही अव्यय अर्थात् निर्विकार आत्मा को देह में बांध लेते हैं ॥5॥

....

जब द्रष्टा, अर्थात् उदासीनता से या अलिप्त भाव से देखने वाला पुरुष, यह जान लेता है कि प्रकृति से उत्पन्न हुए इन (तीनों) गुणों के अतिरिक्त-और कोई कर्त्ता नहीं है और जब वह इन गुणों से परे तत्व को पहचान लेता है तब वह मेरे भाव (स्वरूप) को प्राप्त कर लेता है (मुझ में मिल जाता है—उसे सारूप्य मुक्ति गमल जाती है) ॥19॥

तब देह से ही सम्भूत इन तीनों गुणों का अतिक्रम करके वह देहधारी जन्म, मृत्यु और वृद्धता के दुःखों से छुटकारा पाकर मोक्षरूपी अमृत का अनुभव करता है ॥20॥

सांख्यमतानुसार प्रकृति ही जगत् का मूल कारण है, जो स्वयं अचेतन है, परन्तु विकास सिद्धान्त के अनुसार वह क्रमशः दृश्य जगत् में विकसित होती है। आत्मा इससे परे है। पहले बुद्धि उत्पन्न होती है; उससे अहंकार की उत्पत्ति होती है, फिर पंच तन्मात्राएं और ग्यारह (10 इन्द्रियां+1 मन) ज्ञानेन्द्रियां; अन्त में, पांच आदि-तत्व उत्पन्न होते हैं। बुद्धि, अहंकार, पाँच तन्मात्राओं और ज्ञानेन्द्रियों सहित सत्रह तत्वों वाले लिंग अथवा सूक्ष्म शरीर वाले आत्मा का प्रकृति से शाश्वत सम्बन्ध है। प्रकृति के स्वतःविकास का कारण सत्व, रज और तम नामक गुणों को माना गया है। इस समस्त प्रकृति-व्यापार से शुद्धबुद्ध आत्मा अलिप्त रहता है। यह सब भौतिक व्यापार है, आत्मा में इससे कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। लिंग या सूक्ष्म शरीर के प्राप्त होने पर आत्मा फल भोग के लिए प्रकृति से संयोग करके जन्ममृत्यु के चक्र में पड़ता है और ऐसा लगता है कि यह बार-बार में ऐहिक अस्तित्व प्राप्त करता है। शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति के अनन्तर ही बुद्धि के परिवर्तनशील व्यापार का→

मुक्ति चार प्रकार की होती है; सामीप्य या सालोक अर्थात समीप में एक ही देव लोक में वास, सान्निध्य अर्थात् और भी नजदीक सन्निधि में रहना, सारूप्य अथवा समपद भोगना और सायुज्य अर्थात् परब्रह्म के साथ एक्य हो जाना। प्रथम तीन प्रकार की मुक्ति प्राप्त होने पर भी पुनर्जन्म नहीं होता, पापकर्मो के लिए दण्ड नहीं भोगना पड़ता और न शुभ कर्मों के फलस्वरूप सुख-भोग की इच्छा ही रहती है; मुक्ति प्राप्ति के अनन्तर पापों से छुटकारा हो जाता है—वह आत्मा पापपात्र नहीं रहता। परन्तु, ऐसा मानते हैं कि अहंकार की किंचित् मात्रा बनी रहती है जिससे कभी परमेश्वर के शाप के कारण कुछ काल तक पृथ्वी पर रहकर शाप-मुक्त होना पड़ता है।

वेदान्तियों का मत है कि मुक्त आत्मा परब्रह्म में लीन हो जाता है; शैवों और वैष्णवों का कहना है कि वह कैलाश या वैकुण्ठ में निवास करता है।[36]

प्रभाव उस पर से हट जाता है और वह पुरुष संसार-दुःख से विमुक्त होकर परम शान्त और प्रकृति-विकार से रहित अवस्था में मोक्ष रूपी अमृत भो करता है।

—एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, 11वां संस्करण, 34, 178.

36. सब मिलकर अठारह पुराण हैं जिनमें से दस शैव और आठ वैष्णव पुराण हैं; इनके सिद्धान्त एक-दूसरे से नहीं मिलते हैं। शिव को मानने वाले कहते हैं कि विष्णु शिव का प्रथम भक्त है और वैष्णव शिव को विष्णु का परम भक्त मानते हैं। लौकिक प्रयोजन के लिए हिन्दुओं को इन्हीं दो मतों में विभक्त माना जा सकता है क्योंकि वेदान्तियों का सामान्य जनता पर कोई प्रभाव नहीं है और शाक्तलोग इन त्रिमूर्ति में से दो के अनुयायियों के अन्तर्गत ही आ जाते हैं। दोनों ही मत कैलाश और वैकुण्ठ को स्वर्ग मानते हैं परन्तु शैव कहते हैं कि वैकुण्ठ कैलाश के नीचे का स्वर्ग है और वैष्णवों का कहना है कि कैलाश वैकुण्ठ के नीचे है। दोनों ही मतों की मान्यता है कि महाप्रलय काल में इन्द्र के स्वर्ग के साथ-साथ उनके स्वर्ग का भी लय हो जाता है परन्तु इनकी पुनः सृष्टि हो जाती है क्योंकि कैलाश महाकैलाश में लीन हो जाता है और वैकुण्ठ गोलोक में।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि हिन्दू लोग 'गॉड' या अल्लाह के नाम से क्षोभ नहीं करते क्योंकि ये शब्द वेदान्ती के परमात्मा, शैव के शिव और वैष्णव के विष्णु के अथवा परमेश्वर के ही पर्याय माने जाते हैं। कवि दलपतराम ने कहा है—

'मुसलमान अल्ला कहे, गोरा लोको गॉड।
हिन्दू माने हेत थी, परमेश्वर नो पाड॥'

→

ब्रह्मा सत्यलोक में निवास करता है; ऋषिगण एवं अन्य अवर देवता उसके आसपास रहते हैं। वह मनुष्यों के सृजन और उनके भाग्यलेख लिखने में व्यस्त रहता है। वैकुण्ठ विष्णु का लोक है जिसको उन्होंने रामावतार धारण करते समय छोड़ा था। वहाँ वह जगत् के रक्षक अपनी अर्द्धांगिनी लक्ष्मी के साथ सिंहासन पर विराजमान हैं; हनुमान, गरुड़ एवं अन्य पार्षद, जिनके नाम उनके चरित्र में वर्णित हैं, सेवा में उपस्थित रहते हैं; उत्तर दिशा का ध्रुव नक्षत्र उनका द्वारपाल है।

शिव कैलाशवासी हैं—रहस्यमयी दुर्गा उनका अर्द्धांग है—वे संसार के संहार रूप अक्षय व्यवहार का चिन्तन करते रहते हैं। उन्हीं की तरह विभूति और जटा-जूट धारण करने वाले गणपति एवं अन्य भूतादिगण उनको प्रसन्न करने के लिए नृत्य करते रहते हैं।

जब सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग के इकहत्तर फेरे पूरे हो जाते हैं तो इन्द्र के राज्य की अवधि पूरी हो जाती है और स्वर्ग में दूसरा राज्य स्थापित हो जाता है। जब चौदह इन्द्र राज्य कर चुकते हैं तो ब्रह्मा का एक दिन पूरा होता है और रात्रि के साथ-साथ स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोकों का भी क्षय हो जाता है; प्रभात होते ही वे पुनः उदित होते हैं। जब ब्रह्मा ऐसे दिनों के एक सौ वर्ष पूरे कर लेता है तो महाप्रलय होता है और कालाग्नि समस्त ब्रह्माण्ड को अपनी लपेट में ले कर नष्ट कर देती है।

जब इस महाभयंकर तूफान का धुँआँ शान्त होता है तो, हिन्दू की कल्पना में, एक नया स्वर्ग प्रकट होता है, जिसमें उसकी श्रद्धा का केन्द्र परमात्मा विराजमान है। श्रद्धालु वैष्णव को गोलोक के दर्शन होते हैं जहाँ पर परमशान्त चतुर्भुज विष्णु निवास करते हैं। वहाँ से ही महान् अवतारी श्रीकृष्ण ने पृथ्वी पर अवतार लिया था और तभी से उनके भक्त गोप-गोपिकाओं के रूप में निरन्तर व्रजमण्डल में नृत्य करने को एकत्रित होते रहते हैं।

उधर, प्रलयकर देव के भक्त उत्तुंग हिमालयशृंग पर महाकैलाश में विश्राम करते हैं। वहां वे प्राणीमात्र के लिए जीवन मरण के बन्धन से, जो यहां क्षणिक ज्ञात होता है, मुक्त हो जाते हैं; और, जैसे चन्द्रमा का बिम्ब क्षण भर के लिए सरोवर के पानी की सतह पर दिखाई देकर वापस आकाश में खिंच जाता है तथा

हिन्दू मानते हैं कि मनुष्य के कर्मों में परमेश्वर तुरन्त ही कोई दखल नहीं देता और उसके नाम का प्रवेश या निराकरण करने के लिए किसी शास्त्र का भी आश्रय लेना आवश्यक नहीं है। परन्तु, जब जीसस क्राइस्ट या मोहम्मद का नाम लिया जाता है तो दूसरी बात हो जाती है; वे उनको पृथ्वी पर जन्म लेने वाले मनुष्य मात्र मानते हैं जैसे कि म्लेच्छ लोग राम और कृष्ण को मनुष्य मात्र मानते हैं और अपने-अपने धर्म-पुस्तकों के अनुसार इनमें उन लोगों की श्रद्धा में समानता नहीं है।

जैसे पानी का बुलबुला क्षण भर के लिए प्रकट होकर समुद्र की अथाह गहराइयों में विलीन हो जाता है वैसे ही वह आत्मा परब्रह्म में मिल कर शान्ति प्राप्त करता है।[37]

हिन्दी अनुवादक की विशेष टिप्पणी

मूल ग्रन्थकार ने पिछले प्रकरणों में वेद, वेदान्त, पुराण और निबन्धादि के आधार पर भारतीय संस्कृति के अंगभूत विभिन्न संस्कारों और मान्यताओं आदि पर विवरणात्मक विचार किया है। ये विवरण यद्यपि गुजरात में ही प्रचलित मान्यताओं और घटित घटनाओं को लेकर लिखे गए हैं फिर भी समूचे भारत की एकसूत्रात्मक संस्कृति के प्रतीक माने जा सकते हैं। स्थान और समय भेद के कारण किंचित् किंचित् भेद लिए हुए ये सभी संस्कार और विचार भारत के अन्य सभी भागों में माने व पाले जाते हैं। इसका कारण यह है कि समस्त भारतीय ज्ञान और संस्कृति का मूल वेद में है। अतः मूल से प्राप्त स्वरस से ही सभी शाखाएँ अनुप्राणित हैं।

रासमाला के रचनाकाल के बाद वैदिक विज्ञान के अध्ययन को भी नई दिशा प्राप्त हुई। जयपुर (राजस्थान) के स्व. विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा ने वेदार्थ और तदन्तर्गत विविध विद्याओं का विज्ञानात्मक विवेचन अपने ग्रन्थों में किया है, जिनकी संख्या 250 से भी ऊपर है। इनमें से अधिकतर ग्रन्थ अभी प्रकाश में भी नहीं आ पाए हैं। स्व. ओझा जी के ही पट्टशिष्यों में स्व. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी महामहोपाध्याय एवं स्व. पण्डित मोतीलाल शास्त्री थे जिन्होंने अपने-अपने ढंग से अपने गुरुवर्य के ज्ञान को विद्वज्जगत् के सामने प्रस्तुत किया है। इन दोनों ही विद्वानों के नाम भारतीय विद्वद्वियत् में सतत प्रकाशमान हैं। स्व. डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी स्व. प. मोतीलाल शास्त्री के साहचर्य में रह कर ओझा जी के वैदिक-विज्ञान का अध्ययन किया और अपने अन्तिम दिनों में भी वे सपरिश्रम उसको सर्वजनहिताय विविध माध्यमों से पल्लवित करके प्रकटित करते रहे। अस्तु—

विगत प्रकरणों में जिन विषयों के विवरण आए हैं उन में से मुख्यतः मरणोत्तर गति, प्रेत, पुनर्जन्म, मोक्षादि विषयों पर यहाँ कुछ विचार लिखे जाते हैं। यह मेरे पड़ोसी और आदरणीय मित्र स्व. मोतीलाल जी शास्त्री से समय-समय पर हुए वार्तालाप और उस समय लिए हुए टिप्पणों पर आधारित हैं।

---

37. कमल पर ओसकण है; महासूर्य उदित हो !
मेरे पत्रों को ऊपर उठाओ और मुझे लहरों में मिला दो !
ॐ पणिपद्म हुं; सूर्योदय होता है,
ओसकण प्रकाशमान समुद्र में ढुलक जाता है। —लाइट ऑफ एशिया

ऊपर कह चुके है कि समस्त भारतीय वाङ्मय का आधार वेद है। वेद शब्द का विविध विद्वानों ने विविध प्रकार से अर्थ बताया है परन्तु सीधा सादा यह अर्थ समझना चाहिए कि वेदशब्द विद् धातु से बना है जिसका अर्थ है 'जानना'। अतः वेद का अर्थ हुआ 'जाना हुआ' या 'जानने लायक' अथवा 'जानने का साधन' अर्थात् 'ज्ञान'। मनुष्य शरीर में सबसे पहले बुद्धि का उद्भव होता है, अहकारादि का बाद में। अत बुद्धि के परिणाम में जिज्ञासा उत्पन्न होती है। उसकी समझ में मुख्यतः तीन ही बातें आती हैं कि वह स्वयं, अन्य प्राणी और पदार्थ पैदा होते हैं, कुछ समय टिकते है और फिर उनका अन्त हो जाता है अर्थात् जन्म, जीवन और अन्त अथवा मृत्यु का वह साक्षी होता है। इसी बात को दूसरे शब्दों मे कहें कि आदि से ही उसने सृष्टि, स्थिति और प्रलय के बारे मे जानना चाहा है, चेष्टा की है और उसने जाना है तथा वाक् या वाणी के माध्यम से प्रकट किया है; वह सब वाङ्मय वेद है। इन सब के मूल में क्या है ? इसके बारे में विचार करके मनुष्य ने 'ब्रह्म' को पहचाना, वह वेदान्त का विषय हुआ। अतः जन्म, जीवन, मृत्यु और मृत्यूपरान्त गति ये सब वेद और वेदान्त के विषय हैं।

प्रत्येक पदार्थ में उसकी प्राण-शक्ति होती है; उसके बिना उसकी स्थिति नहीं रहती। यह प्राण दो प्रकार का माना गया है। वस्तुतः वह एक ही है। एक, जो उसमे स्थित रहता है; दूसरा, जो उसमे से प्रसार करता है, फैलता है। किसी वस्तु को हम देखते है तो वह अपने स्थान पर स्थित रहती है परन्तु उसका रूप-रूपी प्राण हमारी आँख तक आता है; आगे भी फैलता है। अब, पृथ्वी से बने हुए जितने पदार्थ है उन सब में प्राण रूप से अग्नि रहता है। पृथ्वी अग्निगर्भा है; अग्नि ही उसका प्राण है। अतः पदार्थ को बनाने में, उसकी स्थिति के लिए जो प्राण रूप अग्नि रहता है उसको चित्य अग्नि कहते है क्योंकि उसी से चिन कर वह पदार्थ संघटित हुआ है। वह चिनाई जब तक बनी रहती है, तब तक उसकी स्थिति है। अब, दूसरा प्राण वह है जो उस वस्तु के रूप का विस्तार या फैलाव करता है। मोटे तौर पर, वह वह प्राण है जो उस वस्तु के रूप को लेकर हमारी आँख तक आता है। वह भी अग्नि ही है; वह चित्तनिधेय कहलाता है। इस प्राण विस्तार को 'वितान' कहते है। प्राणशक्ति आधार के बिना नही रहती। प्राण का आधार वाक् है। जैसे-जैसे प्राणशक्ति फैलती है वैसे-वैसे वाक् का भी विस्तार होता है इसीलिए यह सब जगत् वाक् है। प्राण और वाक् दोनों मिले हुए हैं; वही वेद का विषय है।

ये प्राण और वाक् ही वस्तु के 'एनर्जी' और 'मैटर' है। एनर्जी मैटर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग को लेकर दूर तक फैलती है। प्राण और वाक् मण्डल रूप में प्रसार करते है। अब, यह बात हो गई कि एक तो उस वस्तु का आकार है और दूसरे, उसका प्रसार होता है। जितना उसका आकार है वह मात्र उसकी मात्रा है–

वह ऋक् कहलाता है। जहाँ उसका प्रसार होता है अथवा प्रसार का जो आखिरी मण्डल है वही साम; उसके प्रसार की सीमा, अन्तिम भाग या समाप्ति है; ऋक् और साम के बीच में जितने मण्डल हैं वे यजुः कहलाते हैं अथवा यों कहें कि ऋक् और साम तो दोनों छोर या अवधि हैं और इनके बीच में जो अग्नि तत्व व्याप्त है वह यजुः है, वही वस्तु का सार है, उसी से नए-नए पदार्थों की उत्पत्ति होती है।[38] दृश्य या अनुभूत जगत् के विषय में मनुष्य का जो ज्ञान या वेद है, वही ऋग्-यजुः साममयी वेदत्रयी है।

प्रत्येक वस्तु एक उक्थ है; सूर्य को वेद में 'महदुक्थ' कहा गया है, वह बड़ी वस्तु है, अनन्त ऋचाओं का भण्डार है, या ऋचाओं का लोक है। सूर्य का जो फैला हुआ या प्रदीप्त प्रकाश है प्रकाशमण्डल हैं वही साम है। मण्डल के बीच में जो अग्नि व्याप्त है वही प्राणात्मा हैं, पुरुष है; यह यजुर्लोक कहलाता है। यही ऋक, यजुः और साम की त्रयी या तिकड़ी तपती है। यह बात ध्यान देनें योग्य है कि मण्डल में जो प्राण-रूप (चित्य) अग्नि है वह मृत्यु से आक्रान्त है अंतः वह स्वयं मर्त्य है वही मर्त्यलोक है और जो प्रकाशरूप चितनिधेय अग्नि है वह अमृत है। यह अमृत उस मर्त्य का पोषण करता है; वह मृत को भी मरने नहीं देता है। इसीलिए कहा गया है कि 'मृत्यावमृतमाहितम्' (छां०), मृत्यु में अमृत आहित है। यही शरीर की नश्वरता और आत्मा की अमरता का मूल-मन्त्र है। ऋक्, यजुः और साम का अन्योन्यनित्य-सम्बन्ध है क्योंकि ऋक् पर साम ठहरा हुआ है, 'ऋच्यध्यूढं साम'; जब तक मूर्ति है, ऋक् है तब तक साम, उसका प्रसार उस पर सवार है; और जब वे दोनों मौजूद हैं तो इनका मध्यवर्ती यजुः भी है ही। यही त्रयीविद्या है।

ऊपर किसी एक पार्थिव पदार्थ और फिर सूर्य के ऋक्, यजुः साम का उदाहरण दिया गया है। ऐसे अनगिनती सूर्यादि जिसके किसी एक अंश समाए हुए है और जो इस समस्त प्रपंच या अनन्त ब्रह्माण्डों को भी व्याप्त करके उनसे ऊपर निकला हुआ है वह परब्रह्म है; वही रस-रूप कहा गया है; वही मूल तत्व है।

इसी मूलतत्व या परब्रह्म में ऐसी शक्ति है जो सब प्रपंच को रच देती है। यही शक्ति वल भी है और क्रिया भी। जब यह शक्ति कुछ नहीं करती, सुप्त रहती

---

38. तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है—

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः
सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेजः सामरूपं हि शश्वत्
सर्वं हीदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्॥ (2/12)

ऋषि-प्राण दो भागों में विभक्त हो जाता है; एक सौम्य-प्राण और दूसरा आग्नेय-प्राण। सोम और अग्नि पुरुष की कलाएं हैं। इन्हीं का अंश क्षर पुरुष में आता है; वह अन्न और अन्नाद (अन्न को खाने वाला) नाम से कहे गये है। सोम अथवा अन्न की आहुति से ही अन्नाद अग्नि प्रज्वलित होता है। सोम तत्व की प्रधानता वाले सौम्य प्राण ही पितृप्राण कहलाते हैं; इसी तरह आग्नेय-प्राण देव कहलाते हैं। इनके मण्डल ही पितृलोक या पितर अथवा देव-लोक कहे जाते हैं। पितृप्राण देवप्राण में अनुप्रविष्ट होता है। इनका अन्योन्य सम्बन्ध रहता है। इसीलिए किसी के मर जाने पर हम उसको पितर कहते हैं या देवलोक हो जाना कहते है। अब, प्रेत या पितृ क्या होते हैं, मरने के बाद क्या गति होती है, इस पर विचार करेंगे।

जब कोई प्राणी मर जाता है तब हम कहते हैं, इसके प्राण निकल गए, जीव निकल गया, आत्मा या हंसा उड़ गया इत्यादि। स्थूल शरीर तो वहाँ का वहाँ है, वह तो कहीं गया नहीं। नित्य विभु आत्मा सर्वव्यापक है वह भी कहीं आता जाता नही है। तब फिर शरीर में से क्या गया ? यह जन्मान्तर या लोकान्तर में जाने वाला सूक्ष्म शरीर है जिसको ऊपर क्षर-पुरुष की देवचिति नाम से कहा गया है। इस चिति में प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा, विज्ञानात्मा और महान् आत्मा सम्मिलित है; अथवा, यों कहें कि इसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि—ये सत्रह तत्व मिले होते है। इनमें रहने वाला चैतन्य ही प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा, विज्ञानात्मा नाम से कहा गया है। इस सत्रह तत्वों वाले सूक्ष्म शरीर में जिस तत्व की प्रधानता होती है वही अपने सजातीय घन की ओर इसे खींच ले जाता है। नियम है कि व्यष्टि समष्टि की ओर जाती है, अंश अंशी की ओर आकृष्ट होता है। अब, उपर्युक्त सत्रह तत्वों में मन मुख्य है; वही बन्ध और मोक्ष का कारण है। 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' मन का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। विश्वात्मा के मन से ही चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है। 'चन्द्रमा मनसो जातः।' इसलिए सामान्यतः मृत पुरुषों का सूक्ष्म शरीर खिंच कर चन्द्रमा की ओर ही जाता है। वही दिव्य पितृलोक कहा गया है; पितृ-प्राणों का संघात वहाँ ही है। इसीलिए मृतों की पितृ-लोक गति मानी गई है। यह मार्ग पितृयान मार्ग कहलाता है। अब, यदि किन्हीं कारणों से सूक्ष्म शरीर में मनस्तत्व की प्रधानता न हो कर दूसरे तत्व की प्रबलता हो जाय तो फिर उस तत्व के अनुसार गति होती है। कर्मात्मा की स्वाभाविक गति दो कारणों से क्षीण या कमजोर होती है। जो लोग तप, साधना और उपासनादि में अपने को लगाए रख कर यत्नपूर्वक मन की वृत्ति को रोकते रहते हैं उनका बुद्धितत्व या विज्ञानात्मा प्रबल हो जाता है। बुद्धितत्व का सम्बन्ध सूर्यमण्डल से है अतः वे सूर्य से आकृष्ट होकर उधर जाते है। सूर्यमण्डल को देवप्राण की समष्टि माना गया है इसलिए यह मार्ग देवयान-मार्ग कहलाता है अथवा स्वयं प्रकाशमान होने के कारण अर्चिमार्ग भी कहा जाता है।

अब यदि पार्थिव अर्थात् पृथ्वी सम्बन्धी पदार्थों में उलझकर मन भारी हो जाता है तो उसकी ऊर्ध्व गति नहीं होती। जैसे, गेंद है, वह हल्की होने के कारण उछलती है परन्तु यदि उसके चारों ओर मिट्टी, पत्थर आदि लपेट कर बाँध दिए जावें तो वह बोझिल होकर हवा में पहले की तरह नहीं उछल सकेगी। इसी तरह जो मन परिवार, गृह, धन, पशु आदि पार्थिव पदार्थों में लिपट जाता है उसकी ऊर्ध्व गति तो नहीं ही होती अपितु वह कल्मष से बोझिल होकर अपनी सामान्य पितृलोक-गति को भी कायम न रख कर नीचे की ओर खिसकता है जो अधोगति कहलाती है। फिर, उस 'आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनों' में सक्त जीव के लिए वह 'गुणसंगविवर्जित' विज्ञानात्मा दुष्प्राप्य हो जाता है। इसके प्रति भूमि का आकर्षण प्रबल हो जाता है। वासनाओं की तीव्रता के कारण वह सूक्ष्म शरीर इस पृथ्वी से ऊँचा न उठ कर यहां ही कीड़े, मकोड़े, पतंगे आदि के रूप में जन्मता और मरता रहता है। ऐसी योनियों में बुद्धितत्व से बिल्कुल साथ छूट जाता है इस लिए वह जीव उद्धार का मार्ग सोच भी नहीं पाता। उसमें अपने आप कुछ करने की क्षमता ही नहीं रहती। वह तो चौरासी के चक्कर में पड़ जाता है। इस गुच्छे में उलझ कर कभी भगवत्-कृपा या प्रकृति माता की अनुकम्पा से, जो भी कहें, कभी मनुष्य-योनि में आ जाता है तो वहीं उसे फिर उद्धार का अवसर मिलता है। इसलिए पार्थिव वस्तुओं से विरक्ति अथवा अनासक्ति के विषय में भारतीय शास्त्रों में बार-बार जोर दिया गया है।

इसी बात को दूसरी तरह यों समझना चाहिए--आत्मा के साथ विद्या, कर्म और पूर्वसंस्कार, जिनको पूर्व-प्रज्ञा कहते हैं, चलते हैं। विद्या क्या है? बुद्धितत्व के दो भेद होते हैं; एक सत्व-प्रधान दूसरा तमः प्रधान। इन्हीं दोनों को विद्या और अविद्या भी कहते हैं। विद्या के चार रूप-ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और धर्म कहे गए हैं और अविद्या के चार रूप इससे उलटे अज्ञान, अवैराग्य (राग), अस्मिता (अनैश्वर्य) और अभिनिवेश या अधर्म हैं। ये अविद्या के रूप ही कर्म के कारण होते हैं। इन्हीं कर्मों के कारण आत्मा पर कषाय, कल्मष या बोझ चढ़ जाता है। विद्या और अविद्या के प्रभाव या प्रबलता के अनुसार ही आत्मा की ऊर्ध्व या अधो-गति होती है। विद्या की अधिकता या प्रबलता होती है तो ऊर्ध्वगति या ब्रह्मगति होती है और यदि कर्म का आधिक्य होता है तो उसकी कमी बेशी के अनुसार पितृगति या नरक अथवा अधोगति प्राप्त होती है। यदि प्राणी के पातकों का कषाय भार अत्यधिक हो तो उसकी निम्नगति अवश्यम्भावी है। निम्न गति से तात्पर्य है विद्या के आभास से भी रहित अस्थिहीन क्षुद्र जीवों में जन्म, जैसे, मच्छर, डांस, जूं, लीख, खटमल आदि; इसी प्रकार अस्पष्ट चैतन्य वाले जीव औषधि या वनस्पति की सूरत में उत्पन्न होते हैं, ये भी अगति के भागी माने जाते हैं। ये सब पृथ्वी में दृढ़मूल रहते हैं और चन्द्र अथवा सूर्य लोक की ओर अग्रसर नहीं हो पाते।

से वहाँ का भोग भोगना पड़ता है। सूर्य अथवा चन्द्र लोक से पृथ्वी पर लौटते समय आत्मा के लिए वायु के द्वारा फिर पहले की तरह नया भोग-शरीर पैदा हो जाता है। पृथ्वी से चन्द्रमा तक जाने या चन्द्रमा से लौटने तक पंचभूतों के संयोग से जो कल्पित शरीर बनता है वह घटता बढ़ता नहीं है; वह तो तेरह महीनो तक पत्थर के ढेले की तरह एकसार रहता है। इसका कारण यह है है कि उस मृतात्मा में वैश्वानर या प्रज्ञात्मा तो रहता है परन्तु तैजस् आत्मा नही रहता। सूर्य, चन्द्रमा और विद्युत् इन तीनों के तत्तद् भाग मिलने से तैजस आत्मा बनता है। सूर्य और चन्द्रमा का भाग अलग हो जाने पर केवल विद्युत् रूप तैजस आत्मा में विस्तार या फैलाव की शक्ति नहीं रहती। इसीलिए यह भोग या यातना शरीर जैसा का तैसा ही बना रहता है। चन्द्रलोक में जाने पर वहाँ के सोम भाग के मिलने पर सौम्य-शरीर बनता है और वहाँ से यदि सूर्यलोक में गमन होता है तो सौमिक शरीर चन्द्रलोक मे ही छूट जाता है। उसका अनुशय लेकर ही आत्मा आगे जाता है। वहाँ उसमें सूर्य का रस मिलने से सौर शरीर बनता है। चन्द्रलोक से जीवात्मा या तो सौर लोक मे जाता है या पृथ्वी पर लौटता है।

अपने सम्पात अर्थात् पुण्य-समूह के अनुसार चन्द्रलोक में रहकर वह जीवात्मा उसी मार्ग से वापस पृथ्वी पर लौटता है। पहले वह चन्द्रमण्डल से आकाश मे आता है, आकाश से वायु मे आता है, वायु से वह धूम अर्थात् वाष्प बन जाता है, धूम से अभ्र और अभ्र से मेघमण्डल मे आ जाता है; मेघ के साथ बरस कर पृथ्वी पर गिरता है, और उगने वाले धान, यव, तृण या ओषधि और वनस्पति आदि के रूप में प्रविष्ट हो जाता है। इसके बाद उसके पूर्व कर्मों के अनुसार उसको जिस योनि में जन्म लेना होगा वही व्यक्ति उस धान, अन्न या घास, वनस्पति आदि को खाता है। मनुष्य योनि में जाने वाला वह जीवात्मा अन्नादि के द्वारा पिता के स्थूल शरीर मे पहुँच जाता है। पशु, पक्षी, कीट, पतगादि की भी यही प्रक्रिया है। इस प्रकार पहले पुरुष गर्भ धारण करता है। पिता के शरीर मे वह क्रमशः रक्त, मांस, मेदस् अस्थि, मज्जा और शुक्र आदि के रूप मे घूमता रहता है और फिर पिता द्वारा ही माता के गर्भाशय में पहुँच कर पुनः स्थूल शरीर प्राप्त करता है। उपनिषदों में वर्णन आया है कि सोम-रूप सूक्ष्म शरीर जिन स्थानों मे जाता है वे अग्नि कहलाते हैं और उस शरीर की गति को आहुति कहते है। सबसे पहले जब सूक्ष्म शरीर इस स्थूल शरीर का अनुशय अथवा श्रद्धा लेकर चन्द्रमा मे जाता है तो अग्नि चन्द्रमा हुआ और उसमें उस सूक्ष्म शरीर की गति आहुति हुई। फिर, लौटते समय मेघमण्डल, पृथ्वी, पिता का शरीर और माता का गर्भाशय ये सब क्रमशः अग्नियाँ है जिनमें आहुति लगकर पुनः पार्थिव शरीर की प्राप्ति होती है। यही पंचाहुतियों का रहस्य है। इसीलिए कहा गया है कि पांचवी आहुति में पुरुषस्वरूप प्राप्त होता है।

वेद में बातों को प्रतीक रूप से कह कर समझाने का बहुत महत्व है। प्रत्यक्ष शब्दों का व्यवहार करने की अपेक्षा संकेत को अधिक अच्छा माना गया है। ऋषियों का यह मत रहा है कि सृष्टि का प्रत्येक प्रत्यक्ष पदार्थ किसी न किसी परोक्ष पदार्थ की व्याख्या करता है; यथा यह शरीर या पिण्ड ही ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। इसी प्रकार सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, समुद्र, आकाश, अग्नि आदि सभी सहस्रों पदार्थ अपने-अपने प्रतीकों के माध्यम से इस विश्व की रचना के रहस्य को प्रकट करते हैं।

भारतीय संस्कृति में गौ या गाय की बहुत मान्यता है। इसका कारण यह है कि गौ मातृत्व का प्रतीक है। पहले कहा जा चुका है कि यह जगत् अग्नि और सोम तत्व से बनता है। सोम ही मातृ-तत्व है। जब सोम अग्नि तत्व से गर्भित होता है तभी सृष्टि होती है। गौ जब वृषभ के शुक्र रूप आग्नेय तत्व से गर्भ धारण करती है तभी वह दूध देने योग्य बनती है। इस दूध के एक-एक कण में गौ का स्नेह रूप घृत व्याप्त रहता है। इसीलिए चिकनाई के लिए स्नेह शब्द का प्रयोग होता है। घृत अग्नि है। उसी को वत्स या बछड़े के लिए प्रकट करके गौ-माता अपनी सन्तान को पुष्ट करती है। घृत के अग्नि रूप होने का प्रमाण यह है कि जब अग्नि में घृत डाला जाता है तो वह प्रज्वलित होता है; पानी से बुझ जाता है। इस प्रकार गौ को प्रतीक मान कर प्रकृति और पुरुष के संयोग से सृष्टि, इस विश्व की उत्पत्ति का रहस्य समझाया गया है। विश्व बछड़ा है; अनन्त प्रकृति उसकी माता गौ है जिसको कामदुधा या विश्वधायस् धेनु कहा गया है। वह काम रूपी दूध देती है और विश्व रूपी बछड़ा उससे धापता है, तृप्त होता है। अस्तु,

अपनी इसी मनः पूत शैली के अनुसार ऋषियों ने सृष्टि से पूर्व जो प्रकृति की साम्यावस्था है उसको परमेष्ठी कहने के साथ-साथ गौ भी कहा है। यह परमेष्ठी ही समष्टिभूत विश्वात्मक प्रज्ञान है। इसी को 'यूनिवर्सल' या 'कलैक्टिव अनकांशस स्टेट' कहते हैं। इस अक्षुब्ध साम्यावस्था में जो प्रथम क्षोभ या हलचल पैदा होती है वही अग्नि का स्पन्दन है। इस स्पन्दन के कारण ही वह एक अखण्ड तत्व बहुभाव में आता है। यह बहुभाव में आना ही बृहण (फैलाव) कहलाता है और इसीलिए उस स्पन्दनयुक्त तत्व को ब्रह्म कहते हैं; उसी से इस सृष्टि का विकास होता है। कहा गया है कि प्रजापति से सर्व-प्रथम उत्पन्न होने वाला ब्रह्म है। 'ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रथमजम्।'[39]

तो, विश्व की जननी अनन्त प्रकृति, अदिति या परमेष्ठी ही गौ है। परमेष्ठि-मण्डल को ही वेद में 'गोसव' कहा गया है और पुराणों में 'गोलोक'। इसीलिए जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होकर साम्यावस्था की प्राप्ति को ही गोलोक-प्राप्ति अथवा मोक्ष कहते हैं। इस परमेष्ठी को जो परतत्व अपने में पालता है वही 'गोपाल' है।

—

39. शतपथ, 6/1/1/10.

उसकी ऐसी वीर-श्री है कि जिसको देखकर शत्रु रणभूमि में से तुरन्त पलायन कर जाते हैं और उनको अपने शस्त्रास्त्र का प्रयोग करने का अवसर ही नहीं मिलता। इससे कभी-कभी वह लज्जित-सा होने का अनुभव करता है। ऐसे पराक्रमी वीर वीरधवल को यदि तुम अपना युवराज बना लो तो सुख से राज्य चला सकते हो।

ऐसा कह कर कुमारपाल अदृश्य हो गया और भोला भीम की आँख खुल गई। प्रातःकाल के प्रहर में अपने नित्यकर्मादि से निवृत्त होकर उसने अपनी भव्य राजसभा में प्रवेश किया। उसी समय उसके समस्त सामन्त और माण्डलिकगण भी उपस्थित हो गए। उनमें से लावण्यप्रसाद और वीरधवल पर अपनी अमृतकुम्भ सदृश आखों से पीयूषाभिषेक करते हुए उसने अपने शिष्ट सभासदों के समक्ष लावण्यप्रसाद को कहा, 'तुम्हारे पिता ने जिन शत्रुओं को पराजित किया है उनका अधिकार तुम्हे प्राप्त हुआ है इसलिए मैं तुम्हें 'सर्वेश्वर'.का पद प्रदान करता हूं और इस धवलक (उज्जवल) गुणो वाले वीरधवल को मैं अपना युवराज बनाता हूं।' ऐसा कह कर उसने वीरधवल का युवराज पद पर अभिषेक कर दिया और उसको तत्पदोचित पोशाक प्रदान की। बाद में, उसी की प्रार्थना पर उसने वस्तुपाल और तेजपाल को उसके मन्त्री नियुक्त किए।

चतुर्विंशतिप्रबन्ध के अन्तर्गत 'वस्तुपाल-प्रबन्ध' में लिखा है कि वस्तुपाल और तेजपाल, दोनों भाई शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा करके लौटते समय धोलका आए थे। उस समय गुर्जर देश की अधिष्ठात्री मयणल्ल देवी ने वीरधवल को स्वप्न मे आकर कहा, 'इस गुर्जरधरा को वनराज आदि चावड़ा राजाओं ने 196 वर्ष तक भोगा है; इसके बाद मूलराज, चामुण्डराज, दुर्लभराज, भीम, कर्ण, जयसिंह, कुमारपाल, अजयपाल, लघु भीम और अर्णोराज आदि चौलुक्यो ने राज्य किया; अब तुम पिता पुत्र दोनों इसके भोक्ता हो। समय के फेर से, स्वामी के अभाव में यह गुर्जरधरा मात्स्यन्याय से पापी म्लेच्छों के पाश मे पड़ी हुई गौ के समान पीड़ित है। इसलिए यदि तुम वस्तुपाल और तेजपाल को अपने मत्री बनाओ तो राज्य के प्रताप और धर्म, दोनों की वृद्धि हो। मैं तुम्हारे पुण्यबल से आकर्षित होकर आई हूं और इसीलिए तुमको यह सीख दे रही हूं।' ऐसा कहकर वह देवी अदृश्य हो गई।

अक्षरशः यही उपदेश देवी ने लवणप्रसाद को भी दिया था। जब प्रातःकाल पिता पुत्र मिले तो एक ने दूसरे को अपने स्वप्न की बात कही। इससे दोनों ही को बहुत हर्ष हुआ। उसी समय उनके कुलगुरु, सरस्वती के पुरुषावतार श्री सोमेश्वर-पुरोहित स्वस्त्ययन के लिए वहां आए। जब उनको सब वृत्तान्त निवेदन किया तो उन्होंने कहा, "हे देव! तुम्हारे प्राचीन पुण्यों के फल से देवता साक्षात् दर्शन देते हैं और उनका उपदेश प्रमाणस्वरूप है। मन्त्रीबल के बिना राज्य की कोई

बात नहीं बनती। जिनके विषय में देवी ने आपको कहा वे यहाँ आए हुए हैं, मुझ से मिले हैं और राज्यसेवा करने के लिए वे इच्छुक भी हैं। वे बहुत सी कलाओं के जानकार न्यायनिष्ठ और धर्मज्ञ हैं यदि आप आज्ञा दें तो मैं उन्हें उपस्थित करूँ।" राणाओं ने यह बात मान ली और सोमेश्वर उन बन्धुओं को ले आए। नमस्कार आसनादि के ग्रहण प्रतिग्रहण के अनन्तर अपने पिता से आज्ञा ले कर वीरधवल ने कहा, "हम पर यह राज्यभार आ पड़ा है इसलिए हमको तुम्हारे जैसे अमात्य की आवश्यकता है। इस पृथ्वी पर धर्मकर्मादि के फल से विभूति प्राप्त होना तो शक्य है परन्तु ऐसे सुकृत बहुत दुर्लभ हैं कि जिनके परिणाम से उत्तम पुरुष-रत्नों का योग प्राप्त हो।"[3]

वस्तुपाल ने कार्यभार सम्हालना स्वीकार कर लिया परन्तु यह भी निवेदन किया कि 'हमारे घर में तीन लक्ष द्रव्य है; कदाचित् पिशुनों के वचन मान कर आप हमें पृथक् करना चाहें तो हमको हमारे द्रव्य सहित उज्ज्वल करके विदा देना।' राणा ने कहा 'ठीक है, इस बात के लिए कापालिक को बीच मे रखकर तुम्हारे विश्वास के लिए वचन देते हैं।' यह कह कर उसने प्रधान की मुद्रा तेजपाल के हाथ में सौंप दी और स्तम्भतीर्थ (खम्भात) तथा धोलका का आधिपत्य वस्तुपाल को दिया।

कीर्तिकौमुदी में लिखा है कि एक बार लवणप्रसाद रात्रि के पिछले पहर में जाग उठा; उसने अपने पुरोहित सोमेश्वरदेव, और पुत्र वीरधवल को बुलाया। जब पुरोहित आए तो उनको आसन देकर बैठाया और वे भी आशीर्वाद देकर बैठ गए। वीरधवल भी गुरु और पिता को प्रणाम करके बैठा। तब लवणप्रसाद उनको गत रात्रि का स्वप्न सुनाने लगा—"जैसे आज मैं हिमालय पर्वत के शिखर पर गया। वह स्थान गुहाओं और घाटियों मे विहार करने वाली विद्याधर सुन्दरियों से सुशोभित था। उसी शिखर पर मणिवेदिका पर आसन लगाए भगवान् वृषध्वज शिव अर्धनारीश्वर के रूप में विराजमान थे। मैं मन्मथारि भगवान् शिवजी की श्वेत कमलों से पूजा करने में प्रवृत्त हुआ। जब मैं ध्यान लगाकर समाधि मुद्रा में बैठा तो क्या देखता हूं कि सुन्दर नेत्रों वाली, शरद के चन्द्रमा के समान मुखवाली, श्वेत वस्त्र धारण किए, चन्दन का लेप किए, हाथ मे श्वेत माला लिए कोई बाला मेरे सामने खड़ी है। उसको देखकर मुझे विस्मय हुआ। जब वह पास आई तो मैंने पूछा "तुम कौन हो? किसकी हो? और यहाँ क्यों आई हो?" इतने में ही वह अपनी सुन्दर दन्तावलि की कान्ति फैला कर मानों मेरे ऊपर श्वेत छत्र तानती हुई बोली, हे शत्रुसेना के गजेन्द्रमण्डलों के गण्डस्थलों का खण्डन करने वाले

---

3. येन केन च सुधर्मकर्मणा, भूतलेऽत्र सुलभा विभूतयः।
दुर्लभानि सुकृतानि तानि यैर्लभ्यते पुरुषरत्नमुत्तमम्॥
—कीर्तिकौमुदी, 3, 64,

खड्गधारी वीर ! मुझे शत्रुसमूह द्वारा सताई हुइ गुर्जरदेश की राज्यलक्ष्मी जानों। शत्रुवर्ग का विनाश करने में समर्थ जिन राजाओं के भुजदण्डों पर मेरा निवास था और जिन श्रेष्ठ गजों के दन्तशूलों पर मैं विराजती थी वे सब दिवंगत हो गए हैं। इस समय जो राजा चक्रवर्तिपद पर आसीन है वह बालक है; वह, तटवर्ती अन्धकार-समूह को जैसे लघुदीपक दूर नहीं कर पाता उसी तरह, समस्त शत्रुजनों का निग्रह करने मे समर्थ नहीं है; जो मन्त्रीगण और मण्डलीक सामन्तादि हैं उनमे न कोई क्रम है, न पराक्रम; अपने स्वामी की स्त्री-रूपी राज्यलक्ष्मी का परिग्रहण करने की कामना करने वाले इन लोगों का कैसे प्रतीकार किया जाय ? ऐसा कोई भी बलवान् मनुष्य नहीं है जो मेरा उद्धार कर सके। भले मनुष्यों की विभूति का अपहरण करने के लिए सैकड़ों लोगों ने हाथ फैला रखे हैं। जो मेरा रक्षण करने मे कवच के समान था वह धर्मात्मा सौवस्तिक आम शर्मा (जैन धर्मोपदेशक) अब नही रहा। जिसने अपने मन्त्रों से क्षत्र-सर्पसमूह को दर्परहित (प्रभावहीन) कर दिया था वह (कर्ण का मत्री) मुंजालमुन भी नहीं है। प्रमत्त शत्रुओं के हाथियों की गन्ध भी जिसको सहन नहीं होती थी ऐसा गन्धगज के समान रणस्थली का एकल मल्ल वह राष्ट्रकूट (राठौड़) कुल में विष्णु के समान प्रतापमल्ल भी अब नहीं रहा। गुर्जरों के जिस पुर में वेत्रधारियों से सशंक होकर दुष्ट लोग प्रवेश करने का साहस भी नहीं करते थे वहीं अपने ही लोगों में मैं पराई जैसी हो रही हूँ, यह दशा जगद्देव (परमार) और वेदसमुद्र के पारंगत कुमार पुरोहित के विना हो रही है। आज चैद्य राजा की राज-लक्ष्मी के सिवाय कौन मुझे अपनी सपत्नी बना सकती है ?[4] जो पुरी मूलराज के वंशज राजाओं के तेज से जगमगाती रहती थी और अन्धकार का जहाँ प्रवेश भी नही था उसी राजधानी में अब रात पड़ने पर एक दीपक भी नहो टिमटिमाता है। निरन्तर इधर-उधर घूमते हुए गजों के घण्टानाद से उठती हुई तेज ध्वनि से जो गूंजती रहती थी वही गुर्जरों की पुरी अब रात्रि के समय गीदड़ो के रुदन से चीत्कार करती हुई सी जान पड़ती है। जिस नगर के सरोवरो में क्रीड़ा करती हुई अंगनाओं के मुख कमलों

4. मूल श्लोक इस प्रकार है—

अवाप्तवेदाम्बुधिरोधसा च, पुरोधसा तेन कुमारनाम्ना।
विनाद्य चैद्यक्षितिपाललक्ष्मी को मे कांक्षित्यपरः सपत्नीम् ॥

यहां कीर्तिकौमुदी के कर्ता द्वारा रचित सुरथोत्सव काव्य (काव्यमाला) में उल्लिखित निम्न पद्य का सन्दर्भ अनुसन्धेय है—

धाराधीशपुरोधसा निजनृपक्षोणीं विलोक्याखिलां।
चौलुक्यांकुलितां तदत्ययकृते कृत्या किलोत्पादिता॥
मन्त्रैर्यस्य तपस्यतः प्रतिहता तत्रैव तं मान्त्रिकं।
सा सहृत्य तडिल्लता तरुमिव क्षिप्रं प्रयाता क्वचित् ॥20॥

के कारण वे कमलों से भरे हुए से दिखाई देते थे वही सरोवर आज हवा के थपेड़ों से उठने वाले छींटों के कारण आंसू डालते हुए से जान पड़ते हैं। निरन्तर वृक्षों के काटे जाने से मानों मुण्डित हो गई है, उज्वल गोल नगर-परकोटे के टूट जाने स मानों कुण्डल-रहित हो गई है और समस्त विषयों (हलचलों) से दूर ऐसी गुर्जर राजाओं की राजधानी दैन्य भाव को प्राप्त हुई विधवा-जैसी लगती है। इसलिए हे समस्त शत्रुओं का नाश करने वाले ! अपने और परायों से लुट-पिट कर बची हुई राजधानी का उद्धार करो ! इस असाधारण चरित्र से तुम्हारी पवित्र कीर्ति भुवनो में भर जायगी ! जैसे अकेले ही वराह ने राक्षस राजाओं के भार से भू वलय का उद्धार किया था उसी प्रकार हे वीर ! वीरधवल पुत्र को साथ लेकर अब तुम पुनः पृथ्वी का उद्धार करो !' ऐसा कह कर मेरे गले में सफेद फूलों का हार डाल कर वह भगवती, मेरी निद्रा के साथ ही, अदृश्य हो गई। अब तुम दोनों बताओ, यह क्या बात हुई ?"

तब सोमेश्वरदेव ने कहा, 'इस स्वप्न का फल बहुत उत्तम है। गुजरात की राजलक्ष्मी आपको प्राप्त होगी और आप उसका इस रीति से पालन करेंगे कि वह आपको कभी नहीं छोड़ेगी। यह कह कर पुरोहित अपने घर चले गए। इसके बाद एक दिन लवणप्रसाद ने वस्तुपाल और तेजपाल के गुणों से प्रसन्न हो कर उन्हें बुलाया और उनको अपने राज्य का प्रधान पद सौप दिया।

सात दिन बाद ही एक पुराने अधिकारी पर, जो बहुत भ्रष्टाचारी था, वस्तुपाल ने इक्कीस लाख द्रम्म दण्ड कायम किया। इस धन का उपयोग करके उसने हाथी घोड़े खरीदे और वैतनिक पैदल सैनिक रखे। इस प्रकार उत्तम सैन्य-प्रबन्ध करके उसकी मदद से, धोलका के नीचे जो पाच सौ गांव थे उनके पटेलों पर दण्ड कर-करके बहुत सा धन इकट्ठा किया, क्योंकि ये लोग बहुत समय से बहक रहे थे। बहुत से पुराने व्यापारियो से भी उसने धन वसूल किया। इस तरह जैसे-जैसे धन बढ़ता गया वैसे-वैसे लश्कर मे भी बढ़ोतरी होती गई। लवणप्रसाद धोलका मे रहा और वस्तुपाल उसके साथ ठहरा; वीरपाल (वीरधवल) को साथ लेकर तेजपाल समस्त गुजरात के भ्रमण पर निकला। उसने इस विजय-यात्रा में बहुत समृद्धि प्राप्त की। एक बार वीरधवल को तेजपाल ने कहा, 'देव, सोरठ मे बहुत से धनी ठाकुर हैं,

---

तात्पर्य यह है कि मालवाधीश यशोवर्मा के पुरोहित ने अपने राजा की भूमि को चौलुक्यवंशी गुर्जरराज श्री सिद्धराज जयसिंह देव द्वारा व्याकुल देखकर उसके निधन के लिए अभिचार द्वारा कृत्या को उत्पन्न किया; परन्तु, आमशर्मा (कुमार पुरोहित के पिता) द्वारा प्रयुक्त शान्ति मन्त्रो से उसका प्रतिषेध हुआ और उलटकर वह कृत्या मालव राज के पुरोहित का संहार करके अन्तर्धान हो गई।

उनसे कर लिया जा सकता है; इस विषय में आपका क्या विचार है ?' वीरधवल को अब स्वाद पड़ गया था इसलिए धन के लालच से उसने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।[5]

सौराष्ट्र की ओर जाते समय मार्ग में वर्धमानपुर (बढ़वाण) पड़ा। वहां के गोहिल वंशी ठाकुर से कर वसूल किया। वहां से चल कर वामनस्थली (वनथली) आए, जहां वीरधवल के साले सांगण और चामुण्डराज राज्य करते थे। ये दोनों बहुत ही उद्दाम और पराक्रमी राजपूत थे। वीरधवल ने सौजन्यवश अपनी रानी जयतल देवी द्वारा उनको कहलाया 'तुम्हारा बहनोई महापराक्रमी है; जिन लोगों ने कभी दण्ड नहीं दिया उनसे भी दण्ड ग्रहण किया है; जो अभंग माने जाते थे उनको भी भंग कर दिया है; गुजरात के गाँव-गाँव से और नगर-नगर से उसने धन वसूल किया है; अब, तुम से भी कर वसूल करने आया है, इसलिए धन, घोड़ा आदि जो भी योग्य हो वह देकर विदा करो।'[6] अपनी बहन की बात सुन कर मदमत्त भाई बोले 'बहन ! तुम जानती हो कि हम तुम्हारे पति के साथ युद्ध करेंगे तो वह मारा जायगा और तुम्हें वैधव्य प्राप्त होगा; इसलिए इस सन्धि प्रस्ताव के प्रपंच में पड़ी हो; परन्तु, तुम इसकी चिन्ता मत करो; यह बात सच है कि हम तुम्हारे पति का वध कर देंगे परन्तु तुमको अपने ठिकाने में रख कर तुम्हारा पालन पोषण भी करेंगे।" अपने भाइयों का ऐसा अयोग्य कथन सुनकर जयतलदेवी[7] ने कहा "पराक्रम करते समय मेरे पति का यश बढ़ेगा, यह तो ठीक है, मुझे इसका कोई भय नहीं है, परन्तु मेरे पिता का वंश समाप्त हो जायगा इसका विचार मुझे

---

5. वीरधवल-प्रबन्ध में लिखा है कि स्वयं वीरधवल ने ही धन के लोभ से यह प्रस्ताव तेजपाल को किया था। वीरधवलप्रबन्ध नामक कोई पृथक् प्रबन्ध नहीं है।

6. भाग 1 में जयतल देवी के पिता शोभनदेव के साथ पंचग्राम प्रसंग में वीरधवल का युद्ध होना लिखा है। उसमे वीरधवल आहत होकर गिर गया था। परन्तु, आगे पढ़ेंगे कि वह पंचग्राम में शोभनदेव के साथ नहीं लड़ा था अपितु भद्रेश्वर के भीमसिंह पढियार के साथ उसका युद्ध हुआ था। उसमें वह अपने उपरवट घोड़े पर से गिर पड़ा था परन्तु उसकी मृत्यु नहीं हुई थी।

7. खम्भात में कुन्तनाथ के मन्दिर में जो लेख है उसमें वयजल देवी नाम लिखा है—

बहुविग्रहसंगरचितमहसा वनहेलया श्रितया।
जयलक्ष्म्येव स देव्या वयजलदेव्या दिदेव नरदेवः॥
—(भावनगर लेखमाला, पृ. 125)

है। मेरा पति कैसा है, यह अभी तुम नहीं जानते हो। उसकी बराबरी करने वाला कौन है? अपने उपरवट अश्व पर आरूढ़ होकर बाण चलाता हुआ, भाला फेंकता हुआ, खड्ग से खेलता हुआ समस्त जगत् मे एकमात्र वही वीर मेरी आखों मे बसा हुआ है। अरे! अपने शत्रुओं के लिए तो वह साक्षात् काल के समान है। जिन लोगो को उसके हाथों और शक्ति का अनुभव नहीं है वही अपनी बड़ाइयाँ मारते है।" ऐसा कहकर जयतल देवी अपने पति के पास चली गई और जो कुछ बातचीत हुई वह सब उसने कह सुनाई। यह सुन कर उसकी आँखे क्रोध से लाल हो गईं, भ्रुकुटी तन गई और उसकी पूरी आकृति भीमसेन जैसी बन गई। उसने संग्राम करने की तैयारी की। उधर से वे दोनों वीर भाई भी सैन्य लेकर आए। भारी युद्ध हुआ; दोनों पक्षों के हजारों योद्धा रण में मारे गए; आकाशमण्डल मे धूल छा गई; ऐसा तुमुल युद्ध हुआ कि कौन अपना और कौन पराया है, इसका भी भान नही रहा। इतने ही में, दोनों लश्करों में ऐसी हाक पड़ी कि 'वीरधवल पड़ गया'; परन्तु, तुरन्त ही वह तो अपने दिव्य अश्व पर बैठा हुआ साँगण और चामुण्डराज के पास जा पहुँचा और उनको ललकार कर कहने लगा 'अरे सोरठियो! आ जाओ! बल हो तो खड्ग खड़काओ! नही तो, हार स्वीकार कर प्राण बचाओ; दोनों में से जो बात अच्छी लगे वही करो।' उन भाइयों का अन्त आ रहा था इसलिए उनको लड़ने की सूझी। आमने-सामने युद्ध हुआ। वीरधवल ने ऐसा पराक्रम दिखाया कि देवताओं के भी आसन डोल गए। उसने सागण और चामुण्डराज दोनों का एक साथ ही काम तमाम कर दिया। इसके बाद क्षेत्र की शुद्धि हुई; अपने और पराए मृतको की गति हुई (अन्तिम संस्कार किया गया) और घायलों की सार-सम्हाल की गई।

इसके बाद वीरधवल वामनस्थली मे गया और वहाँ उसने अपने सालों का सौ पीढी का एकत्रित किया हुआ कोटि-संख्या-परिमाण धन ग्रहण कर लिया। उसने 1400 दिव्य तुरंग, 500 तोजी घोड़े और माणिक, मोती आदि जो कुछ हाथ लगा वह सब ले लिया। सर्वत्र जय-जयकार हुआ। पूरे एक मास वहाँ रह कर उसने अपने साले के कुँअर को गद्दी पर बैठाया, उससे कर देते रहने का करार लिखाया और फिर वह आगे बढ गया। वाज, नगजेन्द्र, चूडासमा, वालाक आदि ठाकुरो से दण्ड लेता हुआ वह ठेठ द्वारका-बेट जा पहुँचा। इस प्रकार पूरे सोराष्ट्र से धन एकत्रित करके, सर्वत्र जय-जयकार बुलाता हुआ वह अपने मन्त्री तेजपाल सहित धोलका लौट आया। वहाँ उसका भव्य स्वागत हुआ और नित्य नये उत्सव होने लगे।

उस समय कच्छ देश में भद्रेश्वर वेलाकूल का भीमसिंह पडीयार (प्रतिहार) अपने बल पर सबसे जूझता था; वह बहुत समृद्ध था और किसी की आज्ञा नहीं मानता था। उसका ऐसा आचरण देखकर वीरधवल ने कहलाया 'तुम को हमारी आज्ञा के अधीन रहना चाहिए।' इसके उत्तर में उलट कर उसने कहलाया—"मैं

तुम्हारी आज्ञा के अधीन क्यों रहूँ ? बल्कि तुम मेरी आज्ञा के अधीन रहो।' उसके इस उद्धत व्यवहार से वीरधवल बहुत क्रुद्ध हुआ और उस पर चढ़ाई करने को उसने पूरे गुजरात के राजपूतों को एकत्रित किया। उधर, भीमसिंह तो सेना आदि लेकर तैयार बैठा ही था।

उन्हीं दिनों दिनों जाबालिपुर (जबलपुर) में उदयसिंह नामक राजकुल रावल राज्य करता था। वह चाहमान-कुल-भूषण श्री अश्वराज की शाखा के सुपुत्र समरसिंह का कुंवर था। इस उदयसिंह के तीन सगे भाई थे और वे सब एक ही माता के पुत्र थे। उनके नाम सामन्तपाल, अनगपाल और त्रिलोकसिंह या त्रिलोकपाल थे। ये तीनों भाई शूरवीर और दातार थे। उनको राज्य की ओर से जो ग्रास मिला था उससे वे सतुष्ट नहीं थे इसलिए अपना भाग्य आजमाने के लिए धोलका की तरफ निकल आए थे। उन्होंने वीरधवल को निवेदन कराया कि 'तीन क्षत्रिय राजसेवा में रहने के लिए आए है, आपकी इच्छा हो तो मिलने को आएँ।' वीरधवल ने उनको बुलाकर पूरा वृत्तान्त पूछा। उन्होंने बताया 'हमारे प्रत्येक के पास दो-दो लाख दाम की उपज का ग्रास है, परन्तु उसमें पूरा नही पड़ता है इसीलिए हम यहाँ आए है। यदि आपकी हमे रखने की इच्छा हो तो एक-एक लाख दाम लेंगे और आप रीझ जाओ ऐसी योग्य सेवा करेंगे।' राणा ने कहा 'इतनी रकम में तो सौ से भी अधिक योद्धा रखे जा सकते हैं। तुम ऐसा कौन सा धाड़ा मारोगे कि इतनी बड़ी रकम मांगते हो ? वाजबी बात कहो तो विचार किया जा सकता है।" तब तीनों भाइयों ने कहा, "यह आपकी इच्छा, हम तो इससे ओछी रकम में रहने के लिए तैयार नही है।" वीरधवल ने तो उनको पान के बीड़े देकर विदा कर दिया परन्तु वस्तुपाल और तेजपाल भी उस समय उपस्थित थे; उन्होने कहा 'स्वामिन् ! ये तीनों पुरुष सच्चे शूरवीर है, इनको वापस करना उचित नही है; ऐसे पुरुषों का संग्रह करना धन-संग्रह करने के बराबर है। कहा है कि—

गीति

नारी नर ने वारण वाजी, पाषाण ने वली वारी।
वस्त्रो विविध वर्णो पण, तेमाँ अन्तर गणाय अति भारी॥

ये सब होते तो अलग-अलग एक-एक ही हैं परन्तु एक का दूसरे से मूल्य में अन्तर होता है; मनुष्य भी, होता तो एक ही है परन्तु, एक तो एक दाम का दूसरा लाख दाम का। एक कच्छी कहावत है—

"आणंद चे परमाणंदा, मांडुए मांडुए फेर।
हिकड़ा लखें न जुड़े, बेया त्रांमिएजा तेर॥"

इसलिए ऐसे पराक्रमी पुरुषों को जाने नहीं देना चाहिए।' परन्तु, वीरधवल की कृपणता के आगे मन्त्रियों की बात नहीं चली।

अब, वे तीनों भाई सामने के पक्षवाले भीमसिंह के पास गए और वहाँ उन्होंने वीरधवल की कृपणता की कथा कह सुनाई। भीमसिंह ने बलवान के साथ विरोध किया था; उसको तो ऐसे शूरवीरों की आवश्यकता थी ही; इसलिए उसने प्रसन्न होकर उन्होंने जो माँगा था उससे दोगुना ग्रास देना स्वीकार करके उन्हें रख लिया। तब उन तीनों ने भीमसिंह को कहा, 'अब, आप वीरधवल को ललकार सकते हैं कि क्षत्रिय बच्चा है तो सत्वर युद्ध में आ जावे, नहीं तो शरण ग्रहण करे।' भीमसिंह ने भाट के द्वारा ऐसा ही कहला भेजा।

बाघ को छेड़ कर कोई सामने टिक सकता है क्या? वीरधवल ने जब से ये वाक्य सुने तो एड़ी से चोटी तक ज्वाला भभक उठी। उसने तुरन्त ही सेना तैयार की और भाट को आगे भेजकर भीमसिंह को कहलाया 'भले ही तुम पंचग्राम पर भिड़ने को आजाओ।' भीमसिंह भी अपनी सेना सजा कर निश्चित स्थान पर जा पहुँचा; आमने सामने दोनों सेनाएँ डटी हुई थीं; क्षत्रियों का सिंहनाद होने लगा; नर्त्तकों का नृत्य और गायकों के मधुर स्वर का आलाप गूँजने लगा; दाता मंगणों को दान देने लगे; अब जीने या मरने की घड़ी आ पहुँची है, ऐसा विचार निश्चित करने लगे। यह सब बनाव देख कर वस्तुपाल और तेजपाल ने वीरधवल से कहा, 'महाराज! आपने उन तीन मारवाड़ी सुभटों को नहीं रखा और उनको भीमसिंह ने रख लिया है; वह आज उन्हीं के बल पर गाज रहा है।' वीरधवल ने कहा, 'ऐसे क्षत्रिय तो अपने पास बहुत हैं। अपना सोढिय वंशी जेहुल, चौलुक्य, सोमवर्मा, और गुलगुलल्प क्षेत्रवर्मा, ये सब इनसे कम हैं क्या? विचारशील वीर पुरुष बीती हुई बात पर चिन्ता नहीं करते। इस समय तो 'अर्थं साधयामि किं वा देहं पातयामि' (करो या मरो), ऐसी ही भावना रखनी चाहिए।" इस प्रकार वार्तालाप हो ही रहा था कि उन तीनों भाइयों ने कहलाया, "प्रातःकाल आपको युद्ध में उतरना है और तीन लाख दाम खर्च करके जिन सुभटों को रखा हो उन्हें अपनी अंगरक्षा के लिए तैयार रखना है। सुबह होते ही पहले हम आप ही पर उतरेंगे।' राणा ने प्रसन्न मुख मुद्रा में कहा, 'तुमने मुक्ति पाने के लिए प्रातःकाल का बड़ा अच्छा समय चुना है; कल सवेरे-सवेरे सब से पहले तुम को ही सदा-सुखी करने के लिए मैं तुम्हारी खबर लूंगा।"

जब सन्देश वाहक यह खबर लेकर आया तो मारवाड़ियों ने कहा, अब, राम करे सो भली, अपने को तो इस प्रसंग में खरी नौकरी बजानी है।' उन तीनों ने अपनी एक वर्ष की पगार लेकर याचकों को बाँट दी और वे अपने-अपने घोड़ों पर चढ़कर युद्ध के लिए तैयार हो गए।

दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हुआ; शस्त्रों के प्रहार होने लगे; इतनी गर्द उड़ी कि चारों ओर मेघों का सा अन्धकार छा गया; उसमें सुभटों की तलवारें बिजली की तरह चमकने लगीं और प्रलयाग्नि के समान सनसनाते हुए बाणों की वर्षा होने लगी।

वीरधवल बड़ी सावधानी से लड़ रहा था; उसके अंग-रक्षक और मंत्रीगण आदि भी उसकी सम्हाल करने में बराबर लगे हुए थे। इतने ही में वे तीनों मारवाड़ी क्षत्रिय समीप में दिखाई दिए। उन्होंने वीरधवल को ललकार कर सचेत किया, 'अब, आप हो और हम हैं; सावधान हो जाइए, अपनी रक्षा करने वाले योद्धाओं को भी आज्ञा दे दीजिए।' वीरधवल ने कहा, 'अति-अभिमान करने वाले का अन्त भी आता है; अगर बाजुओं में बल है तो दिखाओ।' इस प्रकार कहा सुनी होते-होते शस्त्र-प्रहार होने लगा।

दोनों ही पक्ष, जितनी चाहिए उससे भी अधिक, सँभाल और सावधानी बरतने लगे। परन्तु, आसपास के रक्षक योद्धाओं द्वारा बहुत सावचेती रखने पर भी वे तीनों भाई वीरधवल तक पहुंच कर भेंटाभेंट हो ही गए। उन तीनों ने ही एक-एक भाला तान कर उसकी नोंक वीरधवल के कपाल पर टिका दी और कहा, "अब, तेरा वध करने में जरा भी कसर नहीं है परन्तु उस दिन हमने तेरी पान की बीड़ी खा ली थी इसलिए तुझे जीवित छोड़ देते हैं।" ऐसा कह कर उन्होंने उसको तो छोड़ दिया और आसपास के रक्षक योद्धाओं को मार गिराया। इतना करने में उन मारवाड़ियों के शरीर भी छिद कर चलनी हो गए। फिर भी उन्होंने वीरधवल को घसीट कर उसको उपरवट घोड़े से नीचे गिरा लिया और उस घोड़े को ले जाकर किसी गुप्त स्थान में बाँध दिया। धूल इतनी छा गई थी कि अन्धकार हो गया परन्तु फिर भी वीरधवल के सुभट उसको उठा ले गए। संध्या समय युद्ध बन्द हो गया और दोनों पक्षों के वीर अपने-अपने शिविर में चले गए।

रात्रि को भीमसिंह के सेवक कहने लगे 'हमने वीरधवल को गिरा लिया था।' यह सुन कर मारवाड़ियों ने कहा 'यदि ऐसा है तो कोई निशानी बताओ।' परन्तु, वे ऐसा कोई प्रमाण नहीं बता सके तब मारवाड़ियों ने लाकर उपरवट घोड़ा भीमसिंह के सामने पेश कर दिया। यह देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा 'खरे राजपूत को दिया हुआ धन सौगुना होकर निकलता है। ये सच्चे शूरवीर हैं। युद्ध में सुभट का हय हरण करना ही शूरवीरता का शृंगार है।' इस प्रकार बातें करते-करते वे प्रसन्न होते रहे और रात बीत गई।

इधर, वीरधवल को घेर कर मारवाड़ियों ने उसके कपाल पर भाले टेक दिए थे इसलिए कुछ घायल को कर वह कमजोर अवश्य हो गया था परन्तु, प्रात:काल उठ कर वह तो सौकटाँ की बाजी माँड़ कर खेलने लगा। भीमसिंह के हरकारों ने आ कर कहा 'तुम लोग तो शत्रु को मारा गया समझ रहे हो और वह तो वहाँ बैठा-बैठा सौकटाँ खेल रहा है। इस पर भीमसिंह के सलाहकारों ने कहा,[5] 'देव ! यह

5. व्रजलाल शास्त्री ने लिखा है 'वीरधवल के मंत्रियों ने भीमसिंह को कहलाया।'

तो गहरी जड़ जमाए खड़ा है, पूरे देश का स्वामी है। इसके साथ विशेष झगड़ा करना उचित नहीं है, सन्धि कर लेने में ही लाभ है।

यह बात भीमसिंह के गले उतर गई परन्तु उसने संग्राम की तैयारी तो चालू रखी। दोनों सेनाएँ फिर भिड़ने को तैयार हुई, इतने में भाट के द्वारा समाधान हो गया। उपरवट अश्व राजा को लौटा दिया गया। एक मात्र भद्रेश्वर भीमसिंह के पास रहा, इसके अतिरिक्त उस पर कोई दवाव नहीं डाला गया; उसने भी सब कुछ कबूल कर लिया। इसी तरह, नकीब पुकारते समय राजा का विरुद बखानता है, वह ऐसा नहीं करेगा, यह उसने स्वीकार किया। फिर वीरधवल दान-दक्षिणा बांटता हुआ धोलका लौट आया।

इसके बाद वीरधवल ने धीरे-धीरे भीमसिंह की जड़ काट डाली और उसकी समस्त भूमि अपने अधीन कर ली।

पहले लिख चुके हैं कि उस समय अणहिलवाड़ा में चक्रवर्ती राजा भीम (द्वितीय) था। उसको मंडलीक राजा गांठते नहीं थे। वे सब धीरे-धीरे स्वतन्त्र हो चले थे। उन सबको भी वीरधवल ने एक-एक कर के वश मे कर लिया। कितने ही तो बिना युद्ध किए ही आकर झुक गए। इससे वीरधवल को बहुत धन मिला जिससे वह अपना लश्कर बढ़ाता चला गया। उसने उच्च कुल के चौदह नामी राजपूत अपने पास रखे। वे निरन्तर उसके साथ रहते थे, खाना-पीना और उठना-बैठना सब कुछ साथ ही होता था; उनके पहनने ओढ़ने और सवारी आदि की भी सब व्यवस्था उनके सम्मान के अनुकूल ही होती थी। इस प्रकार एक मन के राजपूतों के साहाय्य, सैन्यबल और अपने भुजबल एवं प्रबल प्रताप से उसने बड़े-बड़े बलवानों को वश में कर लिया। यह सब व्यवस्था उसने तेजपाल को सौंप रखी थी, वही उसका सेनापति था।

महीकांठा में गोध्रा (गोद्रह) नामक नगर है। उस समय वहाँ घूघुल नामक मंडलीक राजा राज्य करता था। वह वीरधवल की अवज्ञा करने पर उतारू हो गया। गुर्जरदेश से जो संघ आता उसको रोककर तरह-तरह से तंग करता, विणजारों का माल लूट लेता। ऐसा देख कर मंत्रियों ने एक भाट को भेज कर कहलाया, 'तुम हमारे स्वामी की आन नहीं मानते हो इसलिए जो दशा सांगण और चामुण्ड की हुई वही तुम्हारी होगी।' यह सुनकर वह बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने अपने भाट को काजल से भरी एक डिब्बी और स्त्रियों के पहनने की एक साड़ी देकर फरमान किया कि 'यह सामग्री जाकर वीरधवल को दो और कहो कि हमारे अन्तःपुर में बहुत-सा राजलोक भरा हुआ है।"

वीरधवल के भाट को भी छुट्टी दे दी गई इसलिए वे दोनों ही साथ-साथ धोलका पहुँचे और राजा के दरबार में उपस्थित होकर उन्होंने काजल की डिब्बी व साड़ी प्रस्तुत कर दी तथा जो कुछ हकीकत थी वह बयान कर दी। वीरधवल

ने बहुत संयम से काम लिया, बड़ी शान्ति के साथ उनकी बात सुनी और फि
घूघुल के भाट को सत्कार करके विदा कर दिया। फिर, उसने अपनी सभा मे
बीड़ा फेर कर कहा, 'घूघुल से युद्ध करने को कौन बीड़ा झेलता है ?' किसी ने
भी बीड़ा नहीं उठाया परन्तु तेजपाल ने उसको उठा लिया। वह उन चौदह
राजपूतों को साथ लेकर रवाना हो गया। जब गोध्रा थोडी दूर रह गया तो उसने
अपनी सेना के दो विभाग किए; एक टुकडी तो गोधरा की तरफ़ रवाना कर दी
और दूसरी को पीछे छुपा कर रखी। आगे वाली टुकड़ी ने गाँव के पास पहुँच कर
कुछ ग्वालों से लापड़झापड़ की और उनसे गोधरा की गाएँ छीन कर हाँक लाए।
उधर, वे ग्वाले रोते-झींकते घूघुल के पास फ़रियाद करने पहुँचे। उसने विचार किया
कि 'आज तक मेरी राजधानी के नगर के पास से कोई भी गाएँ ले जाने की हिम्मत
नहीं कर सका। ये क्या कहते हैं ? यह तो जरूर कोई नई बात है। किस के माथे
मे लोहे के गज घुसे है कि हमारे काँकड़ में आ कर गायों का हरण कर ले
जाय ?"

घूघुल घोड़े पर सवार हुआ और लश्कर साथ लेकर गाएँ ले जाने वालों की खोज में आगे चला। वे लोग भी कभी उस पर बाण फेकते, कभी दिखाई दे जाते और फिर छुप जाते; इस तरह करते-करते वे उसे तेजपाल की बड़ी सेना के आसपास ले गए। अब घूघुल समझ गया 'प्रपंच करके मुझे गुजरात की सेना के सामने लाया गया है, परन्तु कोई चिन्ता नहीं है। यह सोच कर उसने अपने सुभटों को ललकारा, देखते क्या हो ? आगे बढ़ो, युद्ध करो।' यह कहकर वह पूरी तरह सावधान हो गया और उसने मारकाट चालू कर दी। तेजपाल की सेना भी युद्ध के आदर मे आ गई। बहुत देर तक मारा-मारी चलती रही। अन्त में, घूघुल ने तेजपाल की सेना को बिखेर दिया और वह चारों तरफ भागने लगी। इस प्रकार जब घूघुल की विजय होती देखी तो तेजपाल ने अपने साथ के सात शुद्ध राजकुलियों को कहा, 'शत्रु तो महाबली है; तुम इस तरह किनारे खड़े क्या देखते हो ? अपनी सेना अस्तव्यस्त हो गई है। हम लोग भी भागेंगे तो क्या गति होगी ? इस तरह हार खाने से तो लड़ कर मर जाने में यश है। इसलिए टूट पड़ो, हम सब मिल कर शत्रु का नाश कर देंगे।' इस प्रकार उत्साहित करने पर उन सातों राजपूतों के सूरापन चढ़ा और वे आठो शत्रु पर टूट पड़े। उनको बाणों का प्रहार करते देख जो लोग भाग रहे थे वे भी इकट्ठे हो गए। कहते है कि उस समय तेजपाल को उसकी कुलदेवी ने दर्शन दिए और कपर्दियक्ष भी प्रत्यक्ष सामने आया। तभी उसके अन्तःकरण में विश्वास हो गया कि 'अब, अपनी विजय होगी।' उसने प्रबल आक्रमण किया और वह घूघुल के पास जा पहुँचा। तुमुल युद्ध होने लगा। तब तेजपाल ने घूघुल को कहा, 'हे मण्डलीक ! तूने जिन हाथों से हमारे राजा के लिए काजल की डिब्बी और साड़ी भेजी थी, उन हाथों का बल बता।' घूघुल ने उत्तर दिया, 'उतावली मत करो,'

अभी अपने हाथ तुम को दिखाता हूं।' ऐसा कहकर वह तेजपाल पर शस्त्रास्त्र का प्रहार करने लगा। अति दारुण द्वंद्व युद्ध हुआ। अन्त में, मन्त्री ने धूधुल को घोड़े पर से पटक लिया और उसे जीवित ही पकड़ कर, पहले से तैयार कराए हुए, लकड़ी के पिंजरे में बाँध कर डाल दिया। फिर, तेजपाल ने सेना सहित गोधरा नगर में प्रवेश किया। वहाँ धूधुल के ही कुल के सेवक एक राजपूत को उसने गद्दी पर बैठाया और अट्ठारह कोटि सुवर्ण कोश, एक हजार घोड़े,[6] चार मुड़े (मुंडक) हो जावें इतने मुक्ताफल, दिव्य आभूषण, दिव्य अस्त्र आदि इच्छानुसार वस्तुएँ उससे ग्रहण कीं। यह सब लेकर मन्त्री धोलका लौट आया।

धूधुल को राजसभा में लाया गया। वही साड़ी उसको पहनाई गई, फिर उसी डिब्बी में से उसकी आँखों में काजल आँजा गया। इस प्रकार उसने जैसा कहा था वह सब उसी पर घटित हुआ। यह अपमान उसे सहन नहीं हुआ इसलिए अपने दाँतों से ही अपनी जीभ चबा कर वह वहीं मर गया। पूरे धोलका नगर में उत्सव मनाया गया, बधाइयाँ गाई जाने लगीं और राजा ने बड़ी सभा में तेजपाल को सम्मान दिया तथा उस पर कृपादृष्टि की वृष्टि की।

इस प्रकार धूधुल को धोलका लाते समय तेजपाल पहले दर्भावती (डभोई) आया। वहाँ भी बहुत अव्यवस्था चल रही थी। लुटेरों की टोलियाँ चारों तरफ घूमती रहती थी और अचानक ही लोगों पर हमला करके उन्हें लूट लेती थीं। इस कारण इस भाग का सारा व्यापार-व्यवहार प्रायः बन्द हो गया था। इस अव्यवस्था को समाप्त करने के लिए राणा की बड़ी उत्कण्ठा थी। जब से गोधरा और लाट देश के सामन्तों को जीत कर राणा ने अपनी सत्ता कायम की थी तभी से वे सब इस सत्ता को उखाड़ फेंकने व पुनः स्वतन्त्र होने की योजना बनाते रहते थे। इसीलिए वे देश मे लूटपाट करने पर उतारू हो गए थे। उन्होने अलग-अलग टोलियाँ बना ली थी और धूधुल भी उनमें शामिल होता रहता था। इसलिए तेजपाल ने उस पिंजरे को एक बड़े हाथी पर बांध कर साथ ले लिया और वह उसे सभी जगह घुमाता था। उसे देखने के लिए लोगों के टोले के टोले आते थे और अपने को दुःख देने वालों की दुर्दशा देखकर प्रसन्न होते थे। साथ ही, उनके मन में यह विश्वास उत्पन्न होता था कि अब देश में शान्ति स्थापित हो जावेगी।

डभोई के चारों तरफ परकोटा होना आवश्यक जानकर तेजपाल ने उसी समय उसकी चिनाई आरम्भ करवा दी और अन्य धर्मस्थानों की निर्माण-सम्बन्धी योजना पर भी विचार करने लगा।

नर्मदा तट पर स्थित चाणोद नामक पवित्र धाम की यात्रा करने बहुत से लोग जाते हैं। ऐसा लगता है कि उस स्थान की सम्हाल करना भी तेजपाल के

---

6. व्रजलाल शास्त्री ने 4 हजार घोडे और एक मुंडक मुक्ताफल लिखा है।

ध्यान में रहा होगा। यह धाम नर्मदा और 'ओर' नदी के संगम पर स्थित है। वहां पर पहले से ही सभी धर्मों के स्थान रहे होंगे। आज भी वहाँ के मुख्य देवालयों में कपिलेश्वर महादेव, काशी विश्वनाथ, चण्डिका, आदित्येश्वर, रामचन्द्रजी, श्रीवाराही माता, कमलेश्वर, हनुमान जी और शेषशायी भगवान् के मन्दिर हैं। इनमें से शेषशायी भगवान् के धाम की यात्रा का मेला कार्तिक शु. 13 से कृ. 2[7] तक भरता है। इस अवसर पर समस्त गुजरात में से भावुक भक्तजन वहाँ जाते हैं। चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन संगम पर भारी मेला भरता है। ऐसे प्रसिद्ध धाम के आस-पास के क्षेत्रों में सुख सुरक्षा की व्यवस्था रहे तो यात्रालु लोग वहाँ स्वस्थ चित्त से जा सकते हैं।

यहाँ आकर तेजपाल ने अपने स्वामी के नाम से वीरधवलेश्वर देवालय का निर्माण आरम्भ कराया। एक भव्य धर्मशाला व चाणोद के पास ही कुम्भेश्वर के आगे पाँच मठ बनाने का भी काम शुरु हुआ।

वहां से चल कर वह पावागढ़ पहुँचा। वहां दो मास तक ठहर कर उसने सर्वभद्र का देवालय बँधाने का आयोजन किया। इस बीच में जिन लूटपाट और उपद्रव करने वालों की उसको जानकारी मिली उन सभी का उसने संहार कर दिया। इस प्रकार पूरे प्रदेश में सुख शान्ति स्थापित करके और प्रजा के मन में जो त्रास बैठ गया था उसको दूर करता हुआ तथा घूघुल का वरघोड़ा (सवारी) निकालता हुआ वह अपने देश में जा पहुँचा।

धोलका और स्तम्भतीर्थ (खम्भात) की अधिकारमुद्रा प्राप्त करने के बाद शुभ मूहूर्त देखकर वस्तुपाल (खम्भात) गया। उस प्रसंग पर नगर के लोगों ने बड़ी धूमधाम से उसका स्वागत किया; स्थान-स्थान पर उत्सव मनाये गये; जगह-जगह तोरण बँधाए गये, भाँति-भाँति के वस्त्रालंकारों से सुसज्जित, मंगल गीत गाती हुई, सिर पर चमकते हुए मंगलकलश लिए सौभाग्यवती स्त्रियाँ अगवानी करने चलीं; नाना प्रकार के वादित्र (बाजे) बजने लगे; और समस्त नगर खाली हो गया क्योंकि सभी (आबालवृद्ध) उसका स्वागत करने को अगाऊ चले गये। कहते हैं कि—

गीति

धरती धान्य बड़े ज्यम, सर जल, ने वन फूल फल बहु भात;
त्यम वस्तुपाल पगले, कहेवायु धन्यं खूब खम्भात ॥

वस्तुपाल से पहले के अधिकारियों के समय में प्रजा को जो पीड़ा और त्रास भोगनी पड़ रही थी उस सब को दूर करने की योजना और उपाय सोचे गये; नाना प्रकार की सुधार योजनाओं पर विचार किया गया; सब प्रजा को सुखी करने के लिए दुष्ट अधिकारियों और दरबारियों का निरन्तर सालनेवाला शूल मिटा दिया

---

7. अमान्त मास के हिसाब से।

गया। वस्तुपाल सुन्दर रीति से प्रजा का पालन करता था; प्रजा को किसी प्रकार की पीड़ा न पहुँचे, इस विषय में वह अपने सेवकों को टोकता रहता था; सब प्रकार से न्याय रूपी सूर्य की किरणों का सर्वत्र प्रसार हो रहा था। समस्त प्रान्त में चोरी एवं व्यभिचार जैसे दुर्गुणों को समूल नष्ट करने को उसने अथक प्रयत्न किया। कहते हैं कि उस समय गणिकाएं भी अपनी हाट बन्द करके एकपतिव्रत लेकर बैठ गई थीं। उसके कार्यकाल में भले और योग्य पुरुषों की पूछ तथा निकम्मे पुरुषों का तिरस्कार होने लगा; इससे उनका अन्त आ गया; तात्पर्य यह है कि सभी लोगों को अपना निर्वाह करने के लिए सद्गुणी होना आवश्यक लगने लगा।

बन्दरगाह होने के कारण खम्भात में बहुत से वाहण–वाटिया (नाविक दस्यु) भी थे; वे लोगों की स्त्रियों और बच्चों को हर कर नावों में डाल लेते और परदेश में ले जाकर उनको बेच देते। ऐसे दुष्ट कार्यों की भी वस्तुपाल ने रोकथाम की। छोटी-छोटी बातों के लिए भी लोगों को बहुत मुसीबत उठानी पड़ती थी, इस ओर भी उसने पूरा ध्यान दिया। दही-बिलौना करने वाले लोभी नगरवासी पैसे लेकर छाछ बेचते थे इसलिए गरीब लोगों को छाछ मिलना भी मुश्किल हो गया था। अतः उसने छाछ बेचने की चाल बन्द कर दी। वह सबसे इस तरह बातचीत करता था कि उसकी वाणी अमृत जैसी लगती थी।

वस्तुपाल स्वयं बहुत अच्छा विद्वान् था, काव्यरचना करता था, काव्यकला का पारखी था इसलिए बड़े-बड़े विद्वान् उसके आश्रय में आकर रहते थे और वह सभी का यथोचित सम्मान करता था। स्तम्भनगरी (खम्भात) की शोभा बढाने के लिए उसने जगह-जगह बाग बगीचे लगवा कर सरोवरों का निर्माण करा दिया था। बहुत-सी बावड़ियां बनवा कर प्रवासियों को जल-कष्ट न हो इसलिए जगह-जगह प्याउए लगवा दी थीं। वह स्वयं जैनधर्मावलम्बी था परन्तु अन्य सभी धर्मों का आदर करता था। वेदधर्म पर उसकी आस्था थी। मतलब यह है कि वह स्वयं विद्वान् था इसलिए शास्त्रतत्व को जानता था; जैनधर्म उसका कुलक्रमागत धर्म था इसलिए वह उसका पालन करने में तत्पर रहता था; फिर भी, वह अन्ध-धर्माभिमानी नहीं था। राज्य के और राजा के कर्मचारियों के लिए धर्मसम्बन्धी मामलों मे तटस्थ रहना आवश्यक है, इस बात को वह अच्छी तरह समझता था। खम्भात में, अच्छे-अच्छे घर चिनवा कर उनको एक वर्ष चले इतने धान्यादि सामान से परिपूर्ण करके उसने विद्वान् ब्राह्मणों को अर्पण किया; इस तरह वहाँ ब्रह्मपुरी स्थापित की। इससे जहाँ ब्राह्मण अपने सामवेद का गान करके वायुमण्डल को वेदध्वनिपूरित रखते वहाँ उनकी स्त्रियां वस्तुपाल के प्रशस्तिगीतों के आलाप से खम्भात की गलियों को गुंजाती रहती थीं। सन्यासियों के निवास के लिए उसने मठ बनवा दिए थे। जैनधर्मी साधुओं और आर्याओं के लिए पौशधशालाएँ (पोसालें) निर्मित करा दी थीं। इस प्रकार वह सन्मार्ग का आचरण करता हुआ न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता था, इसलिए सभी लोग उसका सम्मान करते थे।

सिन्धुराज का पुत्र शंख

उस समय सिन्धुराज का पुत्र शंख बहुत उन्मत्त हो गया था। कुछ लोग उसको सिन्धदेश का कुछ गोलवाड़ का और कुछ वड़वा बन्दर का राजा कहते थे। उसके देश को गुजरात के राजा ने जीत लिया था इसलिए उसके मन मे बहुत जलन थी। गोहिलवाड़ मे वडवा (वडुआ) गाँव बहुत प्राचीन माना जाता है। पहले उस प्रदेश की वही राजधानी थी और उस समय शंख वहीं पर रहता था। भाग 2 मे इस विषय का थोडा सा वृत्तान्त लिखा गया है जिसका कुछ विस्तार से विवरण देना आवश्यक है। कीर्तिकौमुदी मे शख द्वारा खम्भात पर आक्रमण का कारण तो नहीं लिखा है परन्तु वस्तुपाल तेजपाल के सम्बन्ध में जो विस्तृत विवरण दिया है वह इस प्रकार है—

वस्तुपाल ने जब खम्भात में पहले पहल प्रवेश किया और वहाँ के बड़े-बडे लोगों ने जो उसका स्वागत सत्कार किया उस समारोह मे वहां के एक मुसलमान जहाजी व्यापारी ने भाग नही लिया। उसका व्यापार सभी बन्दरगाहों पर चलता था इसलिए उसके पास बहुत-सा धन एकत्रित हो गया था। इसीलिए विभिन्न बन्दरगाहों के शासकों से भी उसका बहुत मेलजोल था। शंख के साथ तो उसका बहुत ही गहरा सम्बन्ध था इसलिए वह किसी की परवाह नही करता था; अपने धन के मद में चूर रहता था। जब वस्तुपाल को उसकी ऐसी उद्धतता के बारे मे मालूम हुआ तो उसने ऐसा व्यवहार छोडने के लिए एक भाट द्वारा कहलाया "राज्य के प्रतिनिधि के रूप में मुझसे यहां के सभी साहूकार मिलने आते हैं परन्तु तुम क्यों नही आते हो ?" इसका उत्तर उसने यह दिया कि "पहले से ही मैं किसी अधिकारी के घर मिलने नही जाता हूं; ऐसा करना मेरे घर की रीति नही है। उलटे, अधिकारी ही मुझसे मिलने आया करते है और तदनुसार तुम मेरे पास नही आए, वह मुझे अच्छा नही लगा क्योंकि मै तो स्थानपति हूँ; मैं तुमसे किसी बात मे कम नही हू; तुमको किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मँगवा लेना, मै भेज दूँगा।" उसके इन वचनों से वस्तुपाल को बहुत क्रोध आया और उसने कहला दिया 'तुमको अपनी योग्यतानुसार वर्ताव करना चाहिए अन्यथा तुम्हारे दुर्विनय के लिए तुमको शासित करना पड़ेगा (सबक सिखाना होगा)।"

उस मुसलमान व्यापारी ने इसका कोई उत्तर नही दिया परन्तु उसने यह सब किस्सा शंख को सूचित करते हुए कहलाया कि वस्तुपाल मेरी बेइज्जती करेगा, अब मैं क्या करूँ ?' शंख के बारे मे कहा जाता है कि वह ऐसा बली था कि यदि बेर की लकड़ी का मुशल पचास बांसों के बीच मे भी बांध दिया जाता तो वह तलवार के एक ही वार मे उसको काट डालता था। उसके पास बहुत ज्यादा सेना होने से वह 'साहण-समुद्र' कहलाता था। अपने मुलाकाती पर दबाव डालने के विरुद्ध उसने वस्तुपाल को कहलाया, 'तुम्हारे नगर मे रहने वाला सिद्दीकी मेरा मित्र

है और वह हमारा ही जहाजी व्यापारी है। मेरे रहते तुम उससे कोई छेड़छाड़ न करना।' यह सुनकर तो वस्तुपाल को और भी अधिक रोष आया और उसने कहला दिया, 'श्मशान के भूतों से मुझे कोई डर नहीं लगता; तुम्हें यदि हमसे झगड़ा ही करना है तो खुशी से अपनी सेना लेकर आ सकते हो।' शंख ने सेना तैयार करना शुरू कर दिया। यह जानकर वस्तुपाल ने भी धोलका से योद्धा बुला लिए और युद्ध की पूरी तैयारी कर ली।

यहाँ से कीर्तिकौमुदी के कर्त्ता सोमेश्वर का कथन मिलता है—

देवगढ के सिंघण की सेना जब चढ़ कर आई तो चार मारवाड़ी राजा भी लवणप्रसाद के विरुद्ध आए थे। उन्होंने लाट और गोधरा के मंडलीकों को भी फोड़ लिया परन्तु लवणप्रसाद ने उन पर आक्रमण करके सबको पराजित कर दिया था। इतना होते हुए भी, जैसे देहधारी को छः प्रकार[8] के विकार सताते ही रहते हैं उसी प्रकार इन छहों राजाओं को जीतने के लिए उस नृपवीर ने योग-साधन किया था। इस सन्धि की लाग लेकर सिन्धुराज के पुत्र शंख ने, जो गर्व में भर कर समस्त विश्व को तृण-समान समझता था, वस्तुपाल के पास एक प्रणिधि (सन्देशवाहक) को भेजा। चुलुक-भूपाल का अमात्य वस्तुपाल बड़ा-से-बड़ा भय उपस्थित होने पर भी निराकुल रह सकता था। प्रणिधि ने आकर प्रणाम किया और इस तरह मद-गर्भित विनयच्छन्न वाक्य बोलने लगा, 'समरभूमि में शत्रु-सुभटों द्वारा फेंके हुए शस्त्रास्त्रों को हमारा स्वामी ही धारण करता है, अथवा संसार में जो निराश्रय हो जाते हैं उनको ऐसे (हमारे स्वामी जैसे) लोगों के अतिरिक्त कौन शरण दे सकता है? अथवा दूसरे अर्थ में कहूं तो, सुभटों ने जिन शस्त्रास्त्रों को छोड़ दिया वे निराश्रय हो गये, उनको धारण करने अर्थात् शरण में रखने में समर्थ इस जगत में शंख जैसे विरले ही हे। सिंघण के साथ लड़ते समय हमारे शंख का बहुत सा लश्कर नष्ट हो गया था परन्तु उसको बहुत श्रम करके किसी तरह अनेक यादवों ने पकड़ लिया तथापि उनके तथा दूसरों के हृदयों में उसने अपने गुणों के कारण विश्रम्भ (विश्वास) प्राप्त किया था।

यादवों में सिंह के समान उस सिंघण ने शंख को देखते ही बन्धनमुक्त करके अपने भुज-पंजर में समेट लिया था। गुणियों को कहाँ प्रतिष्ठा नहीं मिलती? सभी जगह मिलती है। उसके सद्गुणों के कारण ही सिंघण ने उसको इतना मान दिया है। आप जानते है, वह कैसी माता का पुत्र है? जब सिंघण की सेना के साथ भयंकर युद्ध करता हुआ वह यादवों द्वारा पकड़ लिया गया तो उसकी माता को

---

8. देहधारी के छः विकार ये हैं–1–काम, 2–क्रोध, 3–लोभ, 4–मद, 5–मत्सर और 6–मोह; अथवा, 1–अस्ति, 2–वर्द्धते, 3–जयते, 4–अपक्षीयते, 5–विपरिणयते और 6–विनश्यति।

उतनी लज्जा का अनुभव नहीं हुआ जितना कि जब समान बल वाले शत्रु ने उसको मुक्त करके उससे भेंट की। ऐसी माता के कुलदीपक पुत्र शख ने, जो सङ्कट मे भी अपने कुलधर्म को नही छोड़ता, मेरे द्वारा आप मन्त्रशिरोमणि के लिए जो हितकर सन्देश भेजा है, वह सुनिए—'आप जैसे प्रबुद्ध सचिव जिसको पद-पद पर करावलम्ब (कर = हाथ या लगान का सहारा) देते रहते हैं, ऐसा वह श्री लवणप्रसाद का पुत्र (वीरधवल) सत्य के मार्ग से, यद्यपि वह विषम है, कैसे विचलित हो सकता है ? मैं जानता हूं कि आप छहों गुणो मे निपुण है, फिर भी आप मे यह धीरता कहाँ से आ गई कि आपके स्वामी पर सकट आ पड़ने पर भी निःशंक होकर अकेले अधिकार चलाते रहते हो ? आप जानते है कि यह पत्तन (नगर) हमारा पितृभुक्त (बाप दादों का भोग्य) है इसलिए मैं अपना अधिकार ग्रहण करने आया हूं। आप समय को पहचानते है इसलिए यह मेरा नगर (खम्भात) मुझको अर्पण कर दो। यदि आपके मन में विश्वास हो और इस नगर पर अधिकार रखने की वासना हो तो मेरे पास आकर प्रणाम करो, आपकी अधिकार-मुद्रा में कोई अन्तर नही आवेगा; हमारी प्रसन्नता रही तो वह आपसे दूर नही होगी अन्यथा हम अपने पैतृक नगर मे कोई दूसरा अधिकारी नियुक्त करेंगे; परन्तु, यदि आप हमारे पास आ जावेंगे तो वह मुद्रा आपके पास ही स्थिर रहेगी क्योंकि जिनमें प्रभुत्व होता है उन्हें तो गुण प्यारे होते है। और, यदि आपके मन में कोई और बात हो या ऐसा करने की इच्छा न हो तो वह भी हमारे लिए तो अच्छा ही है क्योंकि किसी भी असाध्य विरोध को सिद्ध करने के लिए हमारा खड्गदण्ड सदा तैयार रहता है। मिथ्या गर्व में भर कर जो प्रभु की छोटी-सी इच्छा का भी विरोध करता है तो वह (प्रभु) कुपित होकर उसको दण्ड देता है और यदि वह प्रभु की इच्छा का पालन करता है तो वह उसको जीवन-दान के साथ-साथ बहुत-सा धन भी प्रदान कर देता है।'

प्रणिधि की ऐसी बात सुनकर वस्तुपाल को दुःख तो हुआ परन्तु उस मन्त्री ने अपना मनोविकार प्रकट नही होने दिया क्योंकि पवन से उड़कर पड़े हुए रज-कणों से देवनदी गंगा का प्रवाह मलिन नही होता। उस जगद्बन्धु (वस्तुपाल) ने प्रणिधि को कहा, तुमने अपने स्वामी के चरित्र का जो बखान किया है उसको सुन कर कौन चमत्कृत नही होगा ? क्योंकि सूर्य के तेज के समान सिन्धुराज के पुत्र (शंख) के दुस्सह तेज के कारण यादवेन्द्र दावानल ने शुष्क देह वाले लक्ष्मदेव को दग्ध कर दिया। युद्ध में अति प्रीति रखने वाले (अति रणरसिक) हमारे स्वामी वीरधवल के बल के विषय मे बखान और स्तुतिगान युवती स्त्रियों के कोलाहल द्वारा मृत्युलोक के अन्यान्य सुभटों के कर्णमार्ग में पहुंचते रहते है; वह तुम्हारे स्वामी को ज्ञात न हो, यह सम्भव नही है। अश्व-सैन्य की सहायता प्राप्त होने हुए भी हमारे नृपसिंह ने विग्रह (युद्ध) करके जो नगर सिंह (संग्रामसिंह शंख) से बलपूर्वक लिया है उसी को माँग कर वह (शंख) वापस लेना चाहता है, इससे मेरी समझ मे तो यह आता

है कि उसकी मति विपरीत हो गई है। तुम्हारे राजा का यह मानना कि मेरा स्वामी बहुत से राजाओं के साथ युद्ध करने में अक्षम है, यह मिथ्या है। वह इसके लिए पूर्णतया समर्थ है। जिनका निश्चय निश्चल होता है उन पुरुषों के क्रियाशील होने पर देवता भी सहायता करने आ पहुंचते हैं। वकपाटक (बगवाड़ा ग्राम)[9] और सिद्धेश्वर स्थान के युद्ध में जो कुछ हुआ वह क्या उसने नहीं देखा। जो समझदार हो कर भी यों पृथ्वी प्राप्त करना तमाशा समझता है? पिता का धन प्राप्त करना यह व्यवहार दूसरे लोगों के लिए उचित हो सकता है परन्तु दूसरों की सम्पत्ति प्राप्त करने की इच्छा लेकर राजाओं के लिए तो खड्ग-दण्ड का व्यवहार ही समुचित है। इसलिए जाओ और जैसा मैंने कहा है वैसा ही अपने स्वामी को निवेदन कर दो; साथ में, यह भी कहना कि 'हे देव! आप सब कुछ जानते हो, इस (मिथ्या) गर्व को छोड़ दो! अन्यथा मैं तैयार हूं, आप विचार करके जैसा अच्छा लगे वैसा करो।'

सचिव-चक्र में शक्र के समान वस्तुपाल के ऐसे वचन सुनकर वह प्रणिधि रोष में भरकर पुनः कठोर शब्दों मे कहने लगा, "अरे, यह क्या कहते हो? मद के कारण तुम्हारी बुद्धि मन्द हो गई है; मेरे स्वामी के निश्चय का अभी तुम्हें ज्ञान नहीं है। तुम्हारे विरुद्ध शस्त्र धारण करने में वह लज्जा का अनुभव करते हैं। तुम्हें मालूम नहीं कि उस वीर ने अकेले ही घनी सेना के धनी सिंघण की भी रणक्षेत्र मे कोई परवाह नहीं की। तुम्हारे मन में कोई ऐसे विचार का कण भी विद्यमान हो कि तुम उसका सामना कर सकोगे तो उसे निकाल कर दूर कर दो। इस घमण्ड को छोड़ दो और साथ ही, यदि नीति जानते हो तो, इस कवच को भी उतार दो तथा इस मार्ग पर चलने का विचार भी तज दो।"

ऐसी बातें कह कर वह प्रणिधि वस्तुपाल के पास से चला गया और उस बुद्धिमान ने अपने स्वामी के पास आकर स्पष्ट निवेदन कर दिया कि वस्तुपाल का इरादा सोलहों आने युद्ध करने का है। उसने जो कुछ बातचीत हुई थी उसका भी व्यौरेवार वृत्तान्त कह सुनाया जिसको सुन कर सिन्धुराज का पुत्र इस तरह उबल पड़ा जैसे पवन के वेग से सागर में हलचल पैदा हो जाती है। पवन से प्रेरित होकर जिस तरह वन को जला डालने के लिए अग्नि वेग से आगे बढ़ता है उसी प्रकार शत्रु को भस्मीभूत करने के लिए अग्निरूप शंख की कूच करने की इच्छा प्रबल होने लगी। कल्पान्त के समय यमराज के साथ जैसे शम्भु भयंकर रूप धारण कर लेते हैं वैसे ही करवालधारी सिन्धुराज-पुत्र शंख भी उस समय भयकर प्रतीत होने लगा। प्रलय के समय जैसे महादेव के तृतीय नेत्र से आग बरसती है उसी तरह क्रोधित हुए

---

9. मूल इस प्रकार है—'बकपाटकचेष्टितं न दृष्टं न च सिद्धेश्वर-सन्निधान-युद्धम्।'

शंख की भृकुटी का तनाव भी उस समय कुछ ऐसा भीषण बन गया कि उसके नेत्र आग उगलते हुए से जान पड़ने लगे। स्वभाव से हंसमुख शंखपाणि (विष्णु) की सी शरीर-कान्ति वाला शंख उस समय बिजली वाले शुभ्र मेघ की तरह सभी को भयभीत कर रहा था। जब उसने कूच किया तो घोड़ों की टापों से उड़ी हुई रज के पटल-रूप बादल इस तरह छा गए कि अकाल ही में राजहंसों को वर्षा ऋतु का आभास होने लगा, केतु-पत्रों से निर्मित छत्रों से आच्छन्न उसकी सेना ऐसी लगती थी मानों हाथ में ही जय-श्री लिए चल रही है, अथवा मोरपंखों से मण्डित छत्रों से आच्छन्न सेना चलते फिरते बगीचे जैसी लगती थी। उस घटाटोप-सदृश सेना ने आकर वटकूपसर के तट पर पड़ाव डाला और उनके पटह (नगाड़े) के घोष द्वारा शत्रुओं को अपने आप उनके आगमन की सूचना मिल गई।

वादित्रों का घोष जब वस्तुपाल के कानों में पहुँचा तो उसकी भृकुटी तन गई और ऐसा मालूम हुआ मानो वह अभी उठ खड़ा हुआ है; परन्तु गम्भीरता के कारण उस मन्त्रिश्रेष्ठ ने इस भाव को प्रकट नहीं होने दिया, फिर भी उसके खड़े हुए शिरोरुहों (सिर के बालों) से यह बात व्यक्त हो ही रही थी। जिसने शृंखलाएँ (साँकलें, मर्यादा) तोड़ दी हैं, जिसको सेना सन्नद्ध कर रही है (रोक रही है या तैयार हो रही है) और जिसको युद्ध में प्रवेश करने से रोकना कठिन है, ऐसा वह शंख अब दूसरा-सा ही प्रतीत होने लगा और धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। शत्रु की सेना के आ जाने पर चौलुक्य भूपाल के उस अमात्य (वस्तुपाल) ने त्रासमुक्त[10] होकर अपनी सेना का संगठन किया। स्वर्ग की अप्सराओं से मिलने के लिए ही मानों उन धीरपुरुषों ने चन्दन, अगरु, कपूर और कस्तूरी का अनुलेप किया और पुष्पमालाएँ धारण कीं। युद्ध आरम्भ होने के कारण उस अमात्य की सत्व-सम्पत्ति (बलसम्पदा) इतनी उच्छ्वसित हो गई थी (बढ़ गयी थी) कि उसका शरीर कवच में भी नहीं समाता था। अपने दाहिने खुर से पृथ्वी पर खुरी करते हुए और विजय की सूचना देते हुए श्रेष्ठ अश्व पर तुरन्त ही वह अश्वराज-पुत्र (वस्तुपाल) आरूढ़ हो गया। वीरनृप वीरधवल की मुद्रा (मोहर) को हाथ में धारण करने वाले वीर (वस्तुपाल) ने उस समय वीर शूद्रक[11] की मुद्रा

---

10. गुजराती अनुवाद में त्रासयुक्त लिखा है, वह मूल पाठ से भिन्न है।
11. संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटक मृच्छकटिक के रचियता शूद्रक के विषय में प्रस्तावना में लिखा है:—

ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तशिक्षां,
ज्ञात्वा, शर्वप्रसादाद्व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य।
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा,
लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः॥ 1॥ →

(मनोभाव) अपने हृदय में धारण की। यद्यपि भुवनपाल आदि सुभट सेना के अग्रभाग में मौजूद थे परन्तु शूरवीरता के कारण पुरवासियों ने उसे ही अग्रेसर

'ऋग्वेद, सामवेद, गणितशास्त्र, वैशिकी कला और हस्तशिक्षा आदि अनेक विद्याओं को शिवजी की कृपा से प्राप्त करने के कारण जिसका अज्ञान रूपी तिमिर (अंधेरा) नष्ट हो गया और ज्ञानचक्षु प्राप्त हो गए (खुल गए) थे, ऐसा वह शूद्रक राजा, परम अभ्युदय करने वाले अश्वमेघ यज्ञ को सम्पन्न करके, अपने पुत्र को राज-सिंहासन पर देख कर और सौ वर्ष एवं दस दिन की आयु प्राप्त करके, अग्नि में प्रविष्ट हो गया।'

यहाँ, किसी प्रति में 'अग्नौ जुहाव' यह पाठ भी है जिसका अर्थ यह है कि उसने अपने शरीर की आहुति अग्नि में दे दी। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार वीर शूद्रक ने अपने आपको अग्नि को समर्पित करने का निश्चय किया उसी तरह वस्तुपाल ने भी युद्ध में कूद पड़ने की दृढ़निश्चयात्मक मुद्रा बनाई।

चतुर्विंशतिप्रबन्ध में एक 'सातवाहन प्रबन्ध' है, उसमें वीर शूद्रक नामक एक ब्राह्मण-पुत्र की कथा इस प्रकार आती है—

प्रतिष्ठान (पैठाण) नगर में सातवाहन का राज्य था। वहाँ पचास वीर नगर के अन्दर रहते थे और पचास वीर बाहर रहते थे। उसी नगर में शूद्रक नामक एक ब्राह्मण का लड़का रहता था जो बड़ा उद्धत था। उस समय उसकी अवस्था बारह वर्ष की थी। एक दिन उसने उन वीरों को एक बावन हाथ की शिला को उखाड़ते हुए देखा, परन्तु उसको कोई चार अंगुल, कोई छः अंगुल और कोई आठ अंगुल ही ऊँची कर सकता था, ज्यादा नहीं। तब, उनको देख कर शूद्रक ने उस शिला को उठा कर बहुत ऊँची उछाल दी और वीरों को कहा, 'यह शिला गिरे तब इसको झेल लो।' परन्तु वीरों ने कहा, 'इसके गिरने से तो हम पिस जावेंगे, बचाव हो ऐसा उपाय करो।' तब शूद्रक ने ऐसा प्रहार किया कि नीचे गिरने से पहले ही शिला के तीन खण्ड हो गए।

उसने (शूद्रक ने) गोदावरी के पुर में जाकर मायासुर नामक राक्षस का सिर काट लिया और उसे ला कर राजा को नजर कर दिया। बात यह थी कि उस असुर ने गाने से प्रसन्न करके रानी का अपहरण कर लिया था। इसका अपवाद शूद्रक पर लगाया गया और सातवाहन ने उसको मृत्युदण्ड सुना दिया। अन्त में, जहाँ भी हो वहाँ से रानी को लाकर हाजिर करने की शर्त पर उसको छोड़ा। शूद्रक अपने दो कुत्तों को लेकर रानी की तलाश मे निकला परन्तु मायासुर का कहीं पता नहीं लगा। तब शूद्रक ने अग्नि में जल कर मरने का निश्चय किया। उसी समय वे देवाधिष्ठित कुत्ते जो आगे चले गए थे, उसके पास आ पहुँचे। तब वह उनके बताए हुए मार्ग पर चलता हुआ कोल्हापुर पहुँचा; वहाँ पर उसने महालक्ष्मी के मन्दिर में बैठ

माना। वीर पुरुषों का मुकुटमणि वस्तुपाल शंख की सेना के अग्रभाग में, रणस्थली के मध्यभाग में और रत्नाकर समुद्र के उस पार जाकर खड़ा हुआ। युद्ध का समय उपस्थित हो जाने पर श्री उन सचिवों में श्रेष्ठ वस्तुपाल ने भाषण करके अपने

कर आराधना की और उसको प्रसन्न किया। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उसने हवन किया। तब उसमें विघ्न उत्पन्न करने को मायासुर ने अपने भाई कोल्हासुर को भेजा। वह सेना लेकर आया। शूद्रक इस लड़ाई में मारा गया। यह देख कर देवताओं ने कोल्हासुर से युद्ध करके उसको मारा और शूद्रक को पुनर्जीवित करके उसे महार्णव के तीर पर छोड़ दिया। वहाँ पर उसने एक वटवृक्ष से औंधा लटकता हुआ एक राक्षस देखा। वह भी मायासुर का छोटा भाई था। उसने रानी को वापस लौटा देने के लिए मायासुर को बहुत समझाया बुझाया था परन्तु उसने एक बात भी नहीं सुनी और उसकी यह दशा कर दी। उसने शूद्रक को यह सब बात समझा कर कही। शूद्रक ने उसको बन्धनमुक्त किया और देवतागण के साथ मायासुर के स्थान पर ले गया। मायासुर ने अपने स्थान के चारों ओर अग्नि का कोट बना रखा था। वे सब किसी प्रकार उसमें पैठ गए और वहाँ पर बडा भारी युद्ध हुआ। इस युद्ध में शूद्रक ने मायासुर का वध किया और फिर वह रानी को साथ लेकर घण्टावलम्बि विमान मे बैठकर पैठाण पहुँचा। इससे सातवाहन राजा को बहुत प्रसन्नता हुई।

ऐसे पराक्रमी वीर शूद्रक की मूर्ति को अपने हृदय में धारण करके वस्तुपाल वैसा ही प्रचण्ड पराक्रम करने के लिए उद्यत हुआ।

शालिवाहन, शालवाहन, साधवाहन, सालवाहन, सालाहण, सातवाहन और हाला ये सब नाम भिन्न-भिन्न प्रतियों और पुस्तकों में फेरफार के साथ मिलते हैं।

प्रबन्धचिन्तामणि के अन्तर्गत शालिवाहन-प्रबन्ध में शूद्रक की कथा, कुछ पाठफेर के साथ, इस प्रकार मिलती है—

दक्षिण खण्ड के महाराष्ट्र देश में प्रतिष्ठान (पैठाण) नामक नगर में शालिवाहन राजा राज्य करता था। उसकी उत्पत्ति के विषय में कहा जाता है कि एक बार दो प्रवासी अपनी सुरूपा नाम की विधवा बहिन के साथ प्रतिष्ठानपुर में आए और एक कुम्हार के यहाँ ठहरे। वह विधवा स्त्री गोदावरी नदी के नागह्रद में पानी भरने गई थी; तब ह्रद में से नागराज बाहर निकला। वह उसकी सुन्दरता देख कर कामविवश हो गया और उसने स्त्री की इच्छा के विरुद्ध उससे सम्भोग किया जिससे उसके गर्भ रह गया। तब उस स्त्री के भाई उसको कुम्हार के घर पर ही छोड़ कर चले गए। समय पूरा होने से पहले ही उस विधवा के गर्भ से महाप्रतापी तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ जो उसी कुम्हार के घर पर बड़ा हुआ। कुम्हार के धन्धे में निपुण→

शौर्य का भेद नहीं खोला क्योंकि ऐसे पुरुष तो, कहते नहीं, करके दिखाते हैं। युद्ध-भूमि के अग्रभाग में उपस्थित खिले हुए चेहरे वाले वस्तुपाल को देख कर रण-रस

हो कर वह मिट्टी से हाथी, घोड़े और मनुष्य आदि की प्रतिमाएँ बनाने लगा और सातवाहन नाम से लोग उसे जानने लगे।

उज्जैन के विक्रमार्क राजा को किसी ज्योतिषी ने कहा 'तुम्हारा चक्रवर्ति-पद सातवाहन ले ले, ऐसा योग है।' यह सुन कर विक्रम ने उस पर चढाई कर दी और उसका घर घेर लिया। यह सब मामला देख कर सातवाहन की माता ने नागराज का स्मरण किया और वह प्रकट हो गया। उसने अमृतकुम्भ और महाशक्ति प्रदान की जिसके प्रभाव से वह मिट्टी का सैन्य सजीवन हो गया। फिर, वह महाशक्ति लेकर सातवाहन विक्रम के पीछे पड़ा और उसने उस राजा की बहुत सी सेना का संहार कर दिया। वह विक्रम को धकेलता हुआ तापी नदी के किनारे तक ले गया। अन्त में, विक्रम ने हार कर उससे सन्धि कर ली जिसमें यह तय हुआ कि तापी के दक्षिण में सातवाहन का राज्य रहे और उत्तर में विक्रम का।

इस सन्धि के बाद सातवाहन प्रतिष्ठानपुर लौट गया और वहाँ राज्य करने लगा। उसने अपना संवत्सर भी चलाया। इस राजा के समय में पैठांण में एक ब्राह्मण का लड़का रहता था। उसका नाम शूद्रक था और वह बहुत बलवान था। वह हाथ में दो पाषाण के टुकड़े लेकर उन्हें मसल कर चूरा कर डालता था। उसके ऐसे असाधारण बल की बात सुनकर शालिवाहन ने उसको बुलाया और नगर का कोतवाल नियुक्त कर दिया।

उन्हीं दिनों मायासुर नामक एक वाममार्गी दैत्य था। जगत् का समस्त सुख प्राप्त करने की कामना से उसने तामसी देवी का आराधन करने की इच्छा की। वाममार्ग के शास्त्रों के अनुसार मंत्रसिद्धि के लिए पद्मिनी स्त्री की आवश्यकता होती है इसलिए वह उसकी तलाश करने लगा। जब उसे पता चला कि पैठांण के राजा सातवाहन की रानी चन्द्रलेखा पद्मिनी है तो वह उसका हरण करने के अभिप्राय से वहां आकर व्यण्डल (नपुंसक, हिजड़े) के रूप में अन्तःपुर में नौकर हो गया। रानी को गायन का बहुत शौक था इसलिए इसी बहाने वह उसके पास अनेक बार आने जाने लगा। एक बार राजा की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर रात्रि के समय वह रानी को उठा ले गया। उसने एक पर्वत-गुफा में यज्ञकुण्ड की रचना की थी। वहां ले जाकर उसने रानी को नग्न करके एक पेड़ से बांध दिया और शाल्मली (खेजड़े के) वृक्ष की डालियों से पैर के अंगूठे बांध कर अपना उलटा मस्तक यज्ञ-कुण्ड पर टिका कर वह अपूर्व मन्त्र का जाप करने लगा।

इधर पैठांण में हाहाकार मच गया। रानी सहित उसे हरण करके ले जाने वाले को पकड़ कर लावे उसको आधा राज्य दे दिया जायगा, ऐसी डोंडी पिटने लगी। शूद्रक के सिवाय और कोई भी इस कार्य के लिए तत्पर नहीं हुआ। वह

के श्रेष्ठ रसिक शंख ने अपनी तलवार फिराना शुरू किया। जिस प्रकार दशरथ राजा के होते हुए रोष के कारण रौद्र-रूपधारी शनिश्चर ग्रह रोहिणी- नक्षत्र में प्रवेश नहीं कर सका[12] उसी प्रकार वस्तुपाल के सम्मुख खड़े होने पर शंख भी (खम्भात) पुरी में प्रवेश नहीं पा सका।

उस मन्त्रिवर की सेना के चलने से जो महान् पृथ्वी का रेणु-समूह ऊपर उठा वह ऐसा मालूम हुआ मानो उसके बढ़ते हुए प्रताप रूपी अग्नि का धुआँ ही ऊपर उठ रहा है। उस धूलि के समूह में वस्तुपाल का प्रकाशमान मुख इस तरह प्रकट हुआ मानों राजा वीरधवल का प्रताप ही उदित हो रहा हो। शंख की सेना बहुत थी फिर भी मन्त्री के मन में इससे कोई क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ; सच है, जिनका मन युद्ध आरम्भ करने में लगा होता है (जो सच्चे मन से युद्ध करते हैं) उनके लिए थोड़े (से सैनिक) ही बहुत हैं।

(युद्ध रूपी) उस समिति (सभा) में उस धीर (शंख) के सामने आत्मा का (अपना) अद्वैत (अद्वितीय होना) सिद्ध करने में वह सभा-समर्थ (वस्तुपाल) सचिव ही स्यात् (शायद) वादी (वाद करने वाला) हो सकता था (अर्थात् वह स्याद्वाद को जानने वाला था और आत्मा के अद्वैत को सिद्ध कर सकता था; युद्ध में अपना बेजोड़ होना सिद्ध कर सकता था)।

अपने दो कुत्तों+ को साथ ले कर रवाना हुआ। फिरता-फिरता वह कोल्हापुर आया और वहां महालक्ष्मी की आराधना करने लगा। देवी ने प्रसन्न होकर उसे एक खडग दिया और दैत्य का पता बताया। मार्ग में मायासुर का सौतेला भाई मिला; वह शूद्रक को गुफा दिखा कर गायब हो गया। शूद्रक ने वहां जाकर सब बनाव अपनी आंखों से देखा। उसने औंधे लटके हुए मायासुर का तिरस्कार किया और खड्ग से उसका मस्तक काट लिया। वह पूर्णाहुति का दिन था इसलिए असुर का मस्तक यज्ञ-कुण्ड में पड़ते ही वाममार्ग की देवी प्रसन्न हो गई। इसके बाद रानी को वृक्ष से खोल कर शूद्रक वापस ले आया और उसको राजा को सौंप दिया।

तात्पर्य यह है कि शूद्रक ने जिस प्रकार मायासुर के मस्तक की अग्निकुण्ड में आहुति दी उसी प्रकार का पराक्रम करने को वस्तुपाल उद्यत हुआ।

12. पांच तारों के शकटाकार (गाड़े की शकल के) यूथ (झुण्ड) रोहिणी नामक नक्षत्र को भेद कर यदि शनि ग्रह पार चला जाय तो दुष्काल पड़ता है। दशरथ राजा के समय में एक बार ऐसा योग आया तो उन्होंने शनिश्चर ग्रह के साथ युद्ध किया और उसको परास्त करके यह प्रतिज्ञा करा ली कि वह कभी शकट-भेद नहीं करेगा।

....

+ अपराधी का पता लगाने में कुत्तों का उपयोग बहुत पुराना है।

वस्तुपाल जैन धर्मावलम्बी था इसलिए उसने युद्ध में अहिंसा-व्रत का भंग किया, ऐसा कह कर उसकी निन्दा कैसे की जा सकती है? उसने तो युद्ध में जय प्राप्त करने की प्रतिज्ञा करके पुरुषव्रत का पालन किया था।

अहिंसाव्रत का भंग होने से मन में उत्पन्न हुई ग्लानि को दूर करने के लिए शूरवीर मन्त्री (वस्तुपाल) ने बाणों की वृष्टि में दिव्य स्नान किया।

पीठ पर स्वामी का प्रोत्साहन और आगे मागधों (चारण भाटों) द्वारा उत्तेजन, ये दोनों बातें उन वीरों का पराक्रम बढ़ाने का कारण बनी हुई थीं।

शत्रुओं द्वारा निशाना बांध कर छोड़े हुए बाण भी उस मन्त्री को नहीं छेद सके; भले आदमियों की रक्षा करने के लिए कोई अदृष्ट कला (पंक्तिहार या केड़) बांध कर खड़ा रहता है।

सुभटों के रक्त का ऐसा प्रवाह सामने था कि उसको आसानी से पार नहीं किया जा सकता था परन्तु फिर भी वह मन्त्री शत्रुओं के सामने आगे बढ़ने से नहीं रुका।

जिसका दूसरा नाम शंख था ऐसे उस वीर संग्रामसिंह ने जब शत्रुओं द्वारा असम्भाव्य पराक्रम से किए गए आक्रमण में अपनी सेना के सैनिकों का महासंहार होते देखा तो उसने भी अपने महान् शौर्य के सौरभ को प्रकट किया (फैलाया)।

उस संग्रामसिंह के भ्रू (भौंह) रूपी पल्लव के उल्लास (उठाने) को ही सहना शत्रुओं के लिए कठिन था तो फिर उसके खड्ग के उल्लास (उठाने) को कौन सहन कर सकता था?

यमराज के समान शंख को आता हुआ देखकर भुवनपाल[14] नामक भट्ट अपने जीवन की आशा छोड़ कर उसके सामने युद्ध करने को आगे बढ़ा।

इतने ही में, शंख का मित्र सामन्त नामक वीर, जिसने शत्रु सेना को इस तरह दो भागों में बाँट दिया था जैसे सीमन्तोन्नयन संस्कार के समय गर्भिणी के केशों को पति माँग के पास से दो भागों में विभक्त करता है, उस गुरु-कुल-भूषण भुवनपाल पर बीच ही में टूट पड़ा।

जब आपस में एक दूसरे के शस्त्रों से शस्त्र टूट कर सनाथ हो गए तो उन दोनों बेजोड़ मल्लों में मल्लयुद्ध होने लगा, हाथापाई हुई, बालों की नोंचा-नोंची हुई।

स्वर्ग में रहने वालों के निमेष (पलक) नहीं गिरते हैं इसलिए वे अनिमेष कहलाते हैं। उस समय उन दोनों का युद्ध आकाश में से देखती हुई अप्सराओं ने अपने इस अनिमेष होने के लक्षण को बड़ा भारी वरदान ही समझा।

थोड़ी ही देर में सामन्त को अन्तक (यमराज) के पास पहुँचा कर वह भुवनपाल संग्रामसिंह से संग्राम करने के लिए आगे बढ़ा।

14. वस्तुपाल-तेजपाल-प्रबन्ध में भूणपाल नाम लिखा है।

शंख (संग्रामसिंह) ने अपने खड्ग के आघातों से भुवनपाल के शरीर को तो खण्ड-खण्ड कर दिया परन्तु वह रण में उसके पौरुष (पराक्रम) को खण्डित नहीं कर सका।

मन्त्रिवीर वस्तुपाल का वह वीर भुवनपाल, जिसका मस्तक शंख ने अपनी तलवार से काट दिया था, अपने प्राण देकर प्रभु-प्रसाद के ऋण से मुक्त हो गया।

रणभूमि के अग्रभाग में भुवनपाल के निधन का समाचार सुन कर उस मन्त्री ने उसका वैर लेने के लिये युद्ध को और भी तेज कर दिया।

पराक्रम करने वालों के लिए प्राणों के मूल्य पर (युद्ध की दूकान में) यश रूपी प्रिय वस्तु खरीदना सुलभ होता है इसलिए तलवार धारण करने वाला वीरम वीर रण-हाट में घुस गया।

शंख के पक्ष का जयन्तवीर और मन्त्री की ओर का वीरम वीर, दोनों जयश्री के लिए विवाद करते हुए शम्भु की सत्ता में पहुँच गए।

रण में अपने आत्मा का व्यय करने वाले वीर चाचिगदेव ने अपने बाहुबल की स्तुति को वैरियों की वाणी में स्थापित कर दिया अर्थात् वैरी भी उसके भुजबल की प्रशंसा करने लगे।

अपनी सेना के लोगों के मारे जाने और स्वयं घायल हो जाने पर भी वीर सोमसिंह रणक्षेत्र मे डटा रहा और उसने कदम-कदम पर (घायलों के) ढेर लगा दिए।

मैं अपने स्वामी के शत्रु को नहीं मार सका और पहले ही मर रहा हूं, इस लज्जा का मारा विजय नामक वीर ऐसे स्थान पर चला गया कि वापस नहीं आया।

पृथ्वीतल पर नीचे पटकने के इरादे से ही शंख ने भुवनसिंह भट्ट पर गहरा वार किया था परन्तु वह वीर तो तुरन्त ही ऊपर स्वर्ग मे जा पहुँचा।

क्षत्रियों को अपना शस्त्र प्राणों से भी प्यारा होता है, इसीलिए उदयसिंह ने युद्ध मे प्राण तो छोड दिए परन्तु शस्त्र नहीं छोड़े।

अपने खड्ग से काटे हुए शत्रुओं के मस्तकों से युद्धस्थल का मार्ग बहुत विषम (ऊबड़-खाबड़) हो गया था इसलिये वीर विक्रमसिंह क्रोधान्ध होकर गिर पड़ा।

चारो तरफ चमकते हुए भालो की चकाचौंध में, जिसकी बुद्धि निश्चय ही कुण्ठित हो गई है अथवा वैकुण्ठ मे जाने की हो गई है ऐसा, कुलसिंह वीर भी भ्रमित हो गया। (चक्कर खा कर गिर पड़ा)

अपने भालों से शत्रुओं का दलन करते हुए वीर कुन्तसिंह के शरीर को जब वैरियो ने भालो से वींध दिया तो वह (उसका शरीर) ऐसा जान पड़ने लगा मानो कोई ऐसा वृक्ष है जिसके नए पत्ते निकल रहे हैं।

इतने ही में हीरे के समान उस धीर सचिव (वस्तुपाल) को सामने स्थित (स्थिर भाव से खड़ा) देख कर उस शंख के हृदय में भी चमत्कार (प्रकाश) पैठ गया। (अर्थात् समुद्र में निकलने वाले शंख का अन्तर्गर्भ अन्धकारमय होता है परन्तु जब उसको हीरे के सामने रखा जाए तो उसका प्रकाश उस शंख के भीतरी भाग तक पहुंच जाता है)।

शंख ने जब साक्षात् (सामने ही) विकारसहित (निर्विकार, स्थिरचित्त) परम पुरुष (बड़े डीलडौल वाले आदमी या परमात्मा) को देखा तो वह प्रबुद्ध (सचेत) हुआ (उसको ज्ञान हो गया) और उसकी कोपसम्पदा विराम पा गई (गुस्सा ठण्डा हो गया)। (परमात्मसाक्षात्कार से जब आत्मा प्रबुद्ध हो जाता है तो क्रोधादि विकार शान्त हो जाते हैं)।

चौलुक्यचन्द्र (वीरधवल) के सचिवेन्द्र (वस्तुपाल) को अवार्यशक्ति मान कर (यह मान कर कि इसकी शक्ति का मुकाबला नहीं किया जा सकता) वह महाबली शंख, (प्रचण्ड बवण्डर) जिसने धूलि से दिशाओं को धिलमिल कर दिया था और अनेक आशाधारी, पत्ते पत्रों वाले वृक्षों के समान राजाओं को प्रकम्पित कर दिया था, उस स्थान को छोड़ कर चला गया।

जिसने भट्टों (वीरों) का उपमर्दन करने का अनुभव प्राप्त किया है ऐसा वह मन्त्रीश्वर अग्नि के ताप को सह कर शुद्ध हुए सुवर्ण के समान तेज को धारण किये हुए था; आनन्द के अश्रुओं से भरे हुए लोचनों से लोगों ने उसका बहुत सम्मान किया; तब उसका वह तेज और भी बढ़ गया।

जिस प्रकार पुर (शरीर) का संहार करने को आये हुए काल को योगी योग-बल से रोककर शरीर (पुर) की रक्षा करता है उसी प्रकार पुर (खम्भात) का संहार करने को आए हुए उस संग्रामसिंह को जीतकर उस महानियोगी (महान् अधिकारी) और कुशाग्रबुद्धि वस्तुपाल ने (खम्भात) पुर की रक्षा की।

युद्ध में मरे हुए भट्टों के मांस के लिए मंडराते हुए गृद्धों से भरी हुई युद्धभूमि का निरीक्षण करके वह मन्त्री (वस्तुपाल) जिसके शरीर में वीर रस से रोमावली खड़ी हो रही थी, लौट आया; विजय के प्रकृष्ट मद से भरे हुए अश्रुओं से भाट-चारणों ने उसके बाहुबल की भूरि-भूरि प्रशंसा में पद-पद पर गीत गाए। (उनकी रचना का प्रत्येक पद उसकी बाहुबल-विभूति से शोभित था)।

इस प्रसंग में सोमेश्वर कृत कीर्तिकौमुदी में तो इतना ही विवरण है परन्तु राजशेखर सूरि ने इतना विशेष कहा है कि जब युद्ध पूरे जोर पर चल रहा था तो मंत्री के सैन्य का विनाश बहुत तेजी से होने लगा; चारों ओर के योद्धा खतम हो रहे थे। तब वस्तुपाल ने अपने एक राजपूत सैनिक माहेचक (माहिच्चक) को बुला कर कहा, यह तो हम लोगों को जड़ से उखाड़ फेंकने का खेल चल रहा है; तुम्हारे साथ होते हुए कोई-न-कोई तो ऐसा उपाय होना चाहिए कि वीरधवल की प्रतिष्ठा

की रक्षा हो।" यह सुनकर वह राजपूत अपने साथ के कुछ वीरों को लेकर गया और बोला, "शंख! आ जा, यह तेरी वेडुआ गोमड़ी नहीं है, यह क्षत्रियों का संग्राम है।" शंख ने कहा, "तू ठीक बोलना जानता है; परन्तु, यह तेरे धनी (स्वामी) का पादर (कांकड़) नहीं है, यह शत्रु का देश है और सुभटों का क्रीड़ाक्षेत्र है।" इस तरह वाद-विवाद के बाद वे द्वन्द्वयुद्ध में गुंथ गए और मोहेचक ने मन्त्री के प्रताप से उसके समक्ष ही शंख को गिरा दिया। सेना में जय-जयकार होने लगा। किसी का कहना है कि स्वयं वस्तुपाल ने शंख का हनन किया। किसी का मत है कि भुवनपाल (भूणपाल) नामक भट्ट ने उसको मारा। मंत्री ने शंख का राज्य ले लिया; वेलाकूल (बन्दरगाह) की समस्त समृद्धि स्वायत्त कर ली और इसके बाद राज्य-पताका फहराता हुआ वह तोरण वन्दनवारों से सजे हुए स्तम्भतीर्थ में प्रविष्ट हुआ।

जिनहर्ष गणि के वस्तुपाल-तेजपाल-चरित के चतुर्थ प्रस्ताव में सद्दीक सम्बन्धी वृत्तान्त इस प्रकार दिया गया है—

जब वस्तुपाल खम्भात का अधिकार लेकर आया तो देवर (या देवचन्द) नामक वनिये ने उसके पास आकर अपनी व्यथा सुनाई। उसने कहा, "तोड़े वंश का सद्दीक नामक एक जहाजी व्यापारी है। भंगी से लेकर राजा तक सभी उसका मान करते हैं। इसलिए वह बड़ा अभिमानी हो गया है और अपने सिवाय सभी दूसरों को तिनके के बराबर गिनता है। उसके पास अटूट धन है; सभी बन्दरगाहों में उसकी प्रसिद्धि है और सभी ठिकानों पर उसका अच्छा व्यापार चलता है। उसमें दीनता नहीं है और रणगिरि में भी वह वीररत्न गिना जाता है। इन्द्र का घोड़ा उच्चैःश्रवा (ऊँची या खड़ी कनौती वाला) कहलाता है; उसी की औलाद के 1400 घोड़े उसके घर पर बंधे हुए हैं और वे सोने की प्राखर से सजे हुए रहते हैं। युद्धविद्या में कुशल और समस्त पृथ्वी को आतंकित करने वाले 1400 पैदल सिपाही भी उसके घर पर बने रहते हैं। इनके अतिरिक्त तीन सौ मनोहर गज भी उसके घर पर झूमते हैं। सोना, मणि, माणिक्य, रूपा (चाँदी) और मुक्ताफल आदि तो असंख्य परिमाण में भरे पड़े हैं। ऐसे वैभव से शोभायमान प्रासाद के समान हवेली में उसका आवास है। इसी सद्दीक के यहाँ सगर नामक मेरा पिता गुमाश्तगीरी करता था और अलग-अलग बन्दरगाहों पर जब जहाज जाते तो वह उनके साथ किरानी बन कर जाता। एक बार किसी बन्दर पर सोने की धूल (सोना मिली हुई मिट्टी) मिली जिसे वह ले आया और साक्षात कर उसे अपने घर में रख ली। उसने समझा था कि उसे कामधेनु ही मिल गई है। परन्तु, सद्दीक को उस बात का पता चल गया और उसने हमारा घर लूट लिया तथा मेरे पिता को मरवा डाला। अब मेरे घर में खाने पीने का भी ठिकाना नहीं है इसलिए आपके पास नौकरी के लिए आया हूं कि किसी तरह गुजारा चले। मैं जाति से पोरवाल बनिया हूं।"

यह बात सुनकर वस्तुपाल के मन में यह आया कि इस तरह निर्बलों को बलवान सताते हैं। पक्षी भी जब अपनी जाति के लिए पक्षपात करते हैं तो मुझे भी इसका रक्षण अवश्य करना चाहिये; क्योंकि—

गीति

अधिकार जेह पामी, आश्रितोनुं करे न पोषण तो;
भ्रष्ट थतां अधिकार ज, पामें अधिकारिता घणी-जन जो।
उपकार सुजन पर ने, अरि पर अपकार तो अति करवा;
डाह्या इच्छा आणे, नृपनी सेवा विषे जाई पडवा॥

भावार्थ—जो अधिकार पाकर भी आश्रितों का पोषण नहीं करते उन धनी लोगों को अधिकार समाप्त होने पर अधिकारिता (अधिक अरिता, शत्रुता) ही प्राप्त होती है। हमेशा सज्जन का पूरा उपकार करना चाहिए और दुर्जन शत्रु का अपकार करने में नहीं चूकना चाहिए। बुद्धिमान लोग इसी इच्छा से राजसेवा में प्रविष्ट होते हैं।

ऐसा सोचकर उसने सद्दीक को ठिकाने लगाने का पक्का विचार किया और वैदेवचन्द को कहा 'धीरज रखो, समय आने पर तुम्हारा काम पहले करूंगा।' इस प्रकार अमृत जैसी वाणी से उसका समाधान करके उसको प्रसन्न हृदय से कोषाधिकारी के पास नामां (रोकड हिसाब) लिखने के लिए नियुक्त कर दिया।

कुछ समय बाद वस्तुपाल ने अपना एक आदमी भेज कर सद्दीक को आशीर्वचनपूर्वक कहलाया "आप श्रीमन्तों मे श्रेष्ठ हो, व्यापार विद्या धुरन्धर हो, वीर पुरुषों में इन्द्र के समान हो और इस पृथ्वी पर धन के हिसाब से कुबेर के सदृश माने जाते हो; दानशील हो, चारों तरफ के बन्दरगाहों पर आपकी कीर्ति फैली हुई है इसलिए सुहृद्भाव से आपके भले के लिए कुछ कहता हूं क्योंकि बड़े आदमी कह गये हैं कि सदा हितकर वचन बोलना चाहिए और जो लोग महान् हे उनको तो अवश्य ही उनके हित की बात बतानी चाहिए। इसलिए हे व्यापार-विचक्षणों में अग्रणी सद्दीक ! सुनो, जैसे सब व्रतों में ब्रह्मचर्यव्रत श्रेष्ठ है उसी प्रकार राजा जैसे वैभव वाले लोगों में प्राज्ञजन उसी का बखान करते हैं जो विनयी होते हैं; जैसे लावण्यरहित फीकी बात किसी को अच्छी नहीं लगती उसी तरह विनय-विहीन चतुराई की कोई प्रशंसा नहीं करता। जैसे सब ओर से पूर्ण खिली हुई मौलश्री की शोभा को दुर्वात (गन्दी हवा, या खोटी बात) दूषित कर देती है उसी तरह दुर्मद (खोटा दम्भ) देहधारी के सभी सद्गुणों में दूषण लगा देता है। इसलिए सदा अभ्युदय करने वाले विनय की वृत्ति को मन में रखकर निर्भयतापूर्वक आपको मुझ से आकर मिलना चाहिए।"

उस मनुष्य के ऐसे वचन सुनकर प्रसन्न होने के बदले क्रोध में भरकर और लाल आंखें करके सिद्दीक बड़े बोल बोलने लगा 'इस पृथ्वी पर बहुत से राजा मेरे देखने में आए हैं और उनके कारभारी भी मैंने बहुत से देखे हैं परन्तु उनमें से किसी

ने भी ऐसे निष्ठुर वचन मुझे नहीं कहलाए। सभी विना बुलाए ही अपना-अपना काम साधने के लिए मुझसे मिलने चले आते हैं। समुद्र में जाकर मिलने वाले नदीप्रवाह को समुद्र बुलाने नहीं जाता, वह अपने आप जाकर उसमें मिलता है; ऐसा ही मेरा व्यवहार है। जैसे चक्रवर्ती राजा किसी रंक के घर जाकर उससे नहीं मिलता है उसी तरह मैं भी किसी राजा के घर नहीं जाता हूँ; फिर, कुँए के मेंढक-समान यह मत्री मुझे घर बुलाने की यह कौन सी चाल नगर में चालू करने को खड़ा हुआ है ? मूर्ख मनुष्य ! उसको जाकर कह कि कल्पवृक्ष सब की कामना पूरी करता है, मैं उसी के समान हूँ और सब की आशा पूरी करता हूँ। वस्तुपाल को किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मुझ से माँग ले, मैं घर-बैठे उसके पास भेज दूंगा। परन्तु, चूहे को जैसे एक कण डाँगर मिलने पर वह कूदाफाँदी करने लगता है वैसे ही थोड़ी सी लक्ष्मी मिल जाने पर गर्विष्ठ होकर यह तो मुझ-जैसे गुणों में अधिक, यशस्वी और प्रशस्त महापुरुष को ही अपने पास बुलाने का अहंकार करता है। मालूम होता है कि उसका विनाश समीप आ गया है। इसलिए हे दूत ! तू जाकर अपने स्वामी से कह कि यदि तुझे मिलना ही है तो रमा (लक्ष्मी) के लिए भी मनोरम मेरे महल में आकर मुझ से मिल और ऐसा करने पर ही तू इस नगर में रह सकेगा।"

दूत ने आकर सद्दीक की कही हुई पूरी बात मन्त्री को कह सुनाई तब उस (वस्तुपाल) ने सद्दीक को पुनः कहला भेजा, 'तुझसे जितना हो सके उतनी रक्षा का प्रबन्ध करके घर में ही रहना। तेरा यह दुर्विनय सब का अपमान करने वाला है इसलिए जैसे सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी तरह तेरे इस दुर्विनय रूपी सम्पूर्ण अन्धकार को मिटाने के लिए ही मैं आया हूँ। जैसे साँप के काटे हुए अंगूठे को काटकर फेंकने से ही सुख होता है उसी तरह दुष्टजनों का नाश करने पर ही श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषों का यश फैलता है और सुख उत्पन्न होता है।'

इतना कहलाने पर भी सद्दीक को कोई समझ नहीं आई, क्योंकि—

॥ गीति ॥

नाश निकट जे जननो, तेने कोनो कथन कदा न रुचे।
गजू निज नूं नव जाणे, खूंटा रूप हित वचन ज पण खूंचे ॥

भावार्थ—जिसका विनाश सन्निकट होता है, उसको किसी की भी बात अच्छी नहीं लगती। जैसे हाथी अपने हित को न पहचान कर खूंटे को उखाड़ने का प्रयत्न करता है।

यह सब वृत्तान्त सद्दीक ने शंख के पास लिख कर भेज दिया। उसी के परिणाम में यह हुआ कि वह युद्ध करने आया और मारा गया।

हर्ष गणि ने इतना विशेष लिखा है कि किरात अथवा भिल्ल जैसी हल्की जाति का कोई सिंह भट्ट नामक व्यक्ति था; उसी के भाई सिन्धुराज का पुत्र शंख अथवा संग्रामसिंह था। शूरवीरों और पराक्रमी पुरुषों में उसकी प्रथम गणना होती

थे। वस्तुपाल ने इसको बात की बात में जीत लिया और फिर गाजे-बाजे व बड़ी धूमधाम के साथ खम्भातपुर में प्रवेश किया।

इसके बाद अपने साथ के माण्डलिक राजाओं और सेना सहित वह सद्दीक के घर गया। वह भी अपने 1400 दैत्याकार पराक्रमी मनुष्यों को लेकर युद्ध के लिए तैयार बैठा था। वे सब मनुष्य सोने की पाखर वाले 1400 अश्वों पर सवार थे; उन्होंने सचिव के सैन्य पर बाणवर्षा आरम्भ की। वस्तुपाल की सेना ने भी उन पर आक्रमण करके उनको यश का भागी बनाया। जो सद्दीक अहंकार में भर कर बड़ाई मारता था उसको पकड़ लिया गया; उसकी हवेली में घुसकर पाँच हजार सोने की ईंटें, 1400 घोड़े, रत्न, माणिक्य तथा बड़ी-बड़ी मोतियों की लड़ें ले ली गईं। इस प्रकार जयलाभ करने के उपरान्त वस्तुपाल ने कुमारपाल के देवालय में जाकर ऋषभदेव का महापूजन सम्पन्न कराया और मन्दिर पर स्वर्ण का ध्वज चढ़ाया। तदुपरान्त वह धोलका गया और समस्त लूट का माल उसने चौलुक्य राज वीरधवल के आगे रख दिया।

इस प्रसंग से सभी को प्रसन्नता हुई। वीरधवल की आज्ञा प्राप्त करके एक कवि ने वस्तुपाल के वास्तविक गुणों का बखान किया—

हे वस्तुपाल ! तारुं, अपूर्व पाण्डित्य तो सरस भाखूं,
चूरो शंख करी ने, उज्ज्वल परिपूर्ण विश्वकरी नाख्युं ।।

—हे वस्तुपाल ! तुम्हारी असाधारण पण्डिताई की सरसता का क्या बखान करूं ? तुमने एक शंख का चूर्ण (बना) कर के अखिल विश्व पर सफेदी कर दी। (शंख के चूरे से सफेदी होती है; पूरे विश्व में सफेदी हो गई अर्थात् तुम्हारा शुभ्र यश फैल गया।)

रणशूर वृत्त

"लीला थी सरिता सघलीनो, करे कोलियो ने गाजे;
आकाशे उछले ऊपरे मियों, सीमा पार विण तो राजे।
नाचता कूदता मकरोवे, वली काछवा वंध छे;
ए सौ ज्यां सुधी छेड़े अगस्त्ये, नथी कोंध तो सिन्धु छे।।"

—सभी सरिताओं के साथ जो केलि करता है और गर्जन करता है, आकाश तक जिसकी उर्मियां (लहरें) उछलती हैं और जिसकी सीमा का पार नहीं है, उछल-कूद मचाने वाले बहुत से मगरमच्छ और कछुए जिसके (सहायक) हैं ऐसे सिन्धु (समुद्र) की ये सभी बातें तभी तक रहीं जब तक कि उसने अगस्त्य मुनि से छेड़-छाड़ नहीं की। उनसे अड़ने पर तो वे उसको तीन ही चुल्लू में चट कर गए।[14]

---

14. सवाई जयसिंह ने भी मरहठों को ऐसा ही उत्तर भेजा था।

तात्पर्य यह है कि सिन्धराज के पुत्र शंख की सारी शान और उसके साथ के काछवों जैसे राजाओं की उछलकूद तभी तक रही जब तक कि उसका सामना अगस्त्य के समान वस्तपाल से नहीं हुआ, जिसने उसको बात की बात में ही समाप्त कर दिया।

इस कवि की कविता से राणा (वीरधवल) बहुत प्रसन्न हुआ और उसने तीन हजार दीनार कवि को इनाम में दिए।

वस्तुपाल को भी उसने पंचांगप्रसाद (पाँचों कपड़े) पोशाक और तीन विरुद प्रदान किए—

1. सद्दीकान्वयहारी (सद्दीक का वंश विध्वंस करने वाला)
2. शंखमानविमर्दन (शंख का मान मर्दन करने वाला)
3. वराहप्रोल्लसत्पुण्यप्रवाहो ज्ञातिपालने (जाति का पालन करने में भगवान वराह के समान जिसका पुण्यप्रवाह प्रदीप्त है)।

भागवत पुराण के तीसरे स्कन्ध में कथा है कि भगवान विष्णु ने वराह का अवतार लेकर आदिदैत्य हिरण्याक्ष को मार कर पृथ्वी का उद्धार किया। इसी प्रकार का पुण्यकार्य करने के कारण वस्तुपाल को यह विरुद प्राप्त हुआ।

मरहठों की ओर से पत्र आया—

पीत्वा गर्जन्त्यपस्ते दिशि दिशि जलदास्त्वं शरण्यो गिरीणां
सुत्रामत्रासभाजां त्रिदशविटपिनां जन्मभूमिस्त्वमेव।
ऐश्वर्यं तच्च तादृक् त्वयि सलिलनिधे किन्तु विज्ञाप्यमेतत्
सर्वोपायेन मैत्रावरुणिमुनिकृपादृष्टयः प्रार्थनीयाः॥

—हे समुद्र, तुम्हारा जल पीकर बादल सभी दिशाओं में गरजते हैं, इन्द्र के डर से डरे हुए पर्वतों के शरणस्थान भी तुम्हीं हो और देववृक्षों अर्थात् कल्पवृक्षों की जन्मभूमि भी तुम हो। तुम्हारा ऐश्वर्य ऐसा ही है परन्तु यह तुमको बता देना चाहते हैं कि मित्रावरुण के पुत्र अगस्त्य की कृपादृष्टि के लिए सदैव प्रार्थना करते रहना।

इसका उत्तर सवाई जयसिंह की ओर से यह भेजा गया—

क्षन्तव्यो द्विजजातितः परिभवोऽप्येतद्वचःपालनात्
पीतः कुम्भसमुद्भवेन मुनिना किं जातमेतावता
मर्यादां यदि लङ्घयेद्विधिवशात्तस्मिन् क्षणे वारिधि-
स्त्रैलोक्यं सचराचरं ग्रसति वै कस्तत्र कुम्भोद्भवः॥

—ब्राह्मण द्वारा किए हुए अपमान को भी सहन कर लेना चाहिए, इस वचन का पालन करने पर यदि घड़े से जन्म लेने वाला मुनि समुद्र को पी गया तो इसमें क्या हुआ? यदि दैवयोग से उस समय समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़ देता तो वह चराचर सहित तीनों लोकों को ग्रस लेता। तब बेचारा घटयोनि कहाँ रहता?

इस प्रकार सम्मानित होकर वह उत्सव मनाता हुआ अपनी हवेली पर आया। वहाँ पर जो राजमान्य जन उपस्थित थे उन सब का उसने यथोचित सत्कार किया; ब्राह्मणों को दक्षिणा दी और अन्य मागधों को भी त्याग (दान) देकर प्रसन्न किया। बाद में, राणा की आज्ञा प्राप्त कर वह खम्भात चला गया।

एक स्थान पर लिखा है कि वस्तुपाल ने यह सब वृत्तान्त लवणप्रसाद को निवेदन किया तब कहा, 'सद्दीक इतना धनवान् है कि इसका गृहरेणु (घर की खाक) भी बहुत कीमती है।' तब लवणप्रसाद ने आज्ञा दी कि गृहरेणु तो वस्तुपाल रख ले और अन्य माल राजकोष में जमा करा दिया जाय। इसके कुछ समय बाद ही सद्दीक के वाहनों मे आग लग गई और बहुत-से मोटे माल की राख हो गई। राजा की आज्ञा से वह सब वस्तुपाल को मिलने योग्य मानी गई।

सोमेश्वर कहता है कि इस प्रकार स्वस्थता प्राप्त करने के बाद, बन्धुजन समुदाय द्वारा उत्पन्न किये गये उपरोध (विरोध) से लवणप्रसाद का मन विरुद्ध था फिर भी वह उन वीरों के साथ सन्धि करके दुस्सह पराक्रम वाले अपने पुत्र वीरधवल को साथ लेकर अपनी नगरी को लौट आया।[15]

जिनका उत्साह भग्न हो गया है ऐसे प्रतिपक्षी राजा न जाने कहाँ निमग्न हो गए (डूब गये या छुप गए) और वह वीर (साहसी) राजा युद्ध रूपी समुद्र को पार करके किनारे पहुँच गया। उसका महा-अमात्य सोमवंश में उत्पन्न हुआ वस्तुपाल चतुरता की प्रतिमूर्ति चाणक्य ही माना जाता था; उसने अपने प्रियंकर गुणों से सभी दिशाओं मे उसके यश.समूह का विस्तार किया।

वस्तुपाल द्वारा शंख वध होने पर कवि कहता है—

श्रीवस्तुपाल प्रतिपक्षकाल, त्वया प्रपेदे पुरुषोत्तमत्वम्।
तीरेऽपि वार्धेरकृतेऽपि मात्स्ये, रूपे पराजीयत येन शंखः॥

अहो! शत्रुओं के लिए काल-स्वरूप वस्तुपाल! तुमने समुद्रतट पर शंख को पराजित किया इसलिए तुमको पुरुषोत्तम पद प्राप्त हुआ, परन्तु तुम तो पुरुषो-

---

15. सन्धाय बन्धुजनजनितोपरोधाद्-
दूरे विरुद्धहृदयोऽपि समं नृपस्तैः।
पुत्रेण तेन सह दुःसहपौरुषेण,
सोऽथाऽऽससाद नगरीं लवणप्रसादः॥67॥

प्रतिनृपतिभिर्भग्नोत्साहैर्निमग्नमिव क्वचित्
स च नरपतिर्वीरस्तीरं जगाम मृधाम्बुधेः।
दिशि दिशि यशस्तोमान् सोमान्वयी समचारय-
च्चतुरकुरलीचाणक्योऽयं प्रियंकरैर्गुणैः॥68॥

(कीर्तिकौमुदी, सर्ग 5.)

राम (विष्णु) से भी बढ़कर हो, क्योंकि उनको तो इस काम के लिए मत्स्य रूप धारण करके समुद्र में प्रवेश करना पड़ा और तुमने तो तट पर रह कर ही उसका हनन कर दिया।

देवगिरी का सिंघण

उस समय देवगिरि का राजा यादव जैत्रपाल था। देवगिरि ही बाद में दौलताबाद नाम से प्रसिद्ध हुआ। जैत्रपाल[16] का कुंअर सिंघण (सिंहण, सिंहन)

---

16. सेऊण अथवा प्राचीन खानदेश के प्राचीन यादवों की वंशावली—

1. दृढ़प्रहार, जिसकी राजधानी चन्द्रादित्यपुर थी।
2. सेऊणचन्द्र (प्रथम), जिसके नाम पर देश विख्यात हुआ।
3. धाड़ियप्पा (प्रथम)
4. भिल्लम (प्रथम), इसकी भार्या लस्थियव्वा जंजराज राष्ट्रकूट की कन्या थी।
5. राजगि (व्रत-खण्ड के आधार पर); श्री भगवानलाल द्वारा प्रकाशित दान-लेख के अनुसार 'श्रीराज'
6. वादुगि-वाद्विग (प्रथम), इसका राजगि से क्या सम्बन्ध था ?

|

7. धाडियप्पा (द्वितीय) 8. भिल्लम (द्वितीय), शक स. 922.

|

9. वेसुगि (प्रथम)

|

10. अर्जुन

|

11. भिल्लम (तृतीय) शक सं. 949 (चालुक्यवशीय जयसिंह का जमाई)

|

12. वादुगि (द्वितीय)

|

13. वेसुगि (द्वितीय), सम्बन्ध ज्ञात नहीं

|

14. भिल्लम (चतुर्थ), सम्बन्ध ज्ञात नहीं

|

15. सेऊण चन्द्र (द्वितीय) शक सं. 991
(ई. 1069) (चालुक्यवंशी विक्रमादित्य
द्वितीय का मित्र)

16. परमारदेव　　17. सिंहण (सिंहराज), प्रथम

18. मल्लुगि

अमरगंगेय　　अमरमल्लगि　　19. भिल्लम (पंचम)
गोविन्दराज　　बल्लोल　　(इसकी मृत्यु शक सं. 1113 (1191 ई.) में हुई)

इस भिल्लम ने चालुक्य का सार्वभौम राज्य अपने अधीन करके यादव सार्वभौम-राज्य स्थापित किया इसलिए प्रथम भिल्लम [illegible] कहलाया

1. भिल्लम (प्रथम)
शक सं० 1109 (1187 ई०) से शक सं० 1113 (1191 ई०) तक

2. जैत्रपाल (जैतुगि)
शक सं० 1113 (1191 ई०) से शक सं० 1132 (1210 ई०) तक

3. सिंघण (सिंहन) द्वितीय
शक सं० 1132 (1210 ई०) से शक सं० 1169 (1247 ई०) तक
(इसने कोल्हापुर राज्य को अपने राज्य में मिलाया; गुजरात दो बार चढ़ाई की)

जैत्रपाल (जैतुगि)—सिंघण के जीवनकाल में ही कालवश हुआ।

4. कृष्ण (कान्हार, कंधार)
(श. 1169 (1247 ई.) से
श. 1182 (1260 ई.)

5. महादेव
(श. 1182 (1260 ई.)–श. 1193
(1271 ई०)

शक संवत 1132 (वि. 1267) में गद्दी पर बैठा था। उसने जज्जल्ल[17] नामक राजा को पराजित करके उसके मत्त हाथियों को पकड़ मंगवाया; कक्कूल[18] नामक राजा की राज्यश्री का अपहरण कर लिया; अर्जुन का समूल नाश किया; यह अर्जुन सम्भवतः मालवा का राजा होगा। एक जनार्दन नामक करिवाही (महावत) से सिंघण ने गजशिक्षा प्राप्त कर ली थी; उसी के प्रयोग से उसने अर्जुन का सर्वनाश किया; उसने भोज को भी पकड़ कर कैद कर लिया था।

सिंघण ने रम्भागिरिकेसरी विरुद से विख्यात लक्ष्मीधर नामक राजा को काबू में करके छोड़ा; अपने अश्वसमूह से उसने धार के राजा को घेर लिया और बल्लाल के हाथ में जितना देश था वह सब अपने कब्जे में कर लिया।

यह सब काम सिंघण के लिए बाललीलातुल्य[19] था। उसने मथुरा और काशी के राजाओं को परास्त किया और उसके एक अल्पवयस्क सरदार ने ही हमीर[20] को हरा दिया। धारवाड जिले में तिरिवल्ली नामक स्थान पर एक लेख में खुदा हुआ है कि सिंघण ने जज्जलदेव को पराजित किया, होयसल वंश के बल्लाल राजा पर विजय प्राप्त की, पन्हाला के राजा भोज को[21] अपनी अधीनता में लिया और

6. रामचन्द्र-रामदेव
(इसके मन्त्री हेमाद्रि ने अनेक ग्रन्थ रचे हैं)
(श० 1193 (1271 ई०)—श० 1231 (1309 ई.)

7. शंकर (श० 1231 (1309 ई.) से श० 1234 (1312 ई.)
(इसका मलिक काफूर ने वध किया और देवगिरि को दौलताबाद के नाम से अपना निवासस्थान बनाया)

8. हरपाल
(इसने श. 1240 (1318 ई.) में युद्ध करके मुसलमानों को निकाल दिया था; इतने ही में मुबारिक (रामचन्द्र के जमाई) ने इस पर चढ़ाई करके इसको कैद कर लिया और जीवित की ही चमड़ी खिचवा ली। इसके बाद यहाँ मुसलमानी राज्य हो गया।)

17. यह चेदिवंश की पूर्व शाखा का छत्तीसगढ़ का राजा था।—देखिये—जनरल कनिंघम की आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, भा 17, पृ. 75, 76-79
18. चेदिवंश की पश्चिम शाखा का राजा कोक्कल; उसकी राजधानी त्रिपुर अथवा तिवुर थी। —वही
19. हेमाद्रिकृत व्रतखण्ड की राज-प्रशस्ति, श्लो. 43, 44
20. रायल एशियाटिक सोसाइटी की नई पुस्तकमाला, भा. 1, पृ. 414
21. बाम्बे गजेटियर, भा. 1. विभाग 2, पृ. 236-252

मालवा के राजा[22] को झुका दिया। यहाँ पर यह भी लिखा है कि गुजरात के राजा रूपी गजराज के लिए वह अंकुश के समान था।[23] गदक मे शक संवत् 1135 (1213 ई०) का एक लेख है जिससे ज्ञात होता है कि उसने इस समय से पहले ही बल्लाल के राज्य के दक्षिणी भाग को अपने अधिकार में कर लिया होगा।[24]

सिंघण अपनी राजधानी देवगिरि में राज्य करता था। पन्हाला का राजा भोज[25] शिलाहार राजकुल का था। ऐसा लगता है कि उसको हराकर यादवों ने कोल्हापुर राज्य को अपने राज्य में मिला लिया था। उत्तर कोंकण मे एक दूसरी शाखा का राज्य था उसका भी यादवों ने पूर्व शाखा की भाँति अन्त कर दिया। इस समय से बाद के कोल्हापुर के जो भी लेख देखने मे आते हे उनमे यादव राजाओं का ही उल्लेख मिलता है; साथ ही मे जो उनके प्रमुख कार्यकर्त्ता रहे है उनके भी नाम उनमे उत्कीर्ण है। इस प्रान्त के खेद्रापुर मे सिंघण का लेख है जिससे ज्ञात होता है कि शक सं० 1136 (1224 ई०) में उसने कोपेश्वर के देवालय के लिए एक गाँव प्रदान किया था।

ऐसा मालूम पडता है कि सिंघण ने भी गुजरात पर कई वार चढाइयाँ की थी। आबा के एक लेख मे खुदा हुआ हे कि मुद्गल गोत्रीय खोलेश्वर नामक ब्राह्मण संस्थानिक यादव राजा का बहुत बड़ा शूरवीर सेनापति था। उसने गुर्जर राजा के गर्व का गंजन किया, मालवराज को कीडे की तरह कुचल दिया, तथा आभीर राजा के कुल का समूल उच्छेद कर दिया था। वह अपने स्वामी के शत्रुओ के लिए दावाग्नि के समान था; उसने सिंघण के लिए चिन्ता करने योग्य कोई भी बात नही छोडी। उसके बाद उसके पुत्र राम को सेनापति नियुक्त किया गया और एक बडी सेना लेकर गुजरात पर चढाई करने को भेजा गया। जब वह नर्मदा नदी तक पहुँच गया तो वहाँ बहुत बडी लडाई हुई; उसने अनेक गुर्जर सुभटो को मार डाला परन्तु अन्त मे वह स्वयं भी इसी युद्ध मे मारा गया।[26] इस वृत्तान्त से मालूम होता है कि अधिक नही तो, दो बार तो अवश्य ही सिंघण ने गुजरात पर चढाई की थी। सोमेश्वर कृत **कीर्तिकौमुदी** से भी ज्ञात होता है कि लवणप्रसाद और वीरधवल के समय मे भी उसने गुजरात पर आक्रमण किया था। लिखा है कि[27]—

---

22. जर्नल आफ दी बाम्बे ब्रांच ऑफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी, भा. 9, पृ. 326
23. मेजर ग्राहम की रिपोर्ट के अंक 13 मे कोल्हापुर विषयक लेख।
24. इण्डियन एण्टीक्वेरी, भा. 2; पृ. 297
25. मेजर ग्राहम की रिपोर्ट मे अंक 10 का लेख।
26. आर्क्यालाजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इण्डिया, भा. 3, पृ. 85
27. कीर्तिकौमुदी सर्ग 4, श्लो. 42-54

गुजरात का राजा लावण्यसिंह धर्मपूर्वक अपनी प्रजा का पालन करता था। उसी समय दक्षिण के राजा सिंघण ने अपने गुप्तचरों रूपी नेत्रों से उसकी राजलक्ष्मी का निरीक्षण करके अपनी सेना रूपी दूती को भेज कर उसको ग्रहण करने का आदेश दिया। उसकी सेना के सिंहनाद को सुन कर गुर्जर राजधानी के लोग इस तरह चकित और भयभीत होकर दिशाओं की तरफ देखने लगते जैसे सिंह का गरजना सुन कर भयभीत आंखों से हरिणी चारों तरफ देखती है। वहाँ न कोई नया घर बनवाता था न धान ही इकट्ठा करता था; परचक्र (शत्रु सेना) के आगमन की आशंका से पुरवासियों के मन में कभी स्थिरता नहीं आती थी।

सभी लोग समझते थे कि ऐसे समय में धान इकट्ठा करना हितकर नहीं है इसलिए चक्र (पहियों) वाले शकटों (गाड़ों) का बहुत मान बढ़ गया था; सच है, जो टाली न टले ऐसी विपत्ति आने पर चक्रधारी (श्रीकृष्ण) ही शरीरधारियों की रक्षा करते हैं।

जैसे-जैसे मद भरी हुई शत्रु सेना समीप आती जाती थी वैसे-वैसे ही भय बढ़ने के कारण जनता दूर भागती थी।

विशिष्ट वीरों के वर्ग से युक्त यादव राजा की सेना को वेग से आती हुई जान कर श्री लवणप्रसाददेव ने कोप से भृकुटी चढ़ाकर कपाल को कुटिल कर लिया।

जिसका पराक्रम अकुण्ठित था ऐसे चौलुक्यराजा (लवणप्रसाद) के कण्ठ में स्वर्णमयी (सुनहरी) माला ऐसी झलमला रही थी मानों भयभीत हो कर कान्ति का प्रसार करती हुई राज्य-लक्ष्मी ने उसके गले में बाहें डाल दी हों।

शत्रु की सेना बहुत बड़ी थी और इस राजा का बल थोड़ा था तो भी वह उसके सामने गया; रण-संग्राम चालू हो जाने पर सच्चे सुभटों के कदम आगे ही बढ़ते हैं।

शत्रु का सैन्य रूपी समुद्र जब तक तापी नदी के तट पर बढ़ा तब तक तो उससे भी अधिक शत्रुसंतापी, अतिशय बाहुबली वीर राणा मही नदी के तीर पर आ पहुँचा।

शत्रु के बहुत बड़े दल और चौलुक्यराज के अपराजेय बाहुबल को देख कर सन्देह में पड़े हुए लोग विचार करने पर भी ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाते थे कि क्या स्थिति होगी, क्या गति होगी!

शत्रु की सेना के द्वारा जलाए हुए गाँवों से जब धुएं के समूह आकाश में छा जाते तो लोगों को दूतों के बिना ही सूचना मिल जाती थी कि शत्रु कहाँ तक आ पहुँचा है या उसने कहाँ पड़ाव डाल रखा है।

जल्दी ही भृगुकच्छ की खेतीवाड़ी से हरीभरी भूमि पर आकर विचरने

वाले उन वृष्णिवंशी यादवों के दलों को संख्या में अधिक और दुर्जेय देख कर भी उस वीर-केसरी (राणा) ने युद्ध में उनकी परवाह नहीं की; उनको कुछ भी नहीं समझा।

जब आपस में मत्सर (एक दूसरे का अहित करने का भाव) बढ़ा तो उस राणा ने एक हाथ में तो अपनी दुधारी तलवार धारण की और दूसरे से अपने वीर पुत्र को ग्रहण किया; इस तरह वह सहसा रण में कूद पड़ा।

इस प्रकार जब वे दोनों पिता-पुत्र अन्य राजाओं के साथ युद्ध में लगे हुए थे उसी समय अवसर देख कर चार मारवाड़ के राजा उन पर चढ़ आए। वे दोनों भी उन वीरों की सेना पर टूट पड़े। ऐसे युद्ध में कौन कितना बहादुर था यह तो अब विद्वान् स्वयं विचार लें।

आगे और पीछे दोनों ओर सेना से घिरा हुआ राणा अब अवश्य हार जायेगा, यह विचार करके, उसकी अधीनता से मुक्त होने का मनसूबा बांधकर, गोधरा और लाट के माण्डलिक राजाओं ने मारवाड़ के राजाओं से चुपचाप संधि करली और वे अपने संकटापन्न अधिराज का पक्ष छोड़कर विपक्ष के लश्कर में जा मिले।

परन्तु वे दोनों वीर (लवणप्रसाद और वीरधवल) तो उक्त दोनों राजाओं के साथ रहते पर न तो अपने सैन्य को सबल मानते थे और न उनके चले जाने पर उसे निर्बल हुआ मानते थे, क्योंकि भिद्य और उदध्य[28] नामक ह्रदों (तालाबों) का जल यदि समुद्र में आ जाता है तो वह चयी (समृद्ध) नहीं हो जाता और यदि नहीं आता तो वह क्षयी (क्षीण) नहीं होता।

सामने सिंघण की सेना थी और पीछे चार महराज; फिर भी, अचिन्त्य शक्ति वाले उन दोनों वीरों के मुखों की लाली में कोई अन्तर नहीं आया। आगे भाग, हुए यदुवीरों का पीछा करता हुआ, पीछे से प्रतिपक्षी राजाओं का हमला होने पर मस्त हाथी की तरह गुस्से में भर कर वह वापस युद्धभूमि में लौट पड़ता था।

इन राजाओं का आपसी युद्ध ग्रहों के पारस्परिक विग्रह के समान हुआ जिसके फलस्वरूप सारा प्रदेश जल उठा और जारों और चोरों का प्रचार (बढ़ाव) हो गया।

बहुत से विरोधी राजाओं से घिरे हुए इन दिनों चौलुक्यवंशी राणाओं को देखकर लोगों ने ऐसा मान लिया कि जैसे सूर्य और चन्द्रमा के मेघों से घिर (ढक) जाने से दुर्दिन हो जाता है उसी प्रकार अब प्रजा का दुर्दिन (खोटा समय) आ गया है।

चौलुक्य राजा के वापस लौटने पर यादव उसका पीछा नहीं करते थे क्योंकि

---

28. समुद्र के किनारे के छोटे-छोटे तालाब जिनमें समुद्र का ही जल आता जाता रहता है।

सिंह जिस मार्ग को एक वार ग्रहण करके छोड़ देता है उस पर हरिणों (मृगों) को आगे बढ़ने की तुरन्त हिम्मत नहीं होती।

इस प्रकार तीव्र प्रताप के प्रसार से रौद्र बना हुआ शूरवीर लवणप्रसाद हरे-भरे चन्दनाद्रि (मलयाचल) की दिशा छोड़ कर हिमालय की दिशा में जाने को प्रवृत्त हुआ।

सिंघण के साथ जो युद्ध-प्रसंग हुआ उसका जो वर्णन ऊपर दिया गया है वह सोमेश्वर के अनुसार है; परन्तु, ऐसा लगता है कि अन्त में दोनों ही पक्षों ने यह समझ लिया कि आपस में मेल कर लेने में ही लाभ है इसलिए उन्होंने सन्धि कर ली होगी। ऐसी धारणा का एक प्रमाण यह भी है कि लेख-पचाशिका नामक ग्रन्थ की रचना प्राय: संवत् 1288 में हुई जान पड़ती है; इस ग्रन्थ की संवत् 1536 की लिखी एक प्रति सरकार द्वारा खरीदे हुए संग्रह में है; उस में एक यमल-पत्र नमूने के रूप में दिया हुआ है, जो इस प्रकार है—

"संवत् 1288 वर्षे वैशाष शुदि 15 सोमेऽद्येह श्रीमद्विजयकटके महाराजाधिराजश्री श्रीमत् सिंहणदेवस्य महामण्डलेश्वरराणकश्री लवणप्रसादस्य च संराज (साम्राज्य, सम्राट् ?) कुल श्री श्रीमत्सिंहणदेवेन महामण्डलेश्वरराणश्रीलवणप्रसादेन पूर्वरूढ्यात्मीय 2 (आत्मीय आत्मीय) देशेषु रहणीयं। केनापि कस्यापि भूमि नाऽक्रमणीया।"

'आज संवत् 1288 के वर्ष में वैशाख शुदि 15 सोमवार के दिन श्रीमद्विजय-पटक के स्थान पर महाराजाधिराज श्रीमत् सिंहणदेव तथा महामण्डलेश्वर राणक श्री लावण्यप्रसाद के वीच हुआ करार इस प्रकार है कि चक्रवर्ति राजकुल का श्रीमत् सिंहणदेव तथा महामण्डलेश्वर राणा श्रीलावण्यप्रसाद पूर्व रूढि के अनुसार अपने-अपने देशों में ही रहेंगे; कोई भी किसी की भूमि पर आक्रमण नही करेगा।'

इसके आगे इस करार-पत्र में यह भी लिखा है कि दोनों मे से किसी के भी देश पर यदि शत्रु हमला करेगा तो दोनों की सेनाएँ एकत्रित होकर उसका मुकावला करेंगी। इसी प्रकार यदि कोई राजपुत्र एक के देश मे से कोई मूल्यवान वस्तु लेकर दूसरे के देश में चला जाय तो अपर राजा उसको आश्रय नहीं देगा।

ऊपर दिया हुआ लेख यद्यपि नमूने के तौर पर दिया गया है तथापि इस प्रकार की घटना के घटित हुए विना ऐसा विगतवार और नामोल्लेख सहित लेख लिखने की सम्भावना नहीं होती।

जगडूशाह और पारदेश का पीठदेव

चौलुक्यवंश के भूषण रूप नरेश्वर श्री भीमदेव प्रथम ने भद्रेश्वर (भद्रपुर)[29]

---

29. भद्रपुर या भद्रेश्वर कच्छ में मुनरा तालुके का गाँव है।

का कोट बनवाया था। पार देश से सेना लेकर पीठदेव[30] आया और उसने उस कोट को तोड़ दिया। रास्ते में जो देश पड़े उनको भी उसने तहस-नहस कर दिया और इस तरह अपने प्रचण्ड भुजदण्ड का पराक्रम बताता हुआ तथा समृद्धि को समेटता हुआ वह वापस लौट गया।

जगड़ूशाह ने उस कोट को पुनः चुनवाने का उपक्रम किया। जब पीठदेव को खबर हुई तो उसने कहलाया "यदि गधे के सिर पर दो सींग उगना सम्भव हो तो इस जगह कोट चुनाया जा सकता है।" दूत ने आकर जब यह सन्देश दिया तो जगडूशाह

---

30. थार पारकर का राजा। मुन्तखब उत्-तवारीख के अनुसार उसकी वंशावली इस प्रकार है—

सुमरा (हिजरी सन् 445 से 446 अर्थात् 1053 ई. से 1054 ई. तक एक वर्ष)

|

मुंगेर या भुंगर (हि. स. 446 से 461 अर्थात् 1054 ई. से 1069 ई. तक 15 वर्ष)

|

दोदा (दूदा) प्रथम (हि. सं. 461 से 485; 1069 ई. से 1092 ई. तक 24 वर्ष)

|

थारी (लड़की, संघार के बाल्यकाल में इसने राजकाज सम्हाला) — संघार हि. स. 485–500 अर्थात् 1092 ई. 1107 ई. = 14 वर्ष)

|

खफीफ (हि. स. 500–536; 1107 ई. 1143 ई. = 36 वर्ष)

|

उमर (हि. सं. 536–576; 1143 ई. 1183 ई. = 40 वर्ष)

|

दोदो सानी, (दूसरा) (हि. सं. 576–590; 1183 ई-1197 ई. 14 वर्ष)

|

पिथू (पीठदेव) — (पित्थू या फत्तू) (हि. स. 590–623; (1197 ई –1238; अर्थात् संवत 1253 से 1186 तक, 33 वर्ष

ने कहा, ठीक है, गधे के सिर पर सींग उगाकर ही मैं यह वप्र (कोट) बँधाने का प्रयत्न करूंगा।'

वाचाल दूत ने उत्तर दिया "धन के अभिमान में तन कर तुम व्यर्थ ही अपने कुल का क्यों नाश करवाते हो ? सुनो—

गीति

दीपक प्रभावं पेखे, तो पण तेमा पतंग जाई पड़तो;
परिणमे ते पोते, निज कायानो विनाश झट करतो।

मेरा स्वामी महा तेजस्वी पुरुष है; उसके साथ बिगाड़ करके कोई भी सुखी नहीं हुआ। तुम जानते हो, वह कैसा है ? प्रचण्ड भुजदण्डधारी सभी शत्रु राजाओं का प्रताप उसने एक क्षण में ही हर लिया है; तुम्हारे जैसे वैश्य के साथ लड़ाई में उतरना उसके लिए लज्जा की बात होगी। इसलिए मेरे स्वामी ने जो सन्देश कहलाया है उसका मान करते हुए तुम कोट चुनवाने का उपक्रम छोड दो और मेरा कहना मानो तथा इस तरह अपने कुटुम्ब सहित इस साहिबी का उपभोग करते रहो।"

यह सुनकर जगडूशाह ने, जो दूसरे के मन को जान लेने में कुशल था, उत्तर दिया, 'मैंने कोट चुनवाने का काम हाथ में लिया है उसको पूरा करूंगा; मैं तेरे स्वामी से डरता नहीं हूँ।'

इस प्रकार इन्द्र के समान कान्तिवाले जगडूशाह से तिरस्कृत होकर वह सन्देशवाहक अपने स्वामी के पास लौट गया और वहाँ उसने पूरी हकीकत बयान कर दी।

इधर जगडूशाह ने देखा कि बड़े के साथ वैर बँधा है तो पूरी तैयारी रखनी चाहिए इसलिए अणहिल्लपुर जाकर उसने प्रशस्त नृपति लवणप्रसाद से भेंट की। चौलुक्यकुलदीप नरेश्वर जगडूशाह से बड़ी अच्छी तरह मिला; उसने उसको सुन्दर आसन पर बैठा कर पूछा, "हे कृतिन् (भाग्यशाली) आपके समस्त कुल मे क्षेम कुशल तो है ? भद्रपुर में सब कुछ ठीक है ? हमारे निर्देश के बिना अचानक ही आपका यहाँ पर आगमन कैसे हुआ ? हे सद्गुणराजमान ! जिस प्रकार मोक्षार्थी का मन सुसमाधि मे स्थिर रहता है, मेरु पर्वत से जैसे धरातल सुस्थिर है उसी प्रकार आपके वहाँ रहते हुए मेरा राज्य भी स्थिर बना हुआ है।"

राजा के वचनों को सुनकर अपने मन में अतीव आनन्द का अनुभव करता हुआ जगडूशाह, सकल को सुनाता हुआ बोला, "हे महाराज ! सर्वशत्रु विनाशन में समर्थ आप इस पृथ्वी पर सत्ता धारण करते है तो फिर मेरे कुल और भद्रेश्वर में कुशलता बरत रही है, इसमें कौन सी नई बात है ? फिर भी, मैं यह निवेदन करने

आया हूं कि एक अतिक्रोधी पीठदेव नामक राजा आपकी आज्ञा की अवज्ञा करता है। हे देव ! प्रजा के आनन्द के लिए ही आपका उदय हुआ है और आपका प्रभाव दिन-दिन बढ रहा है, फिर भी सूर्य के समान आपके प्रताप की वह धुन्धुराज की तरह अवज्ञा करता है। जिस प्रकार जल का प्रवाह नदी के तट को तोड़ देता है उसी प्रकार उसने चौलुक्यवंशभूषण महाराज भीमदेव द्वारा चुनवाये हुए भद्रेश्वर के कोट को भग्न कर दिया है और मुझे यह धमकी दी है कि यदि कभी गधे के सिर पर सींग उग सकते हैं तो यहाँ पर सुन्दर कोट बंध सकता है। इसी कारण मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए सत्वर आपके पास आया हूं और निवेदन करता हूं कि क्षत्रियों के महान् छत्तीस कुलों में उत्पन्न हुए सुभटों की सेना वहाँ पर तैनात करना समुचित है।"

तब लवणप्रसाद ने उसकी मांग के अनुसार सेना भेज दी और उसे साथ लेकर जगडूशाह भद्रेश्वर आ पहुँचा। जब पीठदेव को समाचार मिला तो वह अपना स्थान छोड़कर न जाने कहाँ चला गया। इधर जगडूशाह ने कोट का निर्माण आरम्भ करा दिया; परन्तु, कहते हैं कि, जितना मार्ग दिन में बनकर तैयार होता रात को उसे भद्रेश्वर देव तोड़ देते थे। अतः उनको प्रसन्न करने के लिए कोट के ऊपर भद्रेश्वर का स्थान बनवाया गया। छः मास में वह कोट बनकर तैयार हो गया और राजा की सेना वापस लौट गई।

यह सब देखकर पीठदेव भी अपनी बात पर टिका नहीं रह सका इसलिए उसने जगडू के साथ सन्धि करली। एक बार वह भद्रेश्वर आया तब जगडूशाह ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया और चारों ओर पर्वत के समान उठे हुए कोट का निरीक्षण कराया। कोट के एक कोने में गधे की मूर्ति थी जिसके सोने के सींग थे और उसका निर्माण ऐसी स्थिति में कराया गया था कि जिसको देखकर पीठदेव की माता का अपमान होता था। यह देखकर पीठदेव को अतीव सन्ताप हुआ और त्रास के मारे उसको खून की उलटियाँ होने लगीं। इसी से उसके प्राण भी चले गये।

सिन्धुराज को भी यह बात मालूम हुई तो वह भी जगडूशाह से डर गया और उसको मान-सम्मान देकर प्रसन्न रखने लगा।

जगडूशाह ने बहुत से धर्म-कार्य किए जिनके प्रसंग में यह भी उल्लेख मिलता है कि उसने म्लेच्छों के साथ व्यापार करके सम्पदा बढ़ाने के कारण एक मसजिद भी बनवाई थी।[31]

---

31. मसीतिं कारयामास षीमलीसंज्ञितामसौ।
भद्रेश्वरपुरे म्लेच्छलक्ष्मीकारणतः खलु ॥6॥64॥ —जगडूचरित

चौलुक्य राजा की सेना की सहायता से जगडूशाह निरंकुश मुद्गलों को जीत कर स्वस्थ हुआ और उसने संसार में अपना पराक्रम प्रकट किया।[32]

उस समय मुगलों के बारम्बार आक्रमणों से भरतखण्ड के वायव्य कोण और उत्तर तथा पश्चिम का बहुत-सा भाग छिन्न-भिन्न हो गया था। दिल्ली के सुलतान उस प्रदेश की रक्षा के लिए जिन सूबेदारों को भेजते वे स्वयं उस भाग के मालिक बन बैठने के प्रयत्नों में प्रजा को परेशान करते रहते थे। भोला भीम, पृथ्वीराज चौहान और जयचंद आदि के आपसी वैमनस्य और लड़ाई-झगड़े का नतीजा यह हुआ कि वे निर्बल पड़ गए और शहाबुद्दीन गोरी आदि म्लेच्छों की भरतखण्ड में राज्य स्थापित करने की हिम्मत बढ़ गई। इसी तरह गजनी के शासकों के विरुद्ध भी म्लेच्छ खड़े हो गए और उनकी तथा उनके राज्य की कैसी दुर्दशा हुई एवं मुगल उन पर कैसे हावी हो गए, यह सब बातें जिन लोगों ने पढ़ी हैं उनके ध्यान में आ गया होगा कि उन्होंने सिन्ध का पश्चिमी प्रदेश दबा लिया था और उनकी जोर-जबरदस्ती व छुटपुट हमले पास के प्रदेशों पर होते ही रहते थे।

उस समय भद्रेश्वर कच्छ का बहुत बड़ा बन्दरगाह था; वहाँ के व्यापारी दूर-दूर तक के देशों में व्यापार चलाते थे। उनके वाहन समुद्र तट स्थित सभी देशों में जाते थे और वहाँ से कच्छ के किनारे आते थे। जगडूशाह[33] एक बहुत बड़ा

32. चौलुक्यनृपचक्रेण मुद्गलान् स निरर्गलान्।
विजित्य जगति स्वास्थ्यं व्यतनोद् व्यक्तविक्रमः ॥66॥

33. जगडू कच्छ के वर्तमान मुनरा तालुका में भद्रेश्वर ग्राम (मूलतः भद्रेश्वर वेलाकूल बन्दर) का रहने वाला था। सर्वानन्द सूरि ने श्री जगडू चरित नामक काव्य की रचना की है जिसको रा०ब० मगनलाल दलपतराम खख्खर ने प्रकाशित किया है। काव्य में आए हुए प्रसिद्ध स्थानों एवं व्यक्तियों की नामानुक्रमणिका डा० बूह्लर ने बहुत श्रम करके अपने **इण्डियन स्टडीज,** अंक 1 में प्रकट की थी।

उसमें जगडू की वंशावली इस प्रकार दी है—

वियदु (श्रीमाली बनिया)
(इसने कुए, वाव, अन्नसत्र, देवालय और परब बँधाए तथा संघ की सेवा की)
|
वरणाग
(कंथा नगरी, आधुनिक कंथकोट, में रहता था; इसने संघ निकाल कर सत्रुंजय तथा रैवताचल (गिरनार) की यात्रा की थी)
|

व्यापारी था। उसके वाहन दूर देशों में जाते थे और म्लेच्छों के साथ व्यापार करके वह उनसे धन कमा कर लाता था। मुगलों के हमलों को उसने लवणप्रसाद और वीरधवल की सेना की सहायता से रोककर उनसे धन प्राप्त किया होगा, यह सम्भव लगता है। उसी समय सोमनाथ-देवपत्तन बन्दर पर भी म्लेच्छों का व्यापार चलता था और अर्जुनदेव के समय में वि० संवत् 1320 में वहाँ के एक नाखुदा (मांझी) नूरुद्दीन फीरोज ने जब मसजिद बनवाई तो उस काम में हिन्दुओं ने आगे आकर आश्रय दिया था।[34] इसी तरह भद्रेश्वर में जगडूशाह ने भी मसजिद बनवाई हो तो कोई नई बात नही है।

इस प्रकार, जहाँ आवश्यक हो वहाँ, देश में शान्ति स्थापित करने और आस-पास के रजवाड़ों को स्वाधीन करने की योजना बनाकर लवणप्रसाद और वीरधवल ने काम आरम्भ किया। महाराष्ट्र तक पहुँच कर उन्होंने उस प्रदेश पर कब्जा कर लिया। वीरधवल के पराक्रम पर विश्वास करके लवणप्रसाद ने सब काम उसी पर छोड़ दिया। उसने भी वस्तुपाल और तेजपाल को पास रखकर सावधानी से राज्य-तंत्र चलाना शुरू किया। समुद्री तट के बहुत से राजा प्रायः उपद्रव मचाया करते

वास
- वीसल
  - लक्ष
- वीरदेव
  - सुलक्षण
- नेमि
  - सोल (सोलक, भद्रेश्वर में आकर बसा; उसकी स्त्री लक्ष्मी)
    - जगडू (स्त्री यशोमती : प्रीतिमती पुत्री का यशोदेव के साथ विवाह हुआ, परन्तु वह तुरन्त विधवा हो गई)
    - राज (स्त्री राजल्ल देवी)
      - विक्रमसिंह (विक्रमसी)
      - धांधो
      - हसी (पुत्री हंसाबाई)
    - पद्म (स्त्री पद्मा)
- चाडू
- वस
  - सोही

34. देखिये कर्नल टाड कृत Travels in Western India का हिन्दी अनुवाद **पश्चिमी भारत की यात्रा**, परिशिष्ट, पृ. 519 राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित।

थे; उनके कितने ही कामों में मदद करके मंत्रियों ने उनको अपने वश में कर लिया और उन्होंने भी अच्छे-अच्छे भारी नजराने भेंट किए। सर्वत्र शान्ति स्थापित हो गई और खेती-बाड़ी चढने लगी जिससे प्रजा में खाने-पीने की कमी नहीं रही। सुरक्षा के सुचारु प्रबन्धों के कारण प्रजा भयमुक्त हो गई। वीरधवल नीतिपूर्वक राज्य चलाता था इसलिए कोई भी किसी से विरोध नहीं कर सकता था। जंगली भीलों को पूरी तरह काबू मे रखा जाता था। पाल्व वन में वृक्षों पर कपड़े टँगे रहते परन्तु मज़ाल है कि कोई उन्हें उठा लें जाने की हिम्मत करे! राज्य चलाने में उसने सूर्य का गुण धारण किया था; जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों द्वारा पृथ्वी का पानी सोख लेता है और फिर आवश्यकता पड़ने पर वर्षा द्वारा वापस जल-प्रदान करता है उसी तरह राणा भी प्रजा से कर के रूप में धन इकट्ठा करके उसे उन्हीं के हितार्थ व्यय करता था। प्रवास करने वालों और याज्ञिकों के लिए उसने गाँव-गाँव में अन्न-क्षेत्र खोल दिए थे, जहां भूखों को पेट भर भोजन मिलता था; साथ ही मुख-सुवास के लिए ताम्बूल भी मिलता था। रोगियों के उपचार के लिए जगह-जगह औषधालय स्थापित थे जिनमें अच्छे अनुभवी और कुशल वैद्य नियुक्त थे। वे भी प्रजा को रोगमुक्त करने में ही अपने आयुष्य का उपयोग करते थे। एक पंथ के अनुयायी अपर पंथ वालों से झगड़ा नहीं करते थे; इसी प्रकार एक वर्ग की प्रजा दूसरे वर्ग से द्वेष नहीं करती थी। देश और परदेश के विद्वानों को यथोचित सम्मान प्राप्त होता था। वीरधवल सदा ही कलाकुशल पण्डितों की सभा में विराजता था। उसका कुल-पुरोहित सोमेश्वर कवि बहुत बड़ा विद्वान् था, जिसके विषय में आगे लिखा जायगा। सोमादित्य, कमलादित्य, नानाक आदि 108 पण्डित उसके दरबार में रहते थे। परदेश से आने वाले कवियों की परीक्षा करके उनका यथायोग्य सत्कार किया जाता था।

महाराजपद के योग्य पूरी स्थिति बन जाने पर एक दिन वस्तुपाल और तेजपाल ने वीरधवल से निवेदन किया 'हे देव! आपने इस गुर्जरधरा को स्वाधीन कर लिया है, दूसरे देशों के राजाओं को करदाता बना लिया है, इसलिए सब तरह से आप 'महाराज' पदवी के योग्य हो गए हैं; अब तो कोई शुभ मुहुर्त देख कर 'महाराजाधिराज' पद धारण करने का अभिषेकोत्सव करना चाहिए। मन्त्रियों का ऐसा कथन सुनकर वीरधवल ने कहा—

अजित्वा सार्णवामुर्वीमनिष्ट्वा विविधैर्मखैः।
अदत्वा चार्थमर्थिभ्यो भवेयं पार्थिवः कथम्॥

'समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी को जीते बिना, विविध यज्ञों का विधान किए बिना और याचकों को दान दिए बिना मैं राजा कैसे हो सकता हूँ?' मेरा तो राणा पद ही ठीक है।

वीरधवल की उदारता की एक बात इस तरह है–एक बार ग्रीष्म ऋतु की रात्रि में वह अपनी चन्द्रशाला में सो रहा था तब एक खवास उसकी पगचम्पी कर रहा

था। उसके पैर में रत्नजटित अंगूठी थी जिसको खवास ने निकाल लिया। वीरधवल उस समय जागृत अवस्था में था परन्तु सब कुछ जानते हुए भी वह कुछ नहीं बोला। प्रातःकाल भण्डारी से वैसी ही दूसरी अंगूठी लेकर उसने पहन ली। रात को सोते समय वही खवास पगचम्पी करने लगा तो उसे, गौर से देखने पर, वैसी-की-वैसी अंगूठी नज़र आई जिससे वह विचार मे पड़ गया। तब वीरधवल ने हँसकर कहा, "भाई यह अंगूठी अब क्यो नहीं लेते ? कल एक निकाल ली उसकी कोई चिन्ता नहीं है।" उसके ये वचन सुनकर खवास पर मानो वज्रपात हो गया, वह भयभीत होकर कांपने लगा, क्योकि—

हसतो पण नृप हणशे, स्पर्श करंतो करिवर पण हणशे,
दुर्जन मान दियंतो, कूंकतो पण भुजग तो हणशे।

'हँसता हुआ राजा मार सकता है, स्पर्श करने पर हाथी मार सकता है, मान देने पर भी दुर्जन मार सकता है और कीलित सर्प भी प्राण ले सकता है।' खवास को घबराया हुआ देख कर वीरधवल ने कहा 'घबरा मत, तेरी यह आदत पड़ गई है इसमे हमारी भी चूक है; यदि दरबार से तुझे जिवाई (गुजारा) मिलती होती तो तेरा मन ऐसे खोटे काम करने को नहीं ललचाता। अब से, तुझे बैठने के लिए एक घोड़ा और आधे लाख की जागीर दे दूंगा।' यह सुनकर खवास बहुत राजी हुआ और अपने किए हुए अयोग्य काम पर पछताने लगा। वीरधवल की ऐसी क्षमाशीलता और दयालुता का सभी लोग बखान करते है।

वीरधवल दिनों-दिन प्रबल होता गया। उसके बुद्धिशाली मन्त्री भी प्रजा को प्रसन्न रखने के विविध कार्य और बरताव करने लगे।

इतने ही मे उनके द्वारा दिल्ली भेजा हुआ गुप्तचर आ पहुंचा। उसने कहा, "मोजउद्दीन बादशाह के लश्कर ने पश्चिम की तरफ कूच किया है; चार मंजिल तय कर चुका है; आबू के रास्ते होकर आने का मनसूबा है और उनकी आँख गुजरात पर लगी हुई है इसलिए आप लोगों को सचेत रहना चाहिए।" यह खबर सुनते ही वस्तुपाल खबर-नवीस को राणा के पास ले गया और उसने पूरी हकीकत वहाँ भी बयान कर दी। तब राणा ने कहा, 'मन्त्रीश ! म्लेच्छ बहुत बली होते है; उन्होंने गर्दभी विद्या सिद्ध करने वाले गर्दभिल्ल का पराभव किया, सूर्यबिम्ब मे से प्रकट हुए तुरंगम से राजपाट चलाने वाले शिलादित्य को पीड़ित किया, सात-सौ योजन विस्तार वाली भूमि के स्वामी जयचन्द्र का विनाश किया और जिस पृथ्वीराज ने बीस-बीस बार शहाबुद्दीन सुल्तान को पकड़-पकड़ कर छोड़ दिया उसको भी इन लोगों ने पकड़ लिया। ऐसे इन दुर्जय म्लेच्छों के आने पर हम लोगों को क्या करना चाहिए ?' वस्तुपाल बोला, 'आप मुझे उसके सामने जाने की आज्ञा दे; फिर, जैसा मौका होगा वैसा करूंगा।'

फिर, एक लाख चुने हुए सवार साथ लेकर उसने म्लेच्छों के सामने प्रयाण किया। तीसरे कूच के बाद उसने आबू के धारावर्ष को, जो गुजरात का अधीनस्थ

राजा था, गुप्तचर भेज कर कहलाया कि म्लेच्छों की सेना जिस रास्ते से आवे उसको पहले अन्दर आ जाने दें और फिर पिछवाडे से घाटी रोक लें। इस प्रकार जब यवन सेना अन्दर आ चुकी तो तुरन्त ही धारावर्ष ने पिछवाड़े से घाटी रोक ली और आगे से वस्तुपाल ने आक्रमण कर दिया। धारावर्ष और वस्तुपाल, दोनों ही, विकराल काल के समान उन म्लेच्छों पर टूट पड़े; ऐसी मारकाट हुई कि यवन सेना में त्रास छा गया, हाय हाय मच गई, कितनों ही के डर के मारे दाँत बजने लगे, कितने ही 'तोबा, तोबा' चिल्लाने लगे, भगदड़ मच गई, परन्तु वस्तुपाल ने एक को भी नहीं छोड़ा। कहते हैं कि उसने वहाँ एक लाख म्लेच्छों को मारा और उनके माथे काट-काट कर गाडियों में भरकर वह अपने स्वामी के सम्मुख ले गया। इस प्रकार लौट कर उसने राणा को नमस्कार किया।

राणा भी उसके इस पराक्रम से बहुत प्रसन्न हुआ और उसका बखान करके कहने लगा 'तुमने महाभारत जीतने जैसा महान् कार्य किया है; फिर भी, अपनी बडाई नहीं हाँकते हो, विकट आटोप नहीं रखते हो (शान नहीं बघारते हो), अभिमान से ऊँचा मुँह करके नहीं चलते हो, गर्व से पृथ्वी पर धम-धम करके नहीं चलते हो, किसी पर हिकारत (अवज्ञा) की नजर नहीं डालते हो, परन्तु, इस अत्यन्त विकट युद्धसागर को अकेले ही पार करके अपनी धवल कीर्ति का भार तुमने इस पृथ्वीतल में अपने मस्तक पर धारण किया है।" इस प्रकार प्रशंसा करके उसको उत्तम पारितोषिक प्रदान किया। सम्मान प्राप्त करके जब वस्तुपाल अपने घर आया तो उसको बधाई देने को इतने लोग उपस्थित हुए और इतने पुष्पहार उसके गले में डाले कि फूलों का एक-एक गजरा एक एक द्रम्म के मोल भी नहीं मिला।

नागपुर में एक देल्हा नाम का फकीर रहता था। उसके पुत्र का नाम पूनड़ था। मोजउद्दीन सुलतान की बीबी ने उसे अपना भाई बना रखा था। वह अश्वपति, गजपति और नरपति सभी में मान्य हो गया था। उसने संवत् 1273 (1217 ई.) बवेलपुर की राज्ययात्रा की। संवत् 1286 (1230 ई.) में वह मोजुद्दीन की आज्ञा लेकर नागपुर से निकला। अपने साथ 1800 गाडियाँ व बहुत से बैल लेकर वह बड़े दलबल सहित मांडल्यपुर तक आया। तेजपाल सामने जाकर उसे धोलका ले आया। वस्तुपाल भी उस संघ की सद्भावना का लाभ लेने को अगवानी मे गया। सब लोगों को अपने घर लाकर उसने उनका आगत-स्वागत किया, भोजन कराया, सब तरह से सन्तुष्ट किया तथा विदाई की भेंट अर्पण की। संघ का प्रतिपालन करने से पुण्यलाभ होता है, यह समझकर उन्होंने यात्रियों की अच्छी सेवाचाकरी की, यहाँ तक कि स्वयं तेजपाल ने प्रत्येक मेहमान को अर्घ्यपाद्य देकर सम्मानित किया। फिर, नागपुर के संघवी पूनड़ के साथ स्वयं वस्तुपाल शत्रुंजय तक गया और उसकी सांगोपांग यात्रा पूरी कराई। इसके बाद पूनड़ नागपुर चला गया और वस्तुपाल धोलका लौट आया।

मोजुद्दीन की माता का हज के लिए प्रयाण

पूनड़ के लौटने पर कुछ दिनों बाद बादशाह मोजुद्दीन की माता हज करने को मक्का जाते समय खम्भात आईं और एक मुसलमान समुद्री व्यापारी के घर पर ठहरीं। किसी गुप्तचर ने यह समाचार मंत्री को सुनाया। उसने आज्ञा दी कि वह वा म जलमार्ग से यात्रा के लिए निकले तो खबर दी जाय। तदनुसार यथासमय उसको सूचना दी गई। खबर मिलने पर उसने अपने कोलियों को भेज कर उस बुढ़िया के पास जो कुछ था सब लुटवा लिया और वह सब सामान सम्हाल कर रख लिया। जब यह घटना घटी तो वह मुसलमान नाविक रोता-कूटता मंत्री के पास आया और फरियाद करने लगा कि 'हमारे संघ की एक डोकरी को आपके यहां के लुटेरों ने लूट लिया है।' वस्तुपाल ने अनजाने की तरह पूछा, 'यह डोकरी कौन है?' तब उस नाविक ने कहा 'यह तो मोजुद्दीन सुलतान की माता है और सभी के लिए सम्मान्य है।' यह बात सुन कर मंत्री ने मायाप्रयोग करते हुए ऊपर से अपने आदमियों को बहुत डाँटा फटकारा तथा तावड़तोड़ कोशिश करके लूट का माल बरामद करने का आदेश दिया। इसके बाद बहुत आग्रह करके वह उस बुढिया को अपने घर ले आया। उसने बड़ी अच्छी तरह उसका आगत-स्वागत किया और लूट का सब माल यथावत् वापस लौटा दिया। इससे वह बुढ़िया माता बहुत प्रसन्न हुई।

बाद में वस्तुपाल ने कहा, 'माँजी! तुम मक्का हज करने जा रही हो तो मैं एक आरस पत्थर का तोरण गढ़ा देता हूँ। यह कहकर उसने तुरन्त एक तोरण तैयार कराया और फिर उसके हिस्सों को अलग-अलग करके सूत्र से बंधवाकर बुढिया को सौंप दिया। फिर, उस तोरण को पुनः जोड़ने के लिए सूत्रकारों (सुथारों) को भी उसके साथ भेजने का प्रबन्ध किया। मक्का जाने के तीन मार्गों में से जिस मार्ग द्वारा वृद्धा ने जाने की इच्छा प्रकट की उसी के अनुसार बन्दोबस्त कर दिया गया। वस्तुपाल ने बहुत-सा धन भी उसके साथ बांध दिया। डोकरी ने मक्का पहुँच कर सबसे पहले सूत्रकारों द्वारा तोरण को ठीक कराकर मसजिद के द्वार पर चढाया। दीप तेल आदि से पूजन करने के बाद राणा की तरफ से वर्षासन भी निश्चित किया गया और तरह-तरह का दान दिया गया जिससे उसके यश का विस्तार हुआ।

जब वृद्धा लौट कर आई तो वस्तुपाल ने उसका प्रवेशोत्सव मनाया और अपने हाथों से उसका चरण-प्रक्षालन किया। फिर, दस दिन तक उसने वृद्धा को अपने घर पर रक्खा, उनकी पहुनाई की और अच्छा भक्तिभाव जताया। जब वह दिल्ली लौटने लगी तो मंत्री ने कहा, 'माता! यदि आज्ञा हो तो मैं तुमको पहुँचाने के लिए साथ चलूं।' सुलतान की माता ने प्रसन्न होकर कहा, 'वहां तो हमारी हुकूमत है, जरूर साथ चलो।' इस प्रकार उससे पूछ कर वस्तुपाल ने वीरधवल से परवानगी माँगी और पांच-सौ घोड़े बछेड़े तथा वस्त्र गन्धादि साथ लेकर वह रवाना हुआ।

दिल्ली के निकट पहुँचते ही सुलतान को खबर हुई कि माता वापस आ रही है तो वह अगवानी करने आया। उसने अम्मा से पूछा 'आपकी यात्रा अच्छी तरह पूरी हुई?' तब वृद्धा ने उत्तर दिया 'दिल्ली में तेरे जैसा शाहज़ादा है और गुर्जरधरा में वस्तुपाल जैसा दूसरा लड़का है तो फिर मेरी यात्रा क्यों न सुखद होगी?' बादशाह ने कहा, 'वह वस्तुपाल कहाँ है? तुम उसे साथ ही क्यों न ले आई?' माता ने कहा, 'मैं ले आई हूं, वह दो गाँव के फ़ासले पर है।' यह सुनकर बादशाह ने अपने घुड़सवार वस्तुपाल को लिवा लाने को भेजे।

वस्तुपाल ने आकर नजर भेंट की और प्रणाम किया। बादशाह ने प्रसन्न होकर कहा, "हमारी अम्मा तुम्हारी बहुत तारीफ़ करती हैं, तुमने उनकी खूब खिदमत की है। हम चाहते हैं कि तुम जो चाहो माँग लो।"

वस्तुपाल ने कहा, 'मुझे किसी बात की कमी नहीं है, परन्तु यदि आपकी इच्छा ही है तो मैं यह माँगता हूं कि आप गुजरात के राजा के साथ सन्धि रखें और हमारी गुर्जरधरा पर कभी आक्रमण न करें। दूसरी बात यह माँगता हूं कि मम्माणी खान से पाँच पत्थर लेने की मुझे इजाज़त दें।'

बादशाह ने तुरन्त ही वस्तुपाल की दोनों मांगें स्वीकार कर लीं और मूल्यवान पोशाक आदि देकर उसको विदा किया। बाद में, पूनड़ ने पांच पत्थर भी भिजवा दिए जो शत्रुंजय आदि तीर्थों में काम आए।

वापस धोलका आकर वस्तुपाल ने अपने स्वामी को नमस्कार किया और, किसी प्रकार का अभिमान जताए बिना, सब वृत्तान्त कह सुनाया। वीरधवल बहुत प्रसन्न हुआ और उसने वस्तुपाल को दस लाख सुवर्ण तुष्टिदान मे दिया। परन्तु, वह मंत्री भी ऐसा दानी था कि घर पहुँचते-पहुँचते उसने सब धन दान में लुटा दिया। इसी प्रसंग मे एक कवि ने कहा है—

'द्विजराज एक देखी, संकोचाई कमल तुरत जाय।
द्विजराज लक्ष देखी, विकासी तुझ कर कमल ज दीपाय॥'

"एक द्विजराज (चन्द्रमा) को देखकर कमल तुरन्त ही संकुचित हो जाते हैं, मुंद जाते हैं; परन्तु, तुम्हारा कर-कमल (हाथ रूपी कमल) तो लाखों द्विजराज (ब्राह्मणों) को देखते ही (दान देने को) विकसित हो जाता है।"

उच्चाटन, आकर्षण और वशीकरण, यह तीनों ही बड़ी उत्तम मन्त्रसिद्धियां मानी जाती हैं; वस्तुपाल भी सिद्ध-मंत्र के समान है, क्योंकि—

गीति

अरि उर उच्चाट करवा, श्री आकर्षी निज कर ग्रही लेवा;
नृप-मन-हय वश करी ले, उत्तम ने सिद्ध मंत्र छे एवा॥

ऐसे बखान सुनकर स्वयं उत्तम प्रकृति वाला होने के कारण वस्तुपाल ने

लज्जा से अपना मुख नीचा कर लिया। उस समय महानगरनिवासी नानाक कवि ने कहा —

कवित्त

'एक ज तूं अवनीमां, दान तणो देवावालो,
एम तोर विषे वाणी, सज्जनों उचारे छे;
सांभलतां आवा वैण, लाज तो लगे छे तूनें,
तेथी तूं भुवनतल, नजरे निहारे छे।
सरस्वती मुखशोभा, देनार ओ वस्तुपाल !
एनूं एक कारण तो, मनें एम भासे छे;
तारा जेवो दानशील, बली तो पाताल वस्यो,
तेने अहीं आणवाने, भूमि मां तपासे छे॥"

इसी भाव को प्रकारान्तर से कृष्णनगरी (द्वारका) के निवासी कमलादित्य कवि ने कहा–

कवित्त

"चला एवी लक्ष्मी जेवी, त्यागफला करी दीधी,
अर्थीनो संयोग ए तो, पामी एवा कारणे;
परिणाम ए थयो के, कीर्तिरूपी पुत्री जाई,
एनी शी कहेवानी वात ! रही ए तो बारणे।
त्रण भुवन कहेवाय स्वर्ग, मृत्यु ने पाताल,
तेनी मांह ठोर ठोर, भटकती गाजे छे;
एवी एनी वात सुणी, लाजना मार्या जन तो,
लाज माहे लपेटाई, नीचूं भाली लाजे छे॥"

वीरम और वीसल

राणा वीरधवल के दो कुमार थे; एक का नाम वीरम था और दूसरे का वीसल। शूरवीर पुरुषों में वीरम का बखान होता था। वर्षा ऋतु में एक बार बिजलियां चमक रही थीं; उसने समझा यह उसी पर गिरने वाली है इसलिए तुरन्त तलवार खींच ली। धोलका के वैष्णवों में ऐसा रिवाज था कि एकादशी के दिन किसी वृक्ष के नीचे जाकर वे अपनी सामर्थ्यानुसार एकसौ आठ द्रम्म, बेर या आमले चढ़ाते थे। वीरम ने भी वहां जाकर एक सौ आठ द्रम्म चढ़ाए। उसी समय एक वनिए ने आकर एक सौ आठ मोती चढ़ा दिए। उसको अपने से यों बढ़ोतरी करता देख कर वीरम को क्रोध आया और उसने तत्काल तलवार खींच कर कहा अरे बक्काल ! तू हम से अधिक कैसे चढ़ाता है ?" यह देख कर वह वणिक् वहां से अपना जीव लेकर भागा और वीरधवल की राजसभा के बीच में जा कर बैठ गया।

वीरम भी उसके पीछे-पीछे पहुंचा। उसे देखकर एकदम कोलाहल मच गया। वीरधवल को भी सारा मामला तब मालूम हुआ जब आगे-आगे बनिया और पीछे पीछे वीरम उसके सामने पहुँचे। उसने वीरम को धमकाकर कहा 'अरे उद्धत ! तू यह क्या करता है ? यह बनियाँ यदि तुझ से अधिक भेंट चढाता है तो तेरे बाप का क्या लेता है ? तू हमारे न्याय को नहीं जानता है ? जा, निकल जा, अपना कालामुँह मुझे फिर मत दिखाना। वणिक् तो मेरा चलता फिरता भण्डार है। मैं जब तक बैठा हूं तब तक किसकी मजाल है कि इसका नाम ले, देखूँ तो जरा !" इस प्रकार उसका तिरस्कार करके वीरधवल ने वीरमगाँव ग्रास में देकर उसे वहाँ से निकाल दिया। वह भी कोणिक कुमार की तरह पिता से तिरस्कार प्राप्त करके जीवित ही मृत समान होकर वीरमगाँव में जाकर रहने लगा। उसे पिता पर क्रोध तो बहुत आया परन्तु करे भी क्या ?

वीरम बड़ा था और वीसल उससे छोटा परन्तु बुद्धिमान और समझदार था, इसलिए वीरधवल की उस पर कृपा थी। वह उससे सदा प्रसन्न रहता था। वीसल में विक्रम के समान उत्तम गुण विद्यमान थे। वस्तुपाल का झुकाव भी वीसल की ओर ही था। वह जानता था कि वीरम लंठ है इसलिए कोई भी उसका विश्वास नहीं करता है। उसके विषय में यह आशंका बनी ही रहती थी कि न जाने किस समय वह क्या अनिष्ट कर डाले। इसलिए राज्य की सेना को भी सावचेत रखना पड़ता था।

अन्त समय मे वीरधवल बहुत बीमार पड़ा। जब वीरम को यह बात ज्ञात हुई तो वह पिता से मिलने के बहाने धोलका में आया। वस्तुपाल उसका मनसूबा जान गया था इसलिए उसने हाथी-घोड़ों और राजभण्डार आदि की पूरी चौकसी रखी और जोखिम वाले स्थानों पर अपने विश्वस्त आदमी नियुक्त किए। वीरम का कोई वश नहीं चला। तीन दिन की माँदगी भोग कर वीरधवल देवलोक चला गया। समस्त प्रजा शोक-समुद्र मे डूब गई; नगर में हड़ताल हो गई।

इसी समय में वीरमदेव तैयार होकर अपने आवास से गद्दी पर बैठने के लिए निकला कि उससे पहले ही वस्तुपाल ने वीसलदेव को राजसिंहासन पर बैठा दिया और तत्क्षण उसके नाम की दुहाई फिरवा दी। राज्य के सभी अंगों की पूरी सार-सम्हाल का प्रबन्ध करके वस्तुपाल ने सेना सहित वीसल को साथ लेकर वीरम पर चढ़ाई कर दी। आमने-सामने टक्कर हुई परन्तु वीरम ने समझ लिया कि अब वश की बात नहीं है इसलिए वह भाग गया और जावालिपुर (जबलपुर) पहुँच कर अपने श्वसुर उदयसिंह का शरणागत हुआ।

वस्तुपाल वीरम के इस मनसूबे को पहले से ही भाँप गया था इसलिए उसने सोलह कोस की मंजिल तय करने वाले कासिद को उदयसिंह के पास भेजकर कहला दिया 'वीरम राज्य का शत्रु (बागी) होकर आता है, उसको आसरा दोगे तो तुम

भी अपना जीव और राज्य दोनों गँवा बैठोगे।" इस तरह पूर्व-सूचना मिलने पर उसने वीरम के विरुद्ध पूरी तैयारी कर ली। वह आकर जब तक जावालिपुर के बगीचे में पहुँचा तब तक तो रक्षकों ने अपने बाणों से बींध कर उसे चलनी बना दिया। वीरम वहीं गिर गया और उदयसिंह ने उसका मस्तक काट कर वीसलदेव के पास भेज दिया। इस प्रकार कौटुम्बिक कलह से वीसलदेव का राज्य निष्कण्टक हुआ।

वीरधवल के मरने पर प्रजा ने बहुत आँसू बहाए, बहुतों की तो देखने की शक्ति ही जाती रही या क्षीण हो गई। उस समय निराधार हुआ धरातल, अन्तः-पुरवासिनी रानियों और सामन्तादिगण की अश्रुधाराओं से, भीग गया। इतने लम्बे समय तक उसकी राजधानी में किसी प्रकार का शोक न होने के कारण वह अशोक कहलाती थी;-वही अब क्षणमात्र में चारों ओर से शोक में डूब गई।

गीति

पल पर हँसी हँसी राचो; ते पछी पल माँ दुख दरिये बूडो;
एवा असार भवने,-धिक धिक कही कवि कवे कूडो भूंडो।

(जहाँ पल भर हँस हँस कर प्रसन्न होने वाले दूसरे ही क्षण दुःख के दरिया (समुद्र) में डूब जाते हैं, ऐसे असार संसार को कवि लोग धिक्-धिक्! कहकर बुरा कहते हैं)।

रोते-बिलखते लोगों के बीच वीरधवल का चितारोहण हुआ। उस समय अन्तः-पुर के जनों ने भी प्रवेश किया।[35] वस्तुपाल भी बहुत विह्वल हो गया और वह भी काष्ठभक्षण करने को तत्पर हुआ। उस समय बहुत से राजमान्य, वृद्ध और हितैषी पुरुषों ने उसे उस कर्म से निवारण करने का प्रयत्न किया परन्तु वह नहीं माना। ऐसे धी-सख (बुद्धिमान्) मन्त्री को शोकावेग में निमग्न देखकर चौलुक्य राजवंश के कुल-पुरोहित सोमेश्वर ने कहा 'सारे राज्यतन्त्र का आधार अकेले तुम पर है, तुम ही विश्वाधार शेषनाग के समान हो। महामते! वीरधवल के चले जाने से यह राज-लक्ष्मी अनाथ हो गई है फिर भी, तुम्हारे बने रहने से इसको आधार मिला हुआ है; तुम यदि इस समय यह साहसिक कर्म कर मरोगे तो दुरात्मा और दुर्जनों के मनोरथ पूरे हो जावेंगे। यह वचन सुनकर वह महामतिमान मंत्री मृत्यु का आलिंगन करने के साहस कर्म से विरत हुआ और सभा के समक्ष शोकार्त्त एवं गद्गद् होकर बोला—

कवित्त

एक पछी एक एम, षट ऋतु क्रमे आवे,
तेमां फेरफार कदि, काले न जणाय छे;

---

35. कहते हैं, वीरधवल के साथ 182 रानियों ने चितारोहण किया परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

वीर वीरधवले विहार कर्यो अंहि थकी,
उलटूं थवाथी ऋतु उलटाई जाय छे।
वर्षा ऋतु पूठे थाय, पण जन आँखोंमाँ थी
आँसुधारा वर्षी वर्षा, प्रथम ज थाय छे;
हृदयना ताप रूपी, ग्रीष्म ऋतु क्रम छोड़ी,
परिताप पमाड़ती, पोते पलटाय छे ॥[36]

इस तरह विलाप करता और निःश्वास डालता हुआ मंत्री मौन होकर बैठ गया। क्रियाकर्म सम्पन्न होने पर सब लोग अपने-अपने घर चले गये। महामना वीसलदेव ने भी अपने पिता के निमित्त जो कुछ सुकृत और क्रियाएँ आवश्यक थीं वे सब पूरी कीं। सत्कृतज्ञ-शिरोमणि महामात्य वस्तुपाल ने इस प्रसंग में एक करोड सुवर्ण का धर्म-व्यय किया।

इसके पश्चात् वस्तुपाल ने शुभ मुहूर्त में विधिपूर्वक वीसलदेव का राज्याभिषेक करने की तैयारी की। राजपुरोहित सोमेश्वर को इस कार्य में आगे रखा गया। वीसलदेव के प्रशस्त अर्धचन्द्राकार विशाल भाल पर वस्तुपाल ने अपने हाथ से अर्ध-चन्द्राकार तिलक किया। फिर सप्तांग-राज्य की रक्षा-व्यवस्था की।

वीरम सम्बन्धी अन्य वृत्तान्त

ऊपर लिखा गया है कि वीरम को उसके ससुराल वालों ने मार डाला था। श्री हर्षगणि ने इसका वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है—

चतुरंगिणी सेना को सर्वांग सज्जित करके अत्यन्त तेजस्वी वस्तुपाल मोर्चे पर खड़ा हुआ। उसके आसपास तेजपाल आदि वीर डटे हुए थे। इस प्रकार वह वीरम के सामने खड़ा हुआ। दोनों ओर की अनगिनती सेनाओं का सामना हुआ। वीरवरों में अग्रणी प्राणहारी बाण चलाने वाले मंत्री ने शत्रु को तुरन्त ही इस तरह त्रस्त कर दिया जैसे धन्वन्तरि वैद्य रोग को त्रास पहुँचाता है। कृपालु तेजपाल ने एक पल में ही वीरम के परम सहायक मामा को मार गिराया। बुध ग्रह का योग होने से राहु चन्द्रमा को नहीं ग्रस सकता इसी प्रकार राहु के समान वीरम, बुधस्वरूप बुद्धिमान वस्तुपाल मंत्री जिसका सहायक था ऐसे, वीसल-रूपी चन्द्रमा को दुर्जय समझ कर निस्तेज हो गया और वह, रणभूमि छोड़कर, अपने कुछ सहायक ठकुरों के साथ जावालिपुर में अपने श्वसुर की शरण मे चला गया।

---

36. यह प्रबन्धचिन्तामणि के इस संस्कृत पद्य का अनुवाद है—
आयान्ति यान्ति च परे ऋतवः क्रमेण
संजात मेतदृतुयुग्ममगत्वरं तु।
वीरेण वीरधवलेन विना जनानां
वर्षा विलोचनयुगे हृदये निदाघः ॥

चाहमान कुल में सूर्य के समान उदयसिंह जावालिपुर का राजा था। थोड़ा-सा ग्रास देकर उसने अपने जमाई को रख लिया। अपने श्वसुर के बल और प्रताप के आश्रय में रहता हुआ वह दुरात्मा वीरम उसी के राज्य में सर्वत्र लूटपाट करके लोगों को संताप पहुँचाने लगा। योगिनी नगरी (दिल्ली) के मार्ग के मध्य में रहता हुआ वह दुष्ट आने-जाने वाले व्यापारियों को एक जलाशय के पास लूटने लगा। उसका ऐसा आतंक फैला कि राज्य के प्रत्येक गाँव और नगर में लोगों के लिए सुखशान्ति से रहना दूभर हो गया। जब ऐसी घटनाएँ हो रही थीं उन्हीं दिनों चौलुक्य राजा के कुछ चाकर वहाँ जा पहुँचे। उनके कथन से और वीसल की सही-युक्त विशेष लेख प्राप्त होने पर उदयसिंह ने समझ लिया कि अब वीरम को किसी तरह मार डालने के सिवाय कोई उपाय नही है। वीर-कुंजर के समान वीरम उसका जमाई था परन्तु पहले उसके मन में विश्वास पैदा करके बाद में उदयसिंह ने उसको मरवा डाला। इस प्रकार वीसलदेव का राज्य निष्कण्टक हो गया और इससे राजा, प्रजा, अमात्य, माण्डलिक आदि सभी प्रसन्न हुए।

वीसल सूर्य के समान देदीप्यमान था; अनेक राजाओं के विजेता मन्त्रिराज के प्रताप के आगे पतंगे-से प्रतीत होने वाले अनेक भूपाल हाथी-घोड़े और रत्न आदि भेंट लेकर उस प्रजापालक को नमन करने के लिए उपस्थित होते थे।

शुक्र और बृहस्पति के समान दोनों मन्त्रीश्वर जिसके समीप रहते थे ऐसे सूर्य के समान वीसलदेव का दिन-प्रतिदिन अधिक प्रताप बढ़ने लगा।

वीसलदेव और डाहलेश्वर का संग्राम

श्री कर्ण राजा[37] का वंशज नरसिंह नामक डाहल का भूपति शत्रु रूपी हाथियों मे सिंह के समान था। वह अत्यन्त गर्विष्ठ होकर चौलुक्यवश मे सूर्य के समान प्रतापी नवीन राजा की आज्ञा को अपने मुकुट पर धारण नही करता था और अपनी चरण-सेवा करने वाले अन्य राजाओं को भी वह दुर्मति दुःख देता था। ऐसी दशा देखकर हितचिन्तक वस्तुपाल मंत्री ने साम (नीति) का अनुसरण करते हुए उसके नाम एक लेख लिखकर दूत के द्वारा उसके पास भेजा—

---

37. चेदि अथवा डाहल देश की राजधानी तेवर अथवा त्रिपुर थी। यह देश नौ लाख का गिना जाता था। **इण्डियन एण्टीक्वेरी**, भा. 18 के पृ. 211–213 पर एक लेख से ज्ञात होता है कि चेदि सं. 807 (1152 ई.) मे उस देश का कर्ण नामक राजा था। **एपिग्राफिआ इन्डिका**, भा. 2 के पृ. 7–17 में चेदि संवत 902 तथा 909 का एक लेख छपा है। इसी राजा की प्रसिद्धि गयकर्ण नाम से थी और उसके पुत्र का नाम नरसिंहदेव था। वीसलदेव का समकालीन कोई दूसरा नरसिंहदेव होगा, ऐसा ज्ञात होता है। नीचे जो वंशावली दी जा रही है उससे विषय और भी स्पष्ट हो जायगा।→

"धर्म और नीति के आधार ! हे राजन् ! यदि आप अपने श्रेय की अभिलाषा रखते हैं तो गुर्जराधिपति के इस शासन को शिरोधार्य करें; इसलिए हे देव ! आप कोई उत्तम भेंट भेजें और भूभुज (राजा) के प्रति किसी प्रकार दुर्मति न रखें।

सोमवंशी यदु का पुत्र क्रोष्टा था; उसके कुल में रोमपाद उत्पन्न हुआ; उसके वंश में वशिक नामक राजा का पुत्र चेदि हुआ। उस समय उसके अधिकार में जो देश था वह चेदि देश कहलाया और उसकी राजधानी शक्तिमती नगरी हुई। कुछ समय बाद इस देश के दो विभाग हो गए—पूर्व चेदि और पश्चिम चेदि।

पश्चिम चेदि अथवा डाहल राज्य की राजधानी त्रिपुर अथवा तेवर है जो जबलपुर के पश्चिम में कुछ मीलों की दूरी पर नर्मदा तट पर स्थित है। वहाँ के राजा कलचुरी अथवा हैहय कहलाते थे।

कनिंघम के लेख के अनुसार पश्चिम चेदि (डाहल) के कलचुरी राजाओं की विगत इस प्रकार है—

क्रम	चेदि संवत्	ई. सन	विवरण
		249	चेदि संवत् का प्रारम्भ
1.	271	520	शंकरगण
2.	301	550	बुद्ध; सं. 1 का पुत्र; इसको मंगलीश चालुक्य ने हराया।
3.	431	680	हैहयस; इसको विनयादित्य चालुक्य ने हराया।
4.	481	730	हैहया कुमारी; विक्रमादित्य चालुक्य को ब्याही गई।
5.	626	875	कोक्कल प्रथम; कन्नौज के भोजदेव का समकालीन।
6.	651	900	मुग्धतुंग
7.	676	925	युवराज देव
8.	691	940	लक्ष्मण; बिल्हरी में लक्ष्मणसागर बँधाया।
9.	716	965	युवराजदेव द्वितीय; वाक्पति का समकालीन।
10.	731	980	कोकल्ल द्वितीय; खजुराहो में इसका लेख है।
11.	756	1005	गांगेय देव; महमूद का समकालीन, 1030 ई.
12.	786	1035	कर्णदेव; चेदि सं. 793 = 1042 ई.
13.	821	1070	यशःकर्णदेव
14.	856	1105	गयकर्णदेव; चेदि सं. 902 = 1151 ई.

यदि आप इस प्रकार का वर्ताव नहीं करेंगे तो आपकी सम्पत्ति का नाश हो जायगा क्योंकि बलवान से शत्रुता करने से अनर्थ ही होता है।"

इस लेख को पढ़कर समृद्धिमान डाहलेश्वर को बहुत क्रोध आया और वह, युद्ध के लिए, राजनौबत के घोष से दिग्गजों को भयभीत करता हुआ, अनेक प्रकार की सेनाओं से मर्यादापर्वतों को कंपाता हुआ, स्वयं ही जल्दी से गुजरात देश पर चढ़ाई करने चला आया। यमराज के समान उसको अपने देश के समीप आया हुआ जानकर वीसलदेव घबराया और उसने अपने मंत्री से पूछा, "राहु के समान क्रूर यह शत्रु, संग्रामसिंह (शंख) के पुत्र आदि राजाओं से भी अधिक उद्दण्ड है जो यहाँ आ पहुँचा है; हे महामात्य ! अब हमको क्या करना चाहिए ?" राजा की यह बात सुनकर वीरकेसरी मन्त्रीश्वर वस्तुपाल ने मुस्कराते हुए कहा, "राजन् ! डरो नहीं, यह क्षुद्र शत्रु क्या चीज है ? आपका चौलुक्य-गुरु-प्रताप अब भी सर्वोत्तम सिद्ध होगा।"

ऐसा कहकर महातेजस्वी वस्तुपाल मंत्री ने अपने भाई तेजपाल को डाहल के राजा का मुकाबला करने को भेजा। युद्ध-मन्त्री ने डाहलेश्वर (डाहलराज) के साथ युद्ध आरम्भ किया। उसके पहुँचते ही रणभूमि में मण्डलाकार व्यूह में एकत्रित शत्रुसेना भयभ्रान्त हो गई और शौर्य को उद्दीप्त करने वाले रणवादित्रों के घोष से धरती और आकाश के बीच की अन्तरिक्ष रूपी सभी कन्दराएँ गूंज उठीं। वीरकुंजर सुभट रणभूमि में एक दूसरे का नाम लेकर दकालते और आपस मे टूट पड़ते; स्वामिभक्त सिपाहियों ने प्राणों की बाजी लगा दी। इस प्रकार कितनी ही देर घमासान युद्ध चलता रहा। जिस प्रकार बादल छाए हुए दुर्दिन में सूर्य निस्तेज हो जाता है उसी प्रकार मंत्री के चलाए हुए बाणों के दुर्दिन में डाहलेश्वर निस्तेज हो गया;

15.	902	1151	नरसिंहदेव; चेदि सं. 807–909–926–928
16.	930	1179	जयसिंहदेव (नरसिंहदेव का भाई)
17.	932	1181	विजयसिंहदेव; चेदि सं. 932 = 1181 ई.

संख्या 12 पर आए हुए कर्णदेव के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है।
संख्या 14 पर गयकर्ण का समय कुमारपाल के समय में आता है।

संख्या 15 पर निर्दिष्ट नरसिंहदेव का समय 1177 ई. अथवा संवत् 1233 आता है। इसका अन्तिम लेख चेदि सं. 928 का है, इसके बाद इसके भाई जयसिंह देव का चेदि सं. 930 = 1179 ई. = 1235 वि. सं. का लेख मिलता है। इस हिसाब से भीमदेव द्वितीय का समय आता है जिसका राज्यकाल 1234 वि. सं. से आरम्भ होता है। उस समय नरसिंहदेव हो सकता है।

उसके मन में निराशा छा गई और अन्त में भयभ्रान्त होकर उसने मन्त्रीराज तेजपाल के कथनानुसार एक लाख सोनैया भेंट कर दिए।

इस प्रकार जयश्री अपने हाथ में लेकर तेजपाल धोलका लौटा। उस समय पूरा नगर ध्वज-पताकाओं और बन्दनवारों आदि जयचिन्हों से सजाया गया। जब तेजपाल दरबार में गया तो वीसलदेव सम्मान के लिए उठकर उससे मिला और सन्मार्ग का पालन करने वाले उस मन्त्री को उसने अपने पिता के समान मान कर आदर दिया। सभा के मध्य उसके गुणों का बखान करके वीसलदेव ने उसकी लाई हुई एक लाख मोहरें बड़े स्नेहभाव से उसको तुष्टिदान में प्रदान कर दीं। उसने इन शब्दों में तेजपाल की प्रशंसा की—

"श्रीमान् मन्त्री तेजपाल ! तुम चिरकाल तक तेजस्वी रहो। चिन्तामणि के समान तुम्हारे द्वारा निश्चिन्त होकर सभी लोग आनन्द प्राप्त करें।"

वस्तुपाल की निवृत्ति

यह सब बनाव बन जाने के बाद वस्तुपाल अपने पुत्र जैतसिंह (जयन्तसिंह) और तेजपाल को स्वाधीन राज्य का अधिकार सौंपकर स्वयं शत्रुंजय और गिरनार आदि तीर्थ-स्थानों की यात्रा के लिए निकल पड़ा और तुष्टिदान आदि में जो धन उसे प्राप्त हुआ था वह सब उसने उन स्थानों पर खर्च कर दिया। इस विषय में उसका अनुमोदन करते हुए देवेन्द्र सूरि ने उपदेश दिया कि किसी की प्राणरक्षा का उपाय करने में, जगत का उपकार करने में, श्री जिन की भक्ति करने में, धार्मिकों का सत्कार करने में, सज्जनों की मनस्तुष्टि करने में, सत्पात्र को दान देने में, जीर्णोद्धार कराने में, यतियों में वितरण करने में और धर्मशासन करके दानपात्र प्रदान करने आदि सत्कर्मों में ही बहुधा भाग्योदय से पुण्यशाली पुरुषों को प्राप्त हुई लक्ष्मी का साफल्य होता है।

विसनगर की स्थापना

भीम द्वितीय की मृत्यु संवत् 1298 में हुई। संवत् 1295 से उस समय तक वीसलदेव धोलका में ही रह कर उसके राणा के रूप में काम चलाता था। वस्तुपाल और तेजपाल भी उसके पास ही रहते थे। इस विषय में हर्षगणि कहते हैं—"गुरु और शुक्र ग्रहों के योग से सूर्य का तेज दिनों दिन अधिकाधिक प्रकाशमान होता है उसी प्रकार कवि-सद्गुरु वस्तुपाल और तेजपाल के पास रहने से वीसलदेव का राज्यतेज प्रतिदिवस बढ़ने लगा। मन्त्रियों के द्वारा वीसलदेव नृपति ने इस पृथ्वी पर अपने नाम से एक नया नगर बसाया। वह नगर अनेक धर्मस्थानों के कारण मनोहर बना हुआ था। जो आसपास में बारह ग्रामों से सुशोभित था ऐसे उस नगर को पुण्यवान् वीसल ने वेदधर्म के प्राकार रूप (रक्षक) ब्राह्मणों को रहने के लिए दे दिया। वहां उसने सत्य, शौच और दयावान् तथा विशिष्ट आचार में तत्पर रहने वाले, वेदपाठ से पवित्र हुए ब्राह्मणों को बसाया और उनको वस्त्र, आच्छादन और

भोजन आदि के लिए राज्यशासन प्रदान किया। यह व्यवस्था हो जाने पर वे लोग निश्चित रहते थे और घर का खर्च चलाने के लिए भाँजघड़ (झंझट) करने की उनको आवश्यकता नहीं थी। इस नगर में उसने ब्रह्मा का प्रासाद बनवाया जिसमें ऐसी सुन्दरता लाई गई कि मानों पूरे जगत के शिल्प की कारीगरी ही वहाँ लाकर एकत्रित की गई हो। उसमें हाथी-घोड़ों और पुरुषों आदि की अनेक आकृतियाँ कोरी गई है। यह धर्मस्थान वीसलदेव ने पुण्यार्थ बनवाया था।

वस्तुपाल तेजपाल से राज्याधिकार का अपहरण

वीरधवल के राज्य का जो कुछ विस्तार हुआ था वह मन्त्रियों के प्रभाव ही हुआ था और वीसलदेव के समय में जो कुछ वृद्धि हुई वह भी वस्तुपाल के प्रताप से ही हुई थी; फिर भी, पिछले दिनों में वीसल उनको लघुता से देखने लगा, यह खेद की बात है। उस राजा का सिंह नामक मामा दरबार में रहता था। वह बहुत समर्थ माना जाता था और स्वयं पार्थिव (ठाकुर) था इसलिए अग्रणी बना हुआ था। उसी पिशुन मामा की प्रेरणा से राजा ने तेजपाल के करकमल में से राज्यमुद्रारत्न लेकर विष के समान लोकों के प्राणलेवा नागरजातीय नागड़ नामक ब्राह्मण के हाथ में दे दी। नागड़ के हाथ में राज्यमुद्रा का आ जाना ऐसा ही हुआ मानो बबूल के पेड़ पर कल्पलता चढ़ गई हो।

हर्षगणि ने तो इस विषय में केवल इतना ही कहा है, परन्तु राजशेखर ने एक और वृत्तान्त भी लिखा है; वह इस प्रकार है—

वीरधवल ने जो राज्य प्राप्त किया था वह वीसलदेव के समय में कुछ न्यून ही हुआ, बढ़ा नहीं। फिर भी, जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया वीसलदेव वस्तुपाल पर मौके-बेमौके कड़ी नज़र रखने लगा।

गीति

संपत्ति ने अग्रे, ज्यम ज्यम वधतो पुरुष जाई च्हडशे;
ते जे नहि विवेकी, तो ते गुरु ने लघु करीने गणशे।

भावार्थ—जैसे-जैसे पुरुष सम्पत्ति में आगे बढ़ता है वैसे-वैसे ही वह, यदि विवेकशील नहीं है तो, गुरु को लघु मानने लगता है।

वस्तुपाल गुरु था परन्तु वीसलदेव ने उसको लघु करके बरताव किया। महामात्य होने के कारण वह श्रीकरण[38] का अधिकारी था परन्तु उसने उसको मात्र लघु श्रीकरण का अधिकार दिया। जब राजा की नजरों में अधिकारी की गणना हल्की हो जाती है तो लोगों की दृष्टि में भी उसके सम्मान में कमी आ जाती है। अधिकार के प्रताप से जिसके सामने देखने की भी बड़े-बड़े लोगों की हिम्मत नहीं होती, उसमें कमी आने पर ऐरे-गैरे लोग भी सामने भिड़ने को तैयार हो जाते हैं।

---

38. शासन-पत्रों पर 'श्री' लिखने का अधिकार।

राजा का समराक नामक एक प्रतिहारी था; उसने किसी समय अन्याय और अपराध किया था; वस्तुपाल ने उसके लिए दण्ड दिया था। उसी काविश को मन में रखकर अब वह राजा के कान भरने लगा कि इन मन्त्रियों के पास बहुत अधिक धन इकट्ठा हो गया है, उसका आहरण करके यदि राजभण्डार में जमा कर लिया जाय तो वहुत से काम पूरे हो जावें। राजा ने यह बात पकड़ ली और मंत्रियों को बुला कर कहा 'तुम्हारे पास जितना धन है वह सब मेरे खजाने में लाकर रखो।' मंत्रियों ने कहा, 'हमारे पास जो कुछ धन था वह सब हमने शत्रुंजय आदि तीर्थ स्थानों पर खर्च कर दिया।' राजा ने कहा 'यदि ऐसा है तो परीक्षा देकर अपने को दिव्य प्रमाणित करो।' वस्तुपाल ने कहा 'आप जैसे कहें वैसे ही दिव्य होने को तैयार हैं।' राजा ने एक बड़ा भारी सर्प पकड़वा कर मंगाया और उसे घड़े में रखकर मन्त्री को उसे हाथ से पकड़ कर निकालने को तथा दिव्य होने को कहा। ऐसा अनुचित और अघटित कार्य न करवाने के लिए लवणप्रसाद ने भी वीसल को बहुत मना किया, परन्तु उस मदोन्मत्त ने अपने वृद्ध पितामह के वचन पर भी कोई ध्यान नहीं दिया।

अन्त में, सोमेश्वर ने कहा, "जब तुम्हारे पिता वीरधवल ने इन मन्त्रियों को रखने का विचार किया था तब तेजपाल ने राजा से सकुटुम्ब अपने निवासस्थान पर भोजन करने के लिए प्रार्थना की थी और निवेदन किया था कि इसके अनन्तर ही वे उस उच्च मन्त्रीपद को स्वीकार करेंगे। वीरधवल ने यह विनती मंजूर कर ली थी। राजा और रानी जयतल देवी ने उन (मंत्रियों) के घर पधार कर उनको पवित्र किया था। अनुपमा देवी ने नाना प्रकार की रसोई जिमाने के बाद अपने कान की एक कर्पूरमय ताटंक की जोड़ी और विविध प्रकार के रत्नों से तथा मणि-माणिक्य से जड़ा हुआ एकावली हार रानी को अर्पण किया था। स्वयं तेजपाल ने भी विविध प्रकार की सुन्दर सौगातों से भरकर एक थाल राणा को भेंट किया था। उस समय राणा ने नाममात्र के लिए वह भेंट स्वीकार करके यह लेख लिख दिया था कि 'तुम्हारे पास इस समय जो वित्त है, वह यदि तुम्हारे ऊपर कभी राणा कुपित होंगे तो भी, यथावत् प्रीतिपूर्वक रहने दिया जावेगा।' यह लेख और महामात्य पद की राज्यमुद्रा उसके हाथ मे देकर तथा पंच-प्रसाद (पोशाक) प्रदान कर श्री राणा वापस महलों में लौटे थे।" सोमेश्वर की यह बात सुन कर वीसलदेव नरम पड़ गया और उसने वह भयंकर दिव्य विधि कराने की बात छोड़ दी।

कुछ लोगों का कहना है कि मंत्री नियुक्त करने से पहले उनके पास तीन लाख की पूंजी थी। उसके लिए सौगन्ध खिलाकर उतनी ही रकम उनके पास रहने देने का लेख उनको लिख दिया था।

इस घटना के बाद भी मंत्री धोलका में ही रहते रहे। एक दिन पोषधशाला में झाड़ू निकाल कर एक साधु ने कूड़ा फेंका; उसी समय राणा का मामा सिंह

अपनी सवारी मे उधर से निकल रहा था; संयोग से वह कूड़ा उस पर जा पड़ा। सिंह बहुत क्रोधित हुआ; अपने वाहन से उतर कर वह पोषधशाला मे चढ गया और साधु को धमका कर कहने लगा ! 'अरे जम्बुक ! तू सिंहकुल को नही पहचानता ? यह कहकर उसने साधु को खूब मारा और चला गया।

उस समय वस्तुपाल अपने घर पर भोजन करने बैठा था। उसने पहला ग्रास तोडा ही था कि वह साधु रोता-रोता आ कर फरियाद करने लगा। पूरी बात सुन कर वस्तुपाल उसी समय हाथ धोकर खड़ा हो गया। उसने साधु को धीरज देकर बैठाया और अपने सेवकों को एकत्रित करके कहा 'क्षत्रियो ! तुम लोगो मे ऐसा कौन शूरवीर है जो मेरे अन्तर्दाह को मिटा सके ?' तब भूणपाल (भुवनपाल) नामक एक राजपूत ने कहा, 'देव, आप जो आज्ञा दे, वही करने को तैयार हूं। मुझ पर आपका इतना उपकार है कि यदि अपना जीवन भी दे दूं तो ऋणमुक्त नही हो सकता।' मन्त्री ने कहा, 'राणा के मामा सिंह जेठवा ने आजकल बहुत सिर उठा रखा है। उसने इस साधु को बहुत पीटा है इसलिए उसका दाहिना हाथ काट कर मेरे सामने लाकर प्रस्तुत करो।'

मंत्री के ऐसे आग्रहपूर्ण वाक्य सुन कर वह राजपूत वहां से चल दिया और दोपहर के समय सिंह के डेरे पर पहुँचा। उसी समय वह दरबार से लौट कर घर आया था। राजपूत ने सिंह को कहा, 'वस्तुपाल मन्त्री ने कोई गुप्त बात कहने के लिए मुझे भेजा है इसलिए आप एकान्त मे आवे तो कहूं।' जब सिंह उसकी बात सुनने को एक तरफ आया तो उसने तुरन्त ही उसका दाहिना हाथ काट लिया और कहा, "मैं वस्तुपाल का भृत्य हूं; अब फिर, श्वेताम्बरों का पराभव करने आना।"

ऐसा कहकर वह राजपूत दौड़ता हुआ वस्तुपाल के पास जा पहुँचा। मंत्री ने उसकी बहुत प्रशंसा की और हाथ को अपनी हवेली की मुंडेर पर लटकवा दिया। फिर, अपने विश्वस्त मनुष्यों को एकत्रित करके उसने कहा, 'तैयार रहो, जिसको अपना जीव प्यारा हो उसका यहाँ काम नही है; जिसे डर लगता हो वह अभी अपने घर चला जाय। अब तो हम अपना जीव हथेली मे लेकर यहाँ बैठे है।' यह सुनकर उसके भृत्यों ने कहा 'यदि ऐसा ही है तो हम भी आपके साथ ही मर जावेंगे, यही उचित है।' ऐसा कह कर सब लोग तैयार हो गए, हवेली के दरवाजे बन्द कर दिए गए और फिर चौकी का पहरा चारो ओर बैठा दिया गया। मन्त्री भी कवच पहन, धनुष धारण कर तथा हाथ मे हथियार लेकर तैयार हो गया।

इधर सिंह भी सिंह के समान गर्जन करके ताडन करने को तैयार हुआ। उसके सभी जेठवा भाई व नौकर-चाकर इकट्ठे हो गए। उन सब के सामने सिंह ने प्रतिज्ञा की 'वस्तुपाल, उसके पुत्र और बन्धु-बान्धवो तथा पशुओ का यदि हनन न

करूं तो मेरा नाम सिंह नहीं।' जब सब लोग मिलकर चलने लगे तो एक वृद्ध ने कहा, ''इतना बड़ा साहसिक कर्म करने के पहले हमें राणा को भी सूचित कर देना चाहिए; इसके बाद ही जैसा उचित हो वैसा करना योग्य है।'' यह बात सब के गले उतर गई और वे लोग दरबार में गए। उन्होंने सारी हकीकत राणा के सामने बयान की। उसने कहा 'बिना अपराध किए वस्तुपाल किसी को पीड़ित करने वाला नहीं है; अवश्य ही, तुम लोगों ने कोई अनुचित कार्य किया होगा; तुम लोग अभी रुको; मैं अपनी तरफ से जाँच करके जो कुछ योग्य होगा वैसा करूंगा।'

जेठवों को विदा करने के बाद राणा ने सोमेश्वरदेव को पूछा, 'गुरु, अब हमें क्या करना चाहिए?' उसने कहा, 'मैं वस्तुपाल के पास जाता हूं फिर जैसा उचित होगा वैसा करेंगे।'[39]

वह वस्तुपाल की हवेली पर पहुंचा और अन्दर से परवानगी मिलने पर वहां जाकर वस्तुपाल से मिला। सोमेश्वर ने कहा, 'मन्त्री! छोटी-सी बात को आपने इतना क्यों बढ़ा दिया? सब जेठवा इकट्ठे हो गए हैं। राजा भी अपने मामा का पक्ष लेकर कुपित हो रहा है। आप इस सारी उपाधि को छोड़ दो तो मैं समाधान कराने का प्रयत्न करूं। वस्तुपाल ने कहा, ''मैं तो मरने को तैयार होकर बैठा हूं; मैं गुरु का पराभव देखकर चुप बैठने वाला नहीं हूं। संसार में जो कुछ करना था वह कर चुका हूं; अब तो इस झगड़े में प्राण देने की ही मेरी वृत्ति हो रही है।

गीति

जीवित तणुं साफल्य ज, एवो यश चोगरदम थी लूट्यो
यश-अंग जे रह्युं तो, पराल रूप आ शरीर भले छूटो।

'जीवन की यही सफलता है कि चारों तरफ से यश लूटे; यह यशःशरीर कायम रहे; पार्थिव शरीर भले ही छूट जाय।'

अब आप मेरी चिन्ता न करें; मैंने जो प्रतिज्ञा की है उसको पूरी करूंगा।'' यह बात सुनकर सोमेश्वर ने सोचा कि यह तो मरने को दृढ़-प्रतिज्ञ हो रहा है,

---

39. हर्षगणि ने इस प्रसंग में इस प्रकार लिखा है—

वीसलदेव राज्यव्यवहार में कुशल था परन्तु इस प्रसंग में वह बहुत नाराज हुआ और अपने मामा का पक्ष लेकर उसने सेना भेज कर मन्त्री की हवेली पर घेरा डलवा दिया। मन्त्री के सुभट भी उद्धत थे। उन्होंने डट कर सामना किया। यह देख कर नगर के सभी लोग भयभीत हो गए। अन्त में, राजा स्वयं युद्ध करने को तैयार हुआ और उसने अपनी, इन्द्र की सी समर्थ, सेना सुसज्जित की। यह खबर मिलने पर सूर्य के समान तेजस्वी वस्तुपाल भी अपने बन्धु-बान्धवों सहित विशेष तैयारी करने लगा। जब मामला इतना बढ़ गया तो सोमेश्वर मन्त्री के पास गया।

इस समय इनको समझाया नहीं जा सकता, इसलिए वह वहाँ से उठ कर चल दिया। राणा के पास आकर उसने कहा, "इस प्रसंग में मन्त्री तो मरने को तैयार बैठा है; उसने सब तैयारी कर रखी है; वह बड़ा शूरवीर है और अपने जीवित को तृण के समान समझता है, इसलिए या तो मारेगा या मरेगा। यह मन्त्री आगे चल कर किसी बड़े काम में अपना सहायक हो सकता है, पहले भी दरबार का पूरा उपकार कर चुका है, इसलिए इसको पितातुल्य मानकर शान्त कर देना ही उचित है। इस झगड़े में सिंह का ही कुसूर है उसने अविवेकपूर्ण काम किया है और एक धार्मिक-विरुद्धता को अपने सामने उभाड़ लिया है। यह सब बात लक्ष्य में लेकर यदि वस्तुपाल का कोई अपराध भी सामने आवे तो उसे इस समय क्षमा कर देना ही योग्य है, क्योंकि—

गीति

जुज जूना मृत्योना, जे नृप दे त्रण वांक सहन करे;
प्रभु ते क्यम वखणाय ज कृतज्ञ पण अवगुण अति हृदय घरे।

आप यदि ऐसे मन्त्री के लिए खोटा विचार करेंगे तो फिर आपके लिए हम लोगों के मन में कैसे विचार उत्पन्न होंगे, यह भी आपको सोच लेना चाहिए।" सोमेश्वर ने इस तरह बहुत कुछ समझा-बुझा कर राणा के मन को शान्त किया और सब तरह से उसको अपने कहने में कर लिया। तब राणा ने कहा, 'मन्त्री को धीरज दे कर और समझा-बुझा कर मेरे पास ले आओ।'

गुरु फिर वस्तुपाल के घर गए और उस समय वह जिस सज्जा में था उसी में उसके वीर साथियों सहित दरबार में ले आए। उसको देखते ही राणा के मन में वस्तुपाल के विशिष्ट गुण और जो कई प्रकार के उपकार उसने किए थे वे सब उभर आए। उसकी आँखों मे आँसू आ गए और पितातुल्य आदर देकर उसके गले लिपट गया; बाद में, उसको नियत स्थान पर बैठाकर शान्त किया। सिंह को भी उसी समय बुलाकर उसके द्वारा मन्त्री से क्षमा-याचना करवाई और उसके पैरों में नमन कराया। यह सब करके राणा ने यह अभिप्राय सिद्ध किया कि सत्यशील, तपोनिष्ठ और जगत् में प्रतिष्ठाप्राप्त सूर्य के समान सर्वज्ञ महापुरुषों के प्रति उनको दुःख पहुँचाने के लिए जो कोई धर्मविरुद्ध कार्य करता है उसकी गति सिंह की जैसी होगी।

इस प्रकार जय प्राप्त करके वस्तुपाल अपनी हवेली पर वापस आया। रास्ते में लोगों के टोले-के-टोले उसके पराक्रम और शौर्य का बखान करते हुए स्वागत कर रहे थे, जिनसे उसकी प्रतिष्ठा मे वृद्धि हुई। पोषधशाला पर जय-पताका फहराने लगी।[40]

---

40. इस प्रसंग के बाद ही समराक प्रतीहार के प्रपंच से वस्तुपाल को दिव्य परीक्षा देने का झंझट खड़ा हुआ था, जो वस्तुपाल-प्रबन्ध के आधार पर इसी क्रम में पहले ऊपर लिखा जा चुका है।

इसके बाद वस्तुपाल पंचासर आदि देवताओं का दर्शन करने पाटन गया। वहाँ से लौटने के बाद विक्रम संवत् 1298 में उसको साधारण-सा ज्वर रहने लगा। उसने तेजपाल, उसके पुत्र-पौत्रादि तथा अपने पुत्र जयन्तसिंह को बुलाकर कहा 'वत्सो ! मलधारी श्री नरचन्द्र सूरि ने संवत् 1287 के भाद्रपद वदि 10 के दिन दिवगमन किया था। उस समय उन्होंने मुझे कहा था कि भाद्रपद वदि 10, संवत् 1298 के दिन मुझे भी स्वर्गमन करना है। उनका वचन चलित नहीं हो सकता है. क्योंकि उनकी वाणी को वचनसिद्धि प्राप्त थी इसलिए अब हमको शत्रुंजय चलना चाहिए क्योंकि—

गुरुर्भिषग् युगाधीश-प्रणिधानं रसायनम्।
सर्वभूतदया पथ्यं सन्तु मे भवरुग्भिदे॥

'संसार रूपी रोग का नाश करने के लिए मैंने गुरु को वैद्य, युगाधीश (पार्श्वनाथ)-नमस्कार को रसायन और प्राणिमात्र पर दयाभाव को पथ्य माना है।'

यह अभिप्राय उसके कुटुम्बियों को भी अच्छा लगा इसलिए सभी शत्रुंजय जाने की सामग्री तैयार करने लगे। उसी प्रसंग मे सोमेश्वर कवि वस्तुपाल से मिलने आए; तब सेवकों ने अच्छे-अच्छे आसन उनके बैठने के लिए बिछाए परन्तु वे बैठे नहीं। कारण पूछने पर उन्होंने कहा—

अन्नदानैः पयःपानैः धर्मस्थानैर्धरातलम्।
यशसा वस्तुपालेन रुद्धमाकाशमण्डलम्॥

'अन्नदान के क्षेत्रों से, जल पीने के लिए जलाशयों से और जगह-जगह पर निर्मित कराए हुए धर्मस्थानों से सम्पूर्ण धरातल को, और अपने यश से आकाश-मण्डल को तो वस्तुपाल ने रोक रखा है, अब बैठने को स्थान कहाँ खाली है ?' ऐसा वाग्विनोद करके कवि ने विदा ली।

वीसलदेव से अन्तिम आज्ञा लेने जब वस्तुपाल गया तो राणा भी रो पड़ा।

इसके बाद वह नागड़ मन्त्री से मिलने गया। उसने वस्तुपाल को आसन देकर उसका सत्कार किया। वस्तुपाल ने कहा, 'जन्मान्तर की शुद्धि के लिए मैं विमल गिरि की ओर प्रस्थान कर रहा हूँ। तुम जैन मुनियों का अच्छी तरह संरक्षण करना; क्लेशी लोग उन्हें पीड़ा न पहुँचावें। वनराज से लेकर अब तक जैन मन्त्रियों ने ही राज्य-संस्थापन मे पूरा योग दिया है; यह बात द्वेषी लोगो को अच्छी नहीं लगती है, तुम इस बात का पूरा ध्यान रखना।

नागड़ मन्त्री ने कहा, 'मैं श्वेताम्बरों का भक्तिभावपूर्वक गौरव बढ़ाऊँगा, आप चिन्ता न करें, आपका कल्याण हो।'

यह सुनकर वस्तुपाल को सन्तोष हुआ और उसने प्रस्थान कर दिया। लींबड़ी के पास कोई चार मील के फासले पर अकेवालिया गांव में आते-आते उसकी बीमारी बढ़ती हुई मालूम पड़ी। यह देखकर उसके साथ जो जैन सूरि थे उन्होने

निर्यामण[41] करना शुरू कर दिया। वस्तुपाल ने भी समाधि और अनशन व्रत धारण किया। एक प्रहर बाद वह बोला—

न कृतं सुकृतं किंचित् सतां संस्मरणोचितम्।
मनोरथैकसाराणामेवमेवं गतं वयः ॥1॥

'जिनके मनोरथ सारपूर्ण होते हैं ऐसे सत्पुरुषों के स्मरण योग्य कोई भी सुकृत मैंने नहीं किया, यों ही ऊमर बीत गई।'

'नृपव्यापारपापेभ्यः सुकृतं स्वीकृतं न यैः।
तान्धूलिधावकेभ्योऽपि मन्येऽधमतरान्नरान् ॥2॥

'राजकाज के पातकमय व्यापारों की अपेक्षा जिन लोगों ने सुकृत को अंगीकार नहीं किया, मैं उन लोगों को धूलधोयों[42] से भी गया बीता मानता हूं।

यन्मयोपार्जितं पुण्यं जिनशासनसेवया।
जिनमेवैव तेनास्तु भवे भवे सदा मम ॥3॥

'जिन-शासन (जैन धर्म) की सेवा से यदि मैंने कोई पुण्य कमाया है तो उसके फलस्वरूप मुझे जन्म-जन्मान्तर में जिन-सेवा ही प्राप्त हो।'

या रागिष्वनुरागिण्यः स्त्रियस्ताः कामयेत कः।
तामहं कामये मुक्तिं या विरागिणि रागिणी ॥4॥

'उन स्त्रियों की कौन कामना करे जो रागी लोगों से अनुराग करती हैं; मैं तो उस मुक्ति की चाह करता हूं जो विरागी से राग करती है।'

शास्त्राभ्यासो जिनपदरतिः संगतिः सर्वदा यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचा भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदाप्तोऽपवर्गः ॥5॥

कवित्त

शास्त्र तणो अभ्यास ने, जिन पदनति नित्य,
दोषवाद विषे मौन, आर्य सहवास छे;
आत्मा केरा तत्व विषे, भावना भरेली रहे,
सदाचारीना गुणनी, कथा विषे वास छे।

---

41. अन्तिम समय मे जो पाठपूजादि किया जाता है वह जैनों में निर्यामणा अर्थात् निर्वाण समय में किया हुआ निर्वाणार्थ कर्म कहलाता है।
42. दूकानों के बाहर किसी सोने चाँदी आदि के कण की प्राप्ति की आशा में धूल छानने वाले। वस्तुपाल का अभिप्राय है कि धूलधोया को शायद कोई मूल्यवान् कण मिल जाय परन्तु राज्य-व्यापार चलाने वाले के पापकर्म में तो सत्कर्म या सुकृत का दर्शन नितान्त दुर्लभ है।

प्रियकर थाय अने हितकर जे छे पूरी,
एवी वाणी सौनी प्रति, प्रीति थी वदाय जो;
आवां रूडां वानां मने, भवे भव पूरे पूरां,
मोक्ष मलता सुधी, मलजे सदाय जो ॥

ऐसा सद्विचारशील, जिनशासनभूषण-रूप, महापुरुष वस्तुपाल गगनांगण में चन्द्रमा के समान अस्तंगत हुआ; वह अपने मुख से युगादि देव का जाप करता हुआ स्वर्ग सिधारा। जिनकी संसार-ग्रन्थि टूट चुकी है ऐसे भवातीत साधु भी उस समय फूट-फूट कर रोने लगे तो फिर सांसारिक सहोदरादि जनों ने विषम विलाप किया, इसमें कौन-सी नई बात है? तेजपाल और जयन्तसिंह मन्त्री के देह को शत्रुंजय ले गए और वहाँ पर एक उचित स्थान पर उन्होंने उसका अग्निसंस्कार किया। चिता में चन्दन, अगर, कपूर, कस्तूरी और मलयचन्दनादि सुगन्धित वस्तुएँ चढ़ाई गईं। इस प्रकार विधि सम्पन्न करके तेजपाल तथा जयन्तसिंह आदि सभी लोग धोलका लौट आए और वीसलदेव से मिले। वस्तुपाल के स्वर्गमन के समाचार सुन कर वह महान दुःखसमुद्र में निमग्न हो गया। उसके औदार्य, धैर्य, गाम्भीर्यादि गुणगण का बार-बार बखान करते-करते भी समय के साथ उसका शोक शान्त नहीं हुआ और राज्य के लिए जो कष्टसाध्य कार्य उसने समय-समय पर किए थे उनका प्रतिदिन स्मरण करके वह उदास रहने लगा।

जिस स्थान पर उसका अग्निदाह हुआ वहाँ पर प्रासाद का निर्माण कराया गया। उस त्रैलोक्यसुन्दर प्रासाद में जगत-प्रदीप श्रीऋषभदेव की मूर्ति पधराई गई। वस्तुपाल ने अंकेवालिया (अर्कपालिका) ग्राम में शरीर छोड़ा था इसलिए चौलुक्येश्वर श्री वीसलदेव ने वह ग्राम उक्त प्रासाद के खर्च के निमित्त देवदेय करके उसका शासन-पत्र कर दिया। प्रजापालक वीसलदेव ने तेजपाल को ससम्मान लघु-श्रीकरण अधिकारी के पद पर नियुक्त किया और दिवंगत मंत्री के गुणों और पराक्रमों से विजित हो कर उसके पुत्र जयन्तसिंह को पटलाद्रपुर (पेटलाद) का ऐश्वर्य प्रदान किया।

तेजपाल ने लघु-श्रीकरण का अधिकार दस वर्ष तक चलाया। इतने ही दिनों में उसने (राज्य को) सम्पत्ति का स्थान बना दिया। वह अर्थियों (जरूरतमन्दों) को नाना प्रकार का दान देता था। फिर, वह अपने कुटुम्बसहित शंखेश्वर पार्श्वनाथ का दर्शन करने गया और चन्द्रोन्मानपुर[43] में संवत 1308 में उसका देहावसान हो गया। जैत्रसिंह ने वीसलदेव की आज्ञा से तेजपाल के कल्याणार्थ उसके दाहस्थान पर मन्दराचल के समान जिनाधीश-मन्दिर, सरोवर, धर्मशाला और दो सत्रालय बनवाए।

---

43. यह ग्राम चंदुर गांव होगा जहां वनराज की छतरी है।

इस प्रकार वस्तुपाल और तेजपाल के कार्यकाल का अन्त होता है। उन्होंने 63 संग्रामों मे विजय प्राप्त की थी जिनमें से कुछ का वर्णन प्रसंगानुसार ऊपर किया गया है। अन्य विवरण ग्रन्थकर्ताओं ने दिए होते तो अधिक प्रकाश डाला जा सकता था। लिखा है कि उन्होंने 32 प्रस्तरनिर्मित नए कोट बनवाए थे परन्तु वे कहाँ-कहाँ और किन नगरों के थे, यह विगत नहीं मिलती है। वस्तुपाल को 'सरस्वतीकण्ठाभरण' आदि 24 विरुद प्राप्त थे, परन्तु इनमें से भी थोड़े बहुत ही जानने में आए है।

वस्तुपाल और तेजपाल विषयक विशेष वृत्तान्त

इस प्रकार इन दोनों भाइयों का राजकाज सम्बन्धी विवरण तो ऊपर दिया गया है, परन्तु इसके अतिरिक्त भी उनके कुटुम्ब आदि के विषय में जानने योग्य कुछ विशेष बातें है, जो यहाँ दी जाती है—

वंशावली[44]

- चण्डप (गुर्जरराज का मन्त्री था। की० कौ०)
  - चण्डप्रसाद (नृपमुद्रा-व्यापार-धारणकर्ता)
    - सूर
    - सोम (सिद्धराज का कोषाधिकारी)
      - अश्वराज (आशाराज) (कुमारदेवी-कुँअरबा)
        - लूणिग
        - मल्लदेव (लीलुका लीलुं, पानुं)
          - पूर्णसिंह
            - पेथड़
        - वस्तुपाल (ललितादेवी, सोख्यलता)
          - जैत्रसिंह (जयन्तसिंह)
        - तेजपाल (अनुपमा देवी)
          - कुलदेवी
          - लूणसिंह (लावण्यसिंह)
      - विजय
      - तिहुणपाल
      - केली (पुत्री)

44. 'प्राग्वाटवंश वर्णन' शीर्षक एक प्राचीन पत्र, तथा कीर्तिकौमुदी' के परिशिष्ट 'भ' में दिए हुए एवं भावनगर लेखमाला पृ. 174 में आबूपर्वत पर देलवाड़ा

वंशावली में अश्वराज के चार पुत्रों के नाम दिए गए हैं, इनके अतिरिक्त उसके सात पुत्रियां भी थीं, जिनके नाम ये थे—1. जगल्हू, 2. माऊ. 3. साऊ, 4. धणदेवी, 5. सोहगा, 6. वयजू-वयजूका और 7. पद्मदेवी या पद्मलदेवी।

एक समय भट्टारक श्री हरिचन्द्र सूरि पाटण में व्याख्यान कर रहे थे। सभी स्त्री पुरुष बड़ी संख्या में उनका व्याख्यान सुनने आते थे। लोगों के परस्पर मिलने-जुलने का यह अच्छा अवसर था। वहां अश्वराज प्रधान भी आया करता था और कुमारदेवी नाम की एक अति रूपवती विधवा भी व्याख्यान श्रवण करने आती थी। आशाराज का मन उस विधवा की ओर आकृष्ट हुआ। व्याख्यान समाप्त होने और सभा-विसर्जन होने के उपरान्त आशाराज ने भट्टारकजी को उस विधवा के विषय में पूछा। गुरु ने कहा, 'इष्टदेव के आदेश से इस बाई (स्त्री) के कोख से सूर्य और चन्द्रमा का अवतार होगा, ऐसा मुझे भान हो रहा है, क्योंकि ऐसे ही सामुद्रक चिन्ह इसमें प्रकट रूप से हमारे देखने में आए हैं। यह बात सुनकर आशाराज ने कुमारदेवी के साथ पुनर्लग्न किया। फिर, उसके पेट से वस्तुपाल और तेजपाल रूपी सूर्य और चन्द्रमा ने अवतार लिया।[45]

इनके धर्मकार्यों की थोड़ी विगत इस प्रकार है—

बाउला ग्राम में 37,000 धन खर्च कर नेमिनाथ प्रासाद बनवाया।

(बहुलादित्य का विशाल मण्डप)

संवत 1277 में तेजपाल ने विशाल संघ-यात्रा की उस समय उसके साथ

5,500 सुन्दर वाहन थे;
300 दिगम्बर साधु थे;
21,00 श्वेताम्बर साधु थे;
1,000 रक्षक घुड़सवार थे;
700 राती ऊंटनियां थीं;

संघ की रक्षा के लिए चार सामन्त थे। इस प्रकार वे सब पालीताना पहुँचे।

पादलिप्तपुर (पालीताना) में महावीर स्वामी के देवालय का निर्माण कराया गया जिसके पास ही ललित-सरोवर शोभित था; उसके अगल-बगल में आवास के लिए तम्बू खड़े किए गए थे। विधिवत् तीर्थपूजा सम्पन्न होने के बाद मूल प्रासाद में सुवर्ण कलश की स्थापना हुई। मोढेरावतार श्री वृषभदेव तथा पार्श्वनाथ, प्रौढ़ जिन-युगल की स्थापना वहां हुई।

में आदिनाथ देवालय की धर्मशाला की दीवार पर संवत् 1267 (1211 ई.) फाल्गुन वदि 10 सोमवार के शिलालेख के आधार पर यह वंशावली दी गई है।

45. प्रबन्ध-चिन्तामणि में वस्तुपाल-प्रबन्ध, सर्ग, 41.

महावीर नामक अपने बनवाये हुए देवालय के सामने अपनी आराधक मूर्ति स्थापित कराई।

देवकुलिका की मूल मण्डप-श्रेणी के दोनों बाजू चतुष्किका (चौकी) की दो पंक्तियों में स्थापना कराई।

शकुनिका-विहार में सत्यपुरावतार चैत्य के आगे रूपा (चांदी) का तोरण बंधाया।

संघ के उतरने के लिए बहुत-सी धर्मशालाएं बनवाईं।

सत्यक नाम के धार्मिक पुरुष की देवकुलिका, नन्दीश्वरावतार का प्रासाद और इन्द्रमण्डप, ये तीन स्थान शत्रुंजय पर बनवा कर अपनी तथा अपनी सात पीढ़ी के पूर्वजों की अश्वारूढ प्रतिमाए बनवाईं।

श्री लवणप्रसाद और वीरधवल की गजारुढ़ प्रतिमाओं का निर्माण कराया।

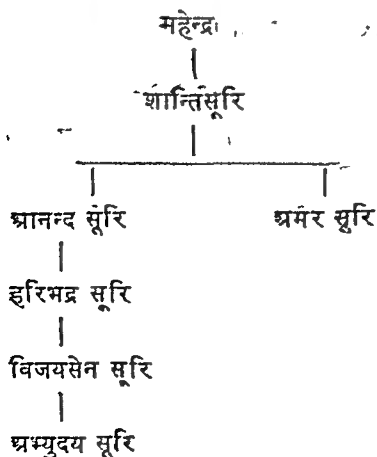
अपने सप्त गुरुओं[46] की मूर्तियां स्थापित करके उनके आगे अपनी आराधक मूर्तियां बनवाईं। इनके पास ही चौकी पर महमल्ल (मालव) और लूणिग, अपने बड़े भाइयों की भी आराधक प्रतिमाएं प्रतिष्ठित की।

'प्रतोली अर्थात् धोरी रास्ते बनवाए, अनुपमासरोवर बंधाया और तोरण सहित कपर्दि-यक्ष के मण्डप का निर्माण कराया।

समुद्र-तट पर नन्दीश्वर नामक कर्मस्थल पर सोलह स्तम्भों वाला प्रासाद बनवाया। इसकी नींव पोचाण (पोली या दलदली) भूमि में होने के कारण उनको

---

46. सोमेश्वर ने वस्तुपाल के गुरुकुल की विगत इस प्रकार दी है—
चम्प वंश के धर्मगुरु नागेन्द्र जाति के—



यह प्रासाद तीन बार बनवाना पड़ा; इसके लिए पावकगढ़ (पावागढ़) से कंटेलिया पत्थर मंगवाया गया था।

पालीताना से विशाल पौषधशाला का निर्माण कराया। जब संघ लेकर (तेजपाल) गिरनार गया तो वहाँ उपत्यका (तलहटी मे तेजलपुर का कोट बंधाया जिसमें आशराज-विहार और कुमारदेवी-सरोवर भी बनवाए। इनके साथ ही अपना धवलगृह और पौषधशाला भी बनवाई।

प्रभासपत्तन में अष्टापद-प्रासाद का निर्माण कराया। जब वह सोमनाथ भगवान् का पूजन कर रहा था तो वहाँ एक वृद्ध पुरुष उपस्थित था। उसने वह स्थल बताया जहाँ कुमारपाल को महादेव ने दर्शन दिए थे।

बड़ा भाई लूणिग जब बीमार पड़ा तो उसने यह इच्छा प्रकट की थी कि मेरे नाम पर एक देवमन्दिर आबू पर्वत पर बनाया जाय। उसकी मृत्यु के बाद वस्तुपाल आबू गया और उसने वहाँ पर चन्द्रावती के राजा से भूमि प्राप्त की और संवत् 1088 में निर्मित विमलशाह के मन्दिर के पास ही लूणिग-वसहिका नामक भव्य प्रासाद का निर्माण कराया; परन्तु, यह देवल 'तेजपाल का मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध है। इस मन्दिर का चित्र कर्नल टॉड ने अपनी 'ट्रैवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया'[47] नामक पुस्तक के आरम्भ में दिया है। यह रेखाचित्र श्रीमती (हण्टर) ब्लेअर ने वहाँ जाकर ऐसी कुशलता से तैयार किया था कि कर्नल टॉड ने अत्यन्त प्रसन्न होकर यह पुस्तक उन्हीं महिला को समर्पित करते हुए लिखा है 'आप तो आबू को इंगलैण्ड में ले आईं।'

इस देवालय का वर्णन ऊपर यथास्थान किया जा चुका है। ये सब धर्मकार्य सम्पन्न कराने का श्रेय तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी को है। अनुपमा अनुपमा (बेजोड़) ही थी। पहले-पहल जब ये दोनों भाई गिरनार आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा के लिए निकले तो हडाला नामक ग्राम में पहुँचने पर उन्होंने अपनी सिलक़ (पूँजी) सम्हाली तो उस समय वह तीन लाख के लगभग थी। सौराष्ट्र में भय है इसलिए उन्होने एक लाख एक पीपल के नीचे गाड़ कर रख देने का विचार किया। गड्ढा खोदते समय उनको एक शील्व कलश (चरू) मिला जो सोने की मोहरों से भरा हुआ था। उस समय अनुपमा उपस्थित थी। वस्तुपाल ने पूछा, 'अब इसको कहाँ धरें ?' अनुपमा ने अमात्य को उत्तर दिया,'मनुष्य अपने साथ कुछ भी नहीं लाता, ले जाता; धन तो यों ही आता है और जाता है इसलिए इसको और जो कुछ तुम्हारे पास है उसको मिला कर पर्वतों के शिखरो पर इस तरह रखो कि प्रत्येक मनुष्य उसको देख

---

47. इस पुस्तक का, इन पंक्तियों के लेखक द्वारा किया हुआ, हिन्दी अनुवाद राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के ग्रन्थांक 80 के रूप मे प्रकाशित हो चुका है। इस संस्करण में मूल पुस्तक के चित्रों की फोटो-प्रतियाँ भी दी गई है। (हि. अ.)

तो सके परन्तु ले न सके।' इसका भावार्थ यह था कि आबू, शत्रुंजय और गिरनार पर्वतों पर धर्मस्थानों का निर्माण कराओ। उसके इस कथन को योग्य जानकर उन्होंने ऐसा ही करने का निश्चय किया। उसी अवसर पर उन्होंने एक जैन साधु के मुख से यह द्व्यर्थक श्लोक सुना—

कोशं विकासय कुशेशय-संश्रितालो
प्रीतिं कुरुष्व यदयं दिवसस्तवास्ते।
दोषोदये निबिड़राजकरप्रतापे
ध्वान्तोदये तव समेष्यति कः समीपम्॥

यह श्लोक कमल और मनुष्य दोनों पर लगता है—

1. हे कमल! जब तक दिन है तब तक तुम्हारे आसपास मँडराते हुए भौंरों से खिलकर प्रीति कर लो; बाद में, जब रात्रि (दोषा) आ जायगी और चन्द्रमा का घना कर-प्रसार (किरणों का पसारा) होगा तो तुम्हारे पास कौन आवेगा?

2. हे भले मनुष्य! जब तक तुम्हारा दिन (सद्भाग्य; अच्छा समय) है तब तक अपने आश्रितों के लिए भण्डार (कोश) खुला कर दो; जब तुम्हारा दोष प्रकट होगा और राजा के लगाए हुए भारी कर का ताप फैलेगा तो कौन तुम्हारे पास आवेगा?

ऐसा खरा बोध उनके हृदय में उतर गया और उन्होंने धर्मकार्य सम्पन्न करने का निश्चय किया।

आबू पर्वत पर जब मन्दिर निर्माण का कार्य हो रहा था तो शीत के कारण कारीगरों को जल्दी-जल्दी काम करने में कठिनाई अनुभव होती थी इसलिए अनुपमा ने सब कारीगरों के पास आग की सिगड़ियाँ रखवाने और उनको तैयार भोजन मिलने की व्यवस्था कराई।

ऐसी धर्म-परायणा अनुपमा की मृत्यु होने पर तेजपाल का शोकाकुल होना स्वाभाविक था। जब वह शोकग्रस्त था तो विजयसेन जैनाचार्य उसका शोक निवारण करने उसके पास गए। उस समय तेजपाल कुछ लज्जित हुआ। तब आचार्य ने कहा 'मैं तुम्हारा कपट देखने आया हूं; वह यह है कि जब तुम छोटे थे तो चन्द्रावती के सुप्रसिद्ध गांगा सेठ और त्रिभुवनदेवी से उत्पन्न हुई अनुपमा देवी की तुम्हारे साथ सगाई का प्रस्ताव लेकर उसका भाई धारिणग आया था; तब तुमको यह बात पसन्द नहीं आई थी क्योंकि किसी ने तुमसे यह बात कह दी थी कि कन्या फूटरी (सुन्दर) नहीं है और तुमने इस सगाई को टालने के लिए चन्द्रप्रभ जिन के मन्दिर में क्षेत्रपाल को आठ द्रम्म का प्रसाद चढ़ाने की मनौती मानी थी। उसी स्त्री के लिए आज इतना शोक कर रहे हो, यह कपट नहीं है तो क्या है?" अपने गुरु के बोधवचन सुनकर तेजपाल ने अपने मन को समझाने का प्रयत्न शुरू किया।

वस्तुपाल और तेजपाल द्वारा भिन्न-भिन्न धर्मकार्यों पर खर्च किए हुए धन की विगत इस प्रकार है—

1,313	नवीन जैनधाम बनवाए
3,300	जैनेन्द्र जीर्ण सदनों का जीर्णोद्धार कराया।
1,25,000	जिन बिम्बों की स्थापना की।
1,00,000	गिरीश (शिव लिंगों) की स्थापना कराई।
1,200	मिथ्या दृष्टिवालों के देवगृह बनवाए।
750	विशाल ब्रह्मशालाएँ बनवाईं।
701	तपस्वि-कापालिक-मठ (तपस्वियों के रहने के मठ) कराये।
700	सत्रागार (अन्नक्षेत्र) स्थापित किए।
984	यतियों की नवीन पुण्यशालाएं बंधवाई।
	लुणिग-वसहिका में पौषधशाला बनवाई।
84	सरोवर बंधवाए।
464	पुष्करिणी[47] (कमल खिलने वाले कुण्ड) बनवाईं।
3,000	महेश्वरायतन (शिव-देवालय) बनवाए।
100	पत्थर के पर्व (प्रणालिकाएं) बंधाये।
300	ईंट के पर्व (जल के घोरे) बंधाये।
24	दन्तमय जैन रथ बनवाए, जो स्वर्ण कलशों और कमलों से शोभित थे।
1,000	तपस्वियों के लिए वर्षासन स्वीकार कराए।
64	विमल वापिकाएं निर्मित कराईं।
700	ऊंचे पौषध मन्दिर बनवाए।
700	शैव मठ बँधवाए।
500	विद्यास्थान बँधाए, जहाँ 3500 जैन मुनियों को नित्य भोजन मिलता था।

इनके अतिरिक्त स्नान पूजा में काम आने वाले सिंहासनों और कुम्भों की तो कोई गिनती ही नहीं है।

राजशेखर सूरि ने लिखा है कि—

18,96,00,000 द्रव्य शत्रुंजय पर खर्च किया,

---

47. चार हाथ लम्बी और चार हाथ चौड़ी भूमि धनुष्य कहलाती है। 100 धनुष्य अर्थात् समचौरस 400×400 हाथ क्षेत्रफल वाली पुष्करिणी होती है।

12,80,00,000	गिरनार पर व्यय किया,
12,53,00,300	आबू शिखर पर लगाया,
18,00,00,000	खर्च करके तीन स्थानों पर 'सरस्वती-भण्डार' स्थापित किए,
3,00,000	खर्च करके खम्भात के 'ज्ञान-भण्डार' की स्थापना की।

सब मिलाकर तीन अरब चौदह लाख अठारह हजार द्रव्य उन्होंने व्यय किया।

भीमदेव द्वितीय के समय में लवणप्रसाद 'राज्य चिन्ताकारी' का पद धारण करके अणहिलवाड़ा में रहता था। उस समय अपनी सत्ता का उपयोग करके अपने कुटुम्ब के लाभ के लिए उसने क्या-क्या किया, इस विषय में कुछ हकीकत यहाँ पर दी जा रही है।

एक वृत्तान्त[48] इस प्रकार है कि 'वीरम शैव था इसलिए जैन धर्म का विरोधी था और नागर जाति के अधिकारियों की ओर उसका झुकाव अधिक था। इसीलिए वस्तुपाल उसके पीछे पड़ गया था। वीरधवल अपने मन में निर्णय नहीं कर पाया था कि उसके बाद दोनों पुत्रों में से राणा का पद लेने योग्य कौन है? वीसल के हित-चिन्तकों ने एक मंजिल में रास्ता तय करने वाली साँढणी (ऊटनी) पर बैठा कर रातों रात उसे धोलका से पाटण बुला लिया और प्रात.काल होते ही उसका राज्याभिषेक कर दिया और औषधि के प्याले में कुछ मिलाकर वृद्ध राणा को पिला दिया। अब, उनके कार्य में बाधा देने वाला कोई नहीं रहा।'

इस वृत्तान्त में सच्चाई नहीं है क्योंकि वीरधवल तो धोलका में बीमार पड़ा था और वीसलदेव को धोलका की गद्दी पर ही बैठना था।

संवत् 1295, मार्गशीर्ष शुदि 14, गुरुवार का भीमदेव द्वितीय का लेख मिलता है। धूसड़ी गाँव में राणा लूणपसा (लवणप्रसाद) के कुँअर राणा वीरम के बनवाए हुए वीरमेश्वर महादेव के लिए तथा भीमदेव की महारानी श्री सूमलदेवी के नाम से सूमलेश्वर देव ने नैवेद्य, अंगभोग और पंचोपचार पूजा के निमित्त महाधिपति राजकुल श्री वेदगर्भराशि को शासन-पत्र करके दिया।

इससे ज्ञात होता है कि संवत् 1295 तक वीरमदेव जीवित था। एक स्थान पर लिखा है कि भीमदेव की मृत्यु के समय, वीरधवल तो पहले ही देवलोक चला गया था और धोलका में वीसलदेव उसके स्थान पर गद्दी पर बैठा था; लवणप्रसाद इतना वृद्ध हो गया था कि वह राज्य-भार वहन करने मे असमर्थ था इसलिए वह अपना बोझा किसके सिर पर धरे, यह संकल्प-विकल्प कर रहा था। उसका झुकाव

48. देखिए इण्डियन एन्टीक्वेरी, भा. 11, पृ. 100.

वीरम की ओर था इसलिए सहस्रलिंग तालाव पर राजसी शामियाना खड़ा करा कर राज्याभिषेक करने को उसने वीरम को बुलवाया। परन्तु, उसने तो आते ही अपने वृद्ध पितामह का अपमान कर दिया इसलिए उसकी धारणा बदल गई।

उस अवसर पर नागड़ पाटण में था। उसको धोलका से वीसलदेव को लाने के लिए भेजा गया। रास्ते में वे दोनों मिल गए और उन्होंने एक-दूसरे के प्रति विश्वस्त रहने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद वीसल पाटण आया और वहाँ पर भीमदेव के क्रमानुयायी के रूप में गुजरात के महाराजाधिराज पद पर उसका अभिषेक हुआ। उसी समय नागड़ को महामात्य नियुक्त किया गया और धोलका से हटा कर राजधानी भी पाटण में स्थापित की गई। लवणप्रसाद का स्नेह वीरम पर अधिक था इसलिए यह आशंका थी कि कदाचित् उसका मन बदल जाय और वह वीरम को गद्दी पर बैठाने की धारणा करे। अतः वीरमगाँव और अन्य ग्रामादि देकर वीरम को उस समय शान्त करने व शल्य को तत्काल दूर करने का प्रयत्न किया गया परन्तु बाद में उसने अपनी मूर्खता से अपने ही हाथों अपना अन्त कर लिया।

ऊपर लिखे कथनों में परस्पर विरोध है। वीरधवल की मृत्यु होने पर संवत् 1295 में वीसल धोलका की गद्दी पर बैठा। उस समय वीरम को उसकी ससुराल वालों ने मार डाला या वह जीवित रहा, यह प्रश्न सामने आता है। वह जीवित रहा हो और वीरम गाँव के ग्रास का उपभोग करता हुआ चुपचाप बैठा रहा हो तो कोई बात नहीं है क्योंकि इसके बाद राज्य-प्रकरण में उसका नाम कहीं भी दिखाई नहीं देता है। परन्तु, उसके उद्धत स्वभाव को देखते हुए ऐसा विश्वास नहीं होता, इसलिए यही अधिक सम्भव है कि वीसल के गद्दी पर बैठने के साथ ही वह समाप्त हो गया था। ऊपर सवत् 1295 के शासन-पत्र में उसका नाम आता है और उसी वष मे वीसल धोलका का राणा बना है। इसके बाद संवत् 1298 में जब भीमदेव द्वितीय की मृत्यु हुई तब पाटण की गद्दी पर कौन बैठे, यह प्रश्न सामने आया था। लवणप्रसाद उस समय भी अणहिलवाड़ा राज्य का चिन्ताकारी राजहित-चिन्तक था और उसकी पूर्ण सत्ता चल रही थी।

पहले भीमदेव द्वितीय के वृत्तान्त (भा. 1, पृ 12)[49] मे जो जयन्तसिंह देव का उल्लेख आया है कि वह अणहिलपुर का अधिष्ठाता बन गया था वह एक शासन-पत्र के आधार पर है, जो संवत् 12:0, पौष शुद्धि 3 भौमवार[50] का है। सोलंकी वंश के राणक लवणप्रसाद (सोलु० राणक आनउ. लूणपसाक) ने अपने पिता आनाक (अर्णोराज) की स्मृति में आनलेश्वर का देवालय सलखणपुर गाँव में बनवाया था; यह गाँव उसने अपनी माता के नाम पर बसाया था और वहीं एक सलखणेश्वर का मन्दिर भी बनवाया था। इन दोनों देव-धामों के खर्च के लिए उसने वर्द्धिपथक

49. हिन्दी अनुवाद भा. I (उत्तरार्द्ध) पृ. 272–273

50. हिन्दी अनुवाद में भूल से सोमवार लिखा गया है; कृपया शुद्ध करलें।

(वढियार) में आया हुआ साँपवाड़ा ग्राम दिया था और इसके अतिरिक्त अंगभूत[51] या अंगभूतपथक में आए शेषदेवती ग्राम का भूमिखण्ड भी प्रदान किया था। इससे ज्ञात होता है कि उस समय लवणप्रसाद के हाथ में सत्ता थी और जब भीमदेव पुनः अपने स्थान पर प्रतिष्ठित हुआ तब भी वह उसका राज्यचिन्ताधारी बना रहा और अपने कार्यकाल में अपने कौटुम्बिक कार्यों के लिए निम्न शासन-पत्र उसने कराए—

1. संवत् 1287, आषाढ़ शुदि 8 शुक्रवार को वर्द्धिपथक में देवाऊ ग्राम स्वसीमा सहित तथा इसके उपरान्त मांडवी में आयात होने वाले कितने ही पदार्थों पर दाण (कर) लगाया, उससे होने वाली आय; सलखणपुर में (सोलु राणा आनाऊ लूणपसा) सोलंकी राणा आनाक सुत लवणप्रसाद द्वारा बनवाए हुए श्री आनलेश्वर देव तथा श्री सलखणेश्वर देव के नित्य नैमित्तिकादि पूजार्थ तथा सत्रागार में ब्राह्मणों के भोजनार्थ अर्पण करके उसकी व्यवस्था करने (वहिवट करने) का काम मण्डल (माँडल) ग्राम में श्रीमूलेश्वर महादेव के मठ के स्थानपति वेदगर्भ राशि को, जिसको पहले ग्रास[52] दिया था, सौंपा गया।
2. संवत् 1288, भाद्रपद शुदि प्रतिपदा सोमवार का एक और शासन-पत्र है जिसके द्वारा सलखणपुर में आनलेश्वर तथा सलखणेश्वर महादेव के देवालयों के निमित्त और मठस्थानाधिपति वेदगर्भराशि के मठस्थित भट्टारकों के भोजनार्थ तथा सत्रागार खर्च के लिए एक गाँव दिया गया था। मठपति के ज्येष्ठ पुत्र सोमेश्वर को उसी ग्राम की भूमि हल 20 (बीस सांती धरती) दी गई थी। इस शासन-पत्र मे गाँव का नाम पढ़े जाने की स्थिति में नही रहा, परन्तु उसकी सीमा इस प्रकार लिखी है—

    पूर्व में, साँपरा गाँव तथा छत्राहड गाँव की सीमा,
    दक्षिण में, गुंठावाड़ा गाँव की सीमा,

---

51. इससे पहले संवत् 1263, श्रावण शुदि 2 रविवार का एक शासन है, जिसके द्वारा भीमदेव द्वितीय ने इसी अंगभूतपथक में, अपनी महारानी लीलादेवी (चहुआण राणा समरसिंह की पुत्री) द्वारा अपने नाम से बसाए हुए लीलापुर ग्राम में अपने व पति के नाम पर निर्मापित लीलेश्वर तथा भीमेश्वर महादेव के देवालयों में पर्व (उत्सव) तथा सत्रागार खर्च के लिए, ईदिला नामक गाँव का लेख करके दिया था।

52. संवत् 1283, कार्तिक शुदि 15 गुरुवार को चालीसा पथक में मंडल (मांडल) गाँव में मूलेश्वर महादेव की नित्य पूजा करने के अर्थ तथा मण्डल के मठ में आने वाले तपोधनों (साधु सन्यासियों) के भोजनार्थ खर्च चलाने के लिए स्थानपति वेदगर्भराशि (मंडलमठपति) को नताऊली ग्राम दिया गया था; उस प्रसंग में दूतक महासांधिविग्रहिक ठक्कुर श्री वसुदेव था।

पश्चिम में, राणावाडा गाँव की सीमा,

उत्तर में, ऊँदिरा ग्राम तथा आँगणवाड़ा की सीमा।

इस प्रकार, इन गाँवों की सीमा के बीच में आया हुआ ग्राम, जो वालीय पथक में है, दिया गया। इसमें दूतक सांधिविग्रहिक ठक्कुर श्री वहुदेव था।

3. ऊपर सूचित किया हुआ संवत् 1295, मार्ग-शुदि 14 गुरुवार का शासन इस प्रकार है—वूसड़ी ग्राम में सोलंकी राणा लूणपसा (लवणप्रसाद) के सुत राणक वीरम ने श्रीवीरमेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया, उसके लिए तथा भीमदेव की महारानी श्रीसूमलदेवी के नाम पर बनवाए हुए श्री सूमलेश्वर महादेव के देवालय में नित्य नैवेद्य, अगभोग पचोपचार पूजा के खर्च के लिए मठाधिपति राजकुल श्री वेदगर्भराशि को भोजुया गाँव के पास बसाया हुआ (सलखण)पुर ग्राम स्वसीमा सहित अर्पण किया गया तथा घूसड़ी ग्राम में गो(ह)णसर के समीप में दो हल की धरती (द्विलांगल भूमि) की वाड़ी प्रदान की गई। दूतक महासांधिविग्रहिक ठक्कुर श्री वयजलदेव है। यह स्थान वार्द्धिपथक में है और दोनों ताम्र-पत्रों मे से पहले के अन्तिम भाग में "महाराज्ञी श्री सूमलदेव्याश्च", इस प्रकार 'सही' की हुई है।

4. संवत 1296, मार्गशीर्ष वदि 14 रविवार का श्री भीमदेव के नाम का एक और शासन-पत्र है। यह वीरमेश्वर देव और सूमलेश्वर देव के देवालयों के चालू खर्च के लिए वार्द्धिपथक में आए हुए राजसियाणा (राज्यसियाणी) गाँव की लाट-बांट करने वाले उक्त मठाधिपति को दिया गया है; इसकी सीमा इस प्रकार है—

पूर्व में, ठेढवसण (ठेठवसण) तथा रीवड़ी गाँवों की सीमाएँ,

दक्षिण में, लघु ऊभड़ा गाँव की सीमा,

पश्चिम में, मंडली (मांडल) गाँव की सीमा,

उत्तर में, सहजवसण और दालऊद्र (दाल ऊद्र) गाँवों की सीमाएँ हैं।

इस प्रकार उक्त गाँव का लेख करके दिया गया है; इसमें पहले लेख की तरह अन्तिम अंश में 'महाराज्ञी श्री सूमलदेव्याश्च" ऐसी 'सही' मौजूद है।

दूतक महासान्धिविग्रहिक ठक्कर श्री वयजल देव है।

इस प्रकार लवणप्रसाद के कराए हुए चार शासन-पत्र ज्ञात हुए हैं।

त्रिभुवनपालदेव

संवत् 1298 से 1300 तक; 1242 ई. से 1244 ई. तक।

भीमदेव द्वितीय संवत् 1298 तक अणहिलवाड़ा की गद्दी पर रहा। उसका अन्तिम शासन-पत्र संवत् 1296 का है, इससे सिद्ध होता है कि वह उस समय तक 'महाराज' था। उसकी मृत्यु के बाद त्रिभुवनपाल उत्तराधिकारी के रूप में गद्दी पर

बैठा, यह बात मेरुतुंग आदि के लेखों से ज्ञात होती है। कुछ लोगों का कहना है कि वह भीमदेव का पुत्र था। इस नये महाराजा का एक शासन-पत्र[53] संवत् 1299,

---

53. यह शासनपत्र इण्डियन एण्टीक्वेरी भा. 6 के पृ. 208–209 पर प्रकाशित हुआ है, जिसका मूलपाठ नीचे उद्धृत किया जाता है; पृ. 208 पर –

(1) स्वस्ति राजावलीपूर्ववत्समस्तराजावलीसमलंकृतमहाराजाधिराज-परमेश्वर-परमभट्टारक-चौलुक्य कु–

(2) ल-कमलविकासनैकमार्तण्ड-श्रीमूलराजदेवपादानुध्यातमहाराजाधिराजपरमेश्वर-श्रीचामुण्डराज–

(3) देवपादानुध्यात-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीवल्लभराजदेवपादानुध्यात-महाराजाधिराज-पर–

(4) मेश्वर-श्रीदुर्लभराजदेवपादानुध्यात-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमद् भीमदेवपादानुध्यात-महा–

(5) राजाधिराज-परमेश्वर-त्रैलोक्यमल्ल-श्रीकर्णदेव-पादानुध्यात-महाराजाधिराजपरमेश्वर-परमभ–

(6) ट्टारक-अवन्तीनाथत्रिभुवनगण्ड–बर्बरकजिष्णुसिद्धचक्रवर्ति-श्रीजयसिंहदेवपादानुध्यात-महाराजा–

(7) धिराज-परमेश्वर-परमभट्टारक-स्वभुजविक्रम-रणांगणविनिर्जित-शाकम्भरी-भूपाल-श्रीकुमारपाल–

(8) देवपादानुध्यात-महाराजाधिराज-परमेश्वर-परमभट्टारक-महामहेश्वर-प्रबलबाहुदण्डदर्प्परूप-

(9) कन्दर्प्प–हेलाकरदीकृतसपादलक्षक्ष्मापाल-श्री अजयपालदेवपादानुध्यात-महाराजाधिराज-पर-

(10) मेश्वर-आहव-पराभूत-दुर्ज्जयगर्ज्जनकाधिराज-श्रीमूलराजदेव-पादानुध्यात-महाराजाधिराज-पर-

(11) मेश्वर-परमभट्टारक-अभिनवसिद्धराज-सप्तमचक्रवर्ति-श्रीमद्भीमदेव-पादानुध्यात-महाराजाधि-

(12) राज-परमेश्वर-परमभट्टारक-शौर्योदार्यगाम्भीर्यादिगुणालंकृत- श्री त्रिभुवनपालदेव-स्वभुज्यमा-

(13) न-विषयपथकदण्डाहीपथकयोरन्तर्व्वर्त्तिनः समस्त-राजपुरुषान् ब्राह्मणोत्तरांस्तन्नियुक्ताधिकारिणो-

(14) जनपदांश्च बोधयत्यस्तु वः संविदितं यथा ॥ श्री-मद्विक्रमादित्योत्पादित संवतसरशतेषु द्वादशसु नव-

चैत्र शुदि 6 सोमवार का मिलता है। फाल्गुन मास की अमावस्या के दिन सूर्य-ग्रहण हुआ था। उस दिन अणहिलवाड़ा में स्नान करके, चराचरगुरु भगवान् भवानीपति का अर्चन करके महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक, शौर्योदार्य-

---

(15) नवत्युत्तरेषु चैत्रमासीय शुक्लपष्ठ्यां सोमवारेऽत्राऽङ्कतोऽपि संवत् 1299 वर्षे चैत्र शुदि 6 सोमेऽ-

(16) स्यां संवत्सर-मास-पक्ष-वार-पूर्व्विकायां सां० लौ० फागुणमासीय-अमावस्यायां संजातसूर्यग्रहणपर्व्वणि-

(17) संकल्पितात् तिथावद्येह श्रीमदणहिल्लपाटके स्नात्वा चराचरगुरु भगवन्तं भवानीपतिमभ्यर्च्य संसा-

(18) रासारतां विचिन्त्य नलिनीदलगतजललवतरलतरं प्राणितव्यमाकलय्य ऐहिकामुष्मिकं फलमंगी-

(19) कृत्य पित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोऽभिवृद्धये भांपर-ग्रामराजपुरिग्रामौ स्व सीमा–(पर्यन्तौ सवृक्ष)-

(20) मालाकुल-काष्ठतृणोदकोपेतौ सहिरण्यभागभोगदण्डौ दशापराध (सर्वादायस)-

इं. ए. के पृ. 209 पर

(1) मेतौ नवनिधानसंहितौ पूर्व्वप्रदत्तदेवदाय-ब्रह्मदायवर्ज्यं राणा–श्री लूणपसामाउल-

(2) तलपदे स्वीयमातृ. राज्ञा श्रीसलखणदेवीश्रेयोऽर्थ-कारितसत्रागारे कार्प्पटिकान्तं भोजनार्थं शासनोदकपूर्व्वं-

(3) मस्माभिः प्रदत्तौ ॥ भांपरग्रामस्याघाटा यथा ॥ पूर्व्वस्यां कुरलीग्राम-दासयजग्रामयोः सीमायां सीमा। दक्षिणस्यां-

(4) कुरलीग्राम-त्रिभग्रामयोः सीमायां सीमा। पश्चिमायां अरठउरग्राम-ऊंझाग्रामयोः सीमायां सीमा। उत्तरस्यां-

(5) ऊंझाग्राम-दासयजग्राम-काम्वलीग्रामाणां सीमायां सीमा॥ राजपुरिग्रामस्याघाटा यथा ॥ पूर्व्वस्यां कूलाव (सण)

(6) ग्राम-डांगरौआ-ग्रामयोः सीमायां सीमा। आग्नेयकोणेचण्डावसणग्राम-इन्द्रावडग्रामयोः सीमायां सीमा।

(7) दक्षिणस्यां आहीराणाग्राम सीमायां सीमा। पश्चिमायां सिर-सान्निन्दा-वसणग्रामयोः सीमायां सीमा। वायव्य–

(8) कोणे ऊंट-ऊंचा-सिरसाविग्रामयोः सीमायां सीमा। उत्तरस्यां नन्दावण-ग्रामसीमायां सीमा। ईशान को–

(9) णे कुईयल–ग्रामसीमायां सीमा। एवममीभिराघाटैरुपलक्षितौ ग्रामावेतावगम्य तन्निवासिजन–

गाम्भीर्यादिगुणालंकृत त्रिभुवनपालदेव ने, इस संसार की असारता को जानकर, पिता तथा अपने पुण्य और यश की वृद्धि के लिए, भांपर और राजपुरी, ये दोनों गांव, राणा श्री लुणपसा (लवणप्रसाद) द्वारा, माऊल तलपद में अपनी माता राज्ञी श्री सलखण देवी के श्रेय निमित्त बनवाए, सत्रागार (अन्न-क्षेत्र) में कार्पटिकों (कापड़ियों) को भोजन कराने के व्यय हेतु, शासन में प्रदान किए है।

भांपर ग्राम की चतु सीमा इस प्रकार है—

पूर्व में कुरलीग्राम तथा दायसज ग्राम की सीमा में सीमा, दक्षिण में, कुरली तथा त्रिभ गांवों की सीमा में सीमा, पश्चिम में, अरड़डर तथा ऊंभा गाँवों की सीमा

---

(10) पदैर्यथादीयमानेदानीं भोगप्रभृतिकं सदाज्ञाश्रवण-विधेयैर्भू त्वाऽमुष्मै सत्रागाराय समु (प) नेतव्यं ।। सामा–

(11) न्यं चैतत्पुण्यफलं मत्वाऽस्मद्वंशजैरन्यैरपि भाविभोक्तृभिरस्मत्प्रदत्त धर्म्मदायो यमनुमन्तव्यः । पालनीय–

(12) श्च । उक्तं च भगवता व्यासेन ।। षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः । अच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरक व–

(13) सेत् ।। 1(।।) याता यान्ति महीभुजः क्षितिमिमां यास्यन्ति भुक्त्वा-खिलां, नो याता न च याति यास्यति न वा केनाऽ–

(14) पि सार्द्धं धरा। यत् किंचिद्भुवि तद्विनाशि सकलं कीर्तिः परं स्थायिनी, मत्वैवं वसुधाधिपाः परकृता लोप्या न–

(15) सत्कीर्तयः ।।(2।।) वहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः । यस्य यस्य यदा भूमी तस्य तस्य तदा फलम् ।।3।।

(16) लिखितमिदं शासनं कायस्थान्वय-प्रसूत-दण्ड.-सातिकुमारसुत-आक्ष-पटलिक ठ. सोमसिंहेन ।।6।।

(17) दूतकोऽत्र ठ. श्री वयजलदेव इति शासनमिदं मांडल्यां श्री मूलेश्वरदेवम-(भ्यचर्य)

(18) स्थानपति-श्री वेदगर्भराशेः समर्पितमिति ततोऽनेन तथै(व) तदीय सन्तानपरम्परयापि आचन्द्रार्कं अन-

(19) योर्ग्रामयोरायपदं सत्रागारेऽस्मिन् उपयुक्तं कार्यम् ।। कल्याणमस्तु साधूनां ।।छ।।छ।।छ। अनयोर्ग्रा–

(20) मयोःसीमायां ताम्बुलिक-वणिज्यारक-पथिक-प्रभृतीनां मध्यात् यः कोऽपि चौरैर्गृ ह्यते तस्य प्र–

(21) तिकार अनयोर्ग्रामयोः सत्कभोक्तार पश्चात् प्रतीतिर्लभ्या।। उद्ध–

(22) लागभागो न हि।।

—श्री त्रिभुवनपालदेवस्य

में सीमा, उत्तर में, ऊँझा, दायसज तथा काम्बली गाँवों की सीमा में सीमा। राजपुरी ग्राम की चतु:सीमा नीचे लिखे अनुसार है—

पूर्व में, कूलावसण तथा डांगरौआ गाँवों की सीमा में सीमा; आग्नेय कोण में, षण्डावसण तथा इन्द्रावण गाँवों की सीमा में सीमा; दक्षिण में, आहीराणा गाँव की सीमा में सीमा; पश्चिम में, सिरसावी और नन्दावसण गाँवों की सीमा में सीमा; वायव्य कोण में, ऊंटऊंचा तथा सिरसावी गाँवों की सीमा में सीमा; उत्तर में, नन्दावसण गाँव की सीमा में सीमा; ईशान कोण में, कुईयल ग्राम की सीमा मे सीमा,

इस शासन-पत्र का लेखक आक्षपाटलिक ठ. सोमसिंह सांतिकुमार नामक कायस्थ था।

दूतक ठक्कर श्री वयजलदेव था।

यह शासन मांडल-स्थित श्री मूलेश्वरदेव के पुजारी स्थानपति श्री वेदगर्भ-राशि को अर्पित किया गया; वह तथा उसकी सन्तान-परम्परा के लोग इन दोनों गाँवों का आयपद सत्रागार के काम में खर्च करते रहेंगे, ऐसा लेख किया गया है।

ऊपर लिखे हुए शासन-पत्र में भी लवणप्रसाद के धर्मकार्य की पुष्टि की गई है और यह इसी निमित्त लिखा गया है। इसमें उसकी माता सलखण-देवी को राज्ञी लिखा है; वह अर्णोराज की पत्नी होगी। संवत् 1296 में जो शासन-पत्र भीमदेव के समय में लिखा गया था और उसमें जिन अधिकारियों के नाम लिखे हैं उन्हीं के नाम इस शासन-पत्र में भी हैं। इन सब बातों से ज्ञात होता है कि उक्त शासन-पत्र के लेख के समय भी सम्पूर्ण राजमण्डल लवणप्रसाद के अधीन था।

त्रिभुवनपाल ने लवणप्रसाद की छाया में रह कर दो वर्ष तक राज्य किया; परन्तु इस अवधि में उसके किसी विशिष्ट कार्य की जानकारी अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। उसके राज्यकाल का अन्त संवत् 1300 में हुआ और इसके साथ ही मूलराज सोलंकी के अथवा चालुक्य कुल की भी समाप्ति हो गई। जब तक यह वंश कायम रहा तब तक लवणप्रसाद और वीरधवल ने अणहिलवाड़ा की गद्दी पर किसी को भी हाथ नहीं डालने दिया; इतना ही नहीं, वीसलदेव को भी, जो राज्य का लोभी जान पड़ता था, उन्होंने इस ओर कोई कदम नहीं उठाने दिया। उसको धोलका में ही रह कर धूमधाम मचाने की छूट मिली हुई थी और इस तरह वे उसके द्वारा समस्त गुजरात राज्य का रक्षण एवं वृद्धि कराते रहे थे। त्रिभुवनपाल के बाद इस वंश में कोई नहीं रहा, इसलिए इसी वंश की वाघेला नाम से विख्यात दूसरी शाखा का वीसल-देव, नागड़-प्रधान के साथ, अणहिलवाड़ा आता है और महाराजाधिराज-पद प्राप्त करता है।

बीसलदेव बाघेला
अणहिलवाड़ा का महाराजाधिराज

संवत् 1300 (1244 ई०) से संवत् 1317[54] (1261 ई०) तक

मिस्टर जेम्स फार्बस ने **ओरियण्टल मेम्वायर** (प्राच्य संस्मरण) नामक पुस्तक लिखी है; उसकी चतुष्पत्री आवृत्ति के भाग 2 के पृ. 335–337 पर अथवा सन् 1834 में उसी की अष्टपत्री आवृत्ति निकली है, उसके भा० 1 के पृ० 543–545 पर तथा उसी का उद्धरण जेम्स वर्जेस ने अपनी **कच्छ और काठियावाड़ की पुरावस्तुओं पर विवरणी** (A Report on the Antiquities of Kathiawar & Kutch) में पृ० 219 पर लिखा है कि "इस नगर (डभोई) में बहुत मूल्यवान् और शोभायमान उपद्वार (मोरियाँ, छोटे दरवाजे) और अन्य बांधकाम (बन्धांण) निर्मित कराए गए हैं; इसका कारण चारणों और भाटों ने, जो गुजरात के मात्र इतिहासज्ञ कहे जा सकते हैं, निम्न कथन के अनुसार बताया है। इसमें बहुत-सी कल्पित बातें भी मिल गई होंगी, परन्तु बहुत कुछ सचाई इसमें है। वह दन्तकथा इस प्रकार है—

"डभोई से बहुत दूर, गोदावरी नदी के किनारे पर पट्टन में, जिसको प्राचीन ग्रीकों ने पैंठण या पट्टण लिखा है, सिद्धराव जयसिंह (विजय का शेर) नामक हिन्दू राजा कई शताब्दी पूर्व राज्य करता था।

"पूर्व देशवासियों में प्रचलित रीति के अनुसार उस राजा के सात रानियाँ और कितनी ही पासवानें (उपपत्नियाँ) थीं। इन सबमें उसकी महिषी (पट्टरानी) उत्तम गुणों से युक्त और अतीव सुन्दरी थी। वह उसको बहुत मानता था और प्यार के नाम रत्नाली (रत्नावली) से पुकारता था। वह अन्तःपुर की अन्य स्त्रियों की अपेक्षा सब प्रकार की चतुराई में बढ़ीचढ़ी थी। दूसरी रानियों में से कुछ के कुँवर हुए थे, परन्तु इस रानी के कोई सन्तान नहीं हुई फिर भी, अपने गुणों के कारण वह राजा की नजरों में सुहागिनी (सौभाग्यवती) ही थी। पूर्वीय देशों के अन्तःपुरों में कैसे-कैसे कूट-कपट चलते हैं और कैसी-कैसी विचित्र प्रपंचमयी घटनाएं होती है, यह सर्वप्रसिद्ध है; पाटण में तो ऐसी बातों का ज़ोर और भी प्रबल था। वहां रनिवास की स्त्रियां रत्नावली से बहुत ईर्ष्या करती थीं और राजा का मन उस पर से उतार देने के लिए अनेक प्रपंच रचती रहती थीं। उन्हीं दिनों रत्नावली के गर्भवती होने के समाचार फैले तो दूसरी रानियों के मन में द्वेष की सीमा ही नहीं रही। हिन्दुओं की रीति के अनुसार वे जंतर-मंतर और डोरा-चिट्ठी आदि अनेक ऐसे उपाय करने लगीं कि जिससे सन्तान का प्रसव ही न हो। वह राजा की मनभावनी महिषी भी उसी दर्जे की अन्धविश्वास करने वाली थी, इसलिए उसके मन में यह बात जम कर

---

54. स्व० दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री ने अपने गुजरात नो मध्यकालीन इतिहास में 1318 संवत् लिखा है। (हि. अ.)

बैठ गई कि उस पर जन्तर-मन्तर का प्रयोग किया गया है और उन महलों में रहते हुए वह उनके प्रभाव से बच नहीं सकती।

"यह वहम पैदा होने पर वह अपने बहुत-से परिजनों को साथ लेकर नर्मदा-नदी के तट पर प्रसिद्ध देवालय में निवारण विधि सम्पन्न करने को रवाना हुई। लम्बे रास्ते चलती-चलती वह उस स्थान पर आकर पहुँची, जहां पर आजकल डभोई बसा है; वह स्थान नदी से 10 मील की दूरी पर था और पवित्र लता-वृक्षों से ढँका हुआ था। वहीं एक सरोवर भी था। रानी संध्या समय वहां पहुँची थी इसलिए रात भर विश्राम करके प्रातः पुनः कूच करने के अभिप्राय से डेरे-तम्बू लगाकर पड़ाव डाल दिया गया उसी। स्थान पर एक संसारत्यागी गोसाँई रहता था और योग-साधना आदि में ही अपना समय बिताता था। रानी के आगमन की बात सुनकर उसने मिलने की इच्छा प्रकट की। ऐसे पवित्र योगीश्वरों की इच्छा का प्रायः अनादर नहीं किया जाता। उसने रानी को कहा 'यह लतावृक्षों की घटाओं से प्राच्छादित स्थान बहुत पवित्र है; इसी स्थान पर तुम्हारे पुत्र का प्रसव होगा, इसलिए यहां से आगे मत जाओ।' रानी ने उसकी आज्ञा मान कर सन्तान का जन्म होने तक वहीं रहने का निश्चय किया। वहीं उसके पुत्र उत्पन्न हुआ; वह बीस मास तक पेट मे रहा था इसलिए उसका नाम 'बीसल' रखा गया।

"यह आनन्ददायक बधाई मिलते ही राजा ने बीसलदेव को अपना युवराज बनाया। उसकी माता का मन उस स्थान पर रम गया था और वहीं उसे वरदान प्राप्त हुआ था। फिर, अन्तःपुर मे आकर रहना खतरे से खाली नही था, इसलिए राजा ने सरोवर का विस्तार करने, लतावृक्षादि कुंजों की बढ़ोतरी करने, उस स्थान पर नगर बसाकर दृढ़ कोट बनवाने तथा उसे ऊंचे दर्जे की कोरणी-कला से सुसज्जित करने की आज्ञा प्रदान की। इस नगर का निर्माण करने को कुशल शिल्पकार लगाये गए और उन पर देखरेख करने वाला एक अधिकारी नियुक्त किया गया। इस महान कार्य को पूरा होने में 32 वर्ष लगे और उसने अपना पूरा जीवन वहीं व्यतीत किया। उसी समय बीसलदेव अपने पिता के बाद पट्टण की गद्दी पर बैठा, परन्तु वह ज्यादा-तर अपनी जन्मभूमि में उसी स्थान पर रहता था। नगर-निर्माण का काम पूरा होने पर उसने जिस कारीगर की जैसी योग्यता थी वैसी ही उसको रीझ (इनाम) देकर राजी किया। परन्तु जिस मुख्य कारीगर की रसज्ञता और कुशलता के परिणाम में यह असाधारण सुन्दरता वाला नगर निर्मित हुआ था उसको विशेष रूप से प्रसन्न करने के लिए कहा, 'तुम्हें जो कुछ अच्छा लगे, इनाम में मांग लो।' उस शिल्पकार ने मानपूर्वक कहा, 'आपकी कृपा से मैं सब तरह सुखी हूं इसलिए मुझे धन और रत्न की कोई वांछा नहीं है, परन्तु इस नगर का अभी तक कोई नाम नहीं रखा गया है अतः यही मांग लेता हूं कि इसका नाम मेरे नाम पर डभोवे रखा जाय।' उसकी यह मांग स्वीकार कर ली गई और थोड़े बहुत फेरफार के साथ वह नगर डभोई नाम से प्रसिद्ध है।"

ऊपर के लेख में पाटण के बदले गोदावरी तट पर स्थित पैठण लिखा गया है, यह तो स्पष्ट भूल है। यह भी हम जानते है कि सिद्धराज के कोई कुंअर नहीं था। लेखक ने यहाँ वीरधवल की जगह उसका नाम अड़ा दिया है। इसका कारण यही हो सकता है कि सिद्धराज और उसकी माता मीनल देवी ने ऐसे बहुत-से सर्वोपयोगी निर्माणकार्य कराए थे और इसीलिए ऐसे महान् कार्यों के प्रसग मे उनका नाम प्रख्याति-प्राप्त है। इस प्रसंग में भी इसी तरह सिद्धराज का नाम डभोई के साथ लिया जाता है, यह कोई नई बात नही है। डभोई (दर्भावती) नगरी सिद्धराज के समय से पहले की बसी हुई है। वीसलदेव का जन्म वहाँ हुआ था और इसलिए वहाँ के बहुत से स्थानों का जीर्णोद्धार और नवनिर्माण भी हुआ। बस, इतनी ही बात ध्यान में रखते हुए दन्तकथा की अन्य बातों को छोड़ दिया जाय तो यह समझ में आता है कि वीसलदेव की माता का नाम रत्नाली (रत्नावली) था और वह वीरधवल की चहेती रानी और महिषी थी। वीरधवल ने बड़े पुत्र वीरमदेव के होते हुए भी वीसल को युवराज बनाया था और उसके बाद वह धोलका का राणा हुआ, यह बात भी दन्तकथा के मूलसूत्र से मेल खाती है।

कच्छ म पद्धर अथवा पुवरावाला गढ लाखा फूलाणी के भतीजे पुअराव ने बधाया था। उस गढ और उसमे शोभायमान नवलखा (महल) का निर्माण करने वाले शिल्पकार का उसने दाहिना हाथ कटवा दिया था कि जिससे अन्यत्र जाकर वह कोई और अच्छी इमारत न बना सके। इसी तरह डभोई के कुशल कलाकार के विषय मे भी ऐसी दन्तकथा प्रचलित है कि उसने वहाँ के कोट और दरवाजों में भव्य कारीगरी का प्रदर्शन किया था। वह किसी दूसरी जगह जाकर इससे बढकर शिल्प का प्रयोग न कर सके इसलिए उसको कालिका के मन्दिर मे एक जगह बन्द कर दिया गया था; परन्तु, उसकी स्त्री नित्य ही खाने पीने की सामग्री पहुचाती रही और इस भयंकर स्थिति मे उसने छ: वर्ष काट दिए। इसके बाद कोई ऐसा प्रसग आया कि राजा को उस शिल्पकार की अनिवार्य आवश्यकता आ-पड़ी, इसलिए उसकी याद करके अपने अघटित कृत्य के लिए पश्चात्ताप करते हुए उसने परमात्मा से क्षमा मांगी। जब उसको बताया गया कि जिस तहखाने मे उसको बन्द किया गया था वहां छः वर्ष बाद भी वह जीवित था तो राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसको बाहर निकाल कर मुक्त कर दिया।

डभोई के हीराभागोल दरवाजे पर जो प्रशस्ति है वह वीसलदेव के समय में उसके कुलपुरोहित सोमेश्वरदेव की रची हुई है।

पदरोतरा अकाल

जैन यति ज्योतिष में प्रवीण होते है, उसी के अनुसार सर्वागम-विशारद परमदेव सूरि ने जगडू को एकान्त में लेकर कहा—

द्वीन्द्वग्निचन्द्रवर्षेषु व्यतीतेष्वथ विक्रमात्।

दुर्भिक्षं सर्वदेशेषु भावि वर्षत्रयावधि ॥
प्रेष्याखिलेषु देशेषु विदग्धानात्मपूरुषान् ।
सर्वेषामपि धान्यानां त्वं तैः कारय संग्रहम् ॥

"द्वि = 2, इन्दु = 1, अग्नि = 3, चन्द्र = 1, इन अंकों को बाईं ओर से रखने पर 1312 बनता है, इसलिए यति ने कहा कि विक्रम संवत् 1312 बीतने पर सारे देश में तीन वर्ष तक अकाल पड़ेगा, इसलिए अपने होशियार आदमियो को विभिन्न देशों में भेजकर सब तरह का अन्न एकत्रित कराओ।"

जगडूशाह ने देश-देश में आदमी भेजकर जितना मिल सका उतने अनाज का बड़ा भारी संग्रह कराया। होनहार प्रबल होता है इसलिए पृथ्वीतल पर वर्षा हुई ही नहीं और मँहगे मूल्य पर भी अनाज मिलना मुश्किल हो गया। ऐसे समय मे जगडू शाह ने लोगों को मुफ्त में अनाज देना शुरू किया; परदेशों में भी गरीबो में अनाज बांटने को अपने आदमी भेजे। दुष्काल के दो वर्ष बीतते-बीतते राजाओं के भी अन्न-भण्डार रीते हो गए; यहां तक हालत बिगड़ गई कि एक द्रम्म के गिन कर तेरह चने के दाने मिलने लगे। वीसलदेव का अन्न का कोठार भी उस समय रिक्त हो गया था इसलिए उसने अपने मन्त्री नागड़ को जगड़ के पास भेजकर उसे अपने पास बुलाया। तदनुसार वह सेठों को साथ लेकर अणहिलपुर गया और राजा को नमस्कार करके बैठ गया। उस समय एक चारण बोला—

सोलपुत्र ! भवत्तुल्यं पुण्यं नोऽन्यस्य विद्यते ।
नृवामकुक्षौ कः पश्येत् कर्बुरान्त्रं प्रविश्य च ॥

अर्थात् 'हे सोल के पुत्र ! तुम्हारे समान और किसी का पुण्य नहीं है क्योंकि मनुष्य की बाईं कोंख मे घुस कर उसकी (भूख के मारे) भूरी आंतो को कौन देख सकता है ?'

कवि के इस अर्थान्तरन्यासयुक्त वचन से चौलुक्यधरापति वीसलदेव बहुत प्रसन्न हुआ। उसने व्यवहारियों मे श्रेष्ठ जगडू को कहा 'यहाँ पर तुम्हारे सात सौ अन्न भण्डार है, ऐसा सुनने में आया है, इसलिए तुमसे धान्य लेने के लिए मैंने तुम्हे बुलाया है।' राजा के वचन सुनकर जगडूशाह ने हँसकर कहा, 'इन भण्डारो मे मेरा तो एक भी कण नही है, यदि सन्देह हो तो आप कण-कोठार की ईंटों में मेरे द्वारा जड़वाए हुए ताम्रपत्र के लेख को देख लें।' राजा ने लेख मँगवा कर देखा। उसमें लिखा था—

'जगडुः कल्पयामास रंकार्थे हि कणानमून्'

जगडू ने यह कणसंग्रह रंकों (गरीबों) के लिए किया है।

फिर, जगडू ने राजसभा के बीच में वीसलदेव को कहा 'जगत में दुष्काल से पीड़ित होकर लोग मर जावेंगे तो इसका पाप मुझे लगेगा।' ऐसा कह कर उस

त्रिवीर[55] पुरुष ने राजा को आठ हजार अन्न के मूटक[56] दिए। उस समय सभा में सोमेश्वर आदि कवि उपस्थित थे, उनमें से एक ने उच्च स्वर में जगडू की जगत्स्तुति की—

श्री श्रीमालकुलोदयक्षितिधरालंकारतिग्मद्युतिः
प्रस्फूर्जत्कलिकालकालियमदप्रध्वंसदामोदरः।
रोदः कन्दरवर्तिकीर्तिनिकरः सद्धर्म्मवल्लीदृढ़-
त्वक्सारो जगडूश्चिरं विजयतां सर्वप्रजापोषणः॥

'यह जगडूशाह श्रीसम्पन्न श्रीमाल कुल रूपी पृथ्वी के अलंकारभूत पर्वतश्रेष्ठ उदयाचल पर प्रचण्ड प्रकाशमान सूर्य के समान है; तेज़ी से फैलते हुए कलिकाल रूपी कालियनाग का प्रध्वंस (दमन) करने के लिए साक्षात् भगवान् दामोदर (श्रीकृष्ण) है; इसका कीर्तिसमूह पृथ्वी और आकाशमण्डल में फैला हुआ है, ऐसा सद्धर्म रूपी वल्ली (वेल) के लिए आधार बना हुआ वाँस के समान यह जगडू चिरकाल तक विजयी हो।'.

इस प्रकार रूपकालंकार से अलंकृत पद्य को सुनकर दूसरा कवि आक्षेपालंकार-मण्डित प्रशस्ति-पद्य बोला—

पाताले क्षिपता वलिं मुरजिता किं साधु चक्रेऽमुना
रुद्रेणापि रतेः पतिं च दहता का कीर्तिरत्रार्जिता॥
दुर्भिक्षं क्षितिमण्डलक्षयकरं भिन्दन् भृशं लीलया
स्तुत्यः साम्प्रतमेक एव जगडूरुद्दामदानोद्यतः॥

'मुर नामक राक्षस को जीतने वाले विष्णु भगवान् ने वलि राजा को पाताल में फेंककर कौनसा भला काम किया? इसी तरह रुद्र रूप भगवान् शिव ने रति के पति कामदेव को भस्म करके कौन-सी कीर्ति कमा ली? इस समस्त पृथ्वीमण्डल का नाश करने वाले दुष्काल को बात की बात में छिन्न-भिन्न करने वाला और खुलकर दान देने वाला जगडूशाह इस युग में अवश्य ही प्रशंसा करने योग्य है।'

यह सुनकर तीसरे कवि की वाणी प्रस्फुटित हुई—

परं ब्रह्म ब्रह्मा स्मरति परिमुक्तान्यविषयः
प्रकामं श्रीकण्ठः क्षितिधरसुताश्लेषरसिकः।
श्रियः कृत्वोत्संगे स्वपिति चरणे विष्णुरुदधौ
समुद्धर्तुं लोकं जगति खलु जागर्ति जगडूः॥

---

55. तीन वार विजय प्राप्त करने वाला अथवा दया, दान और धर्मवीर।
56. मूटक का अर्थ गुजराती में मूड़ा लिखा है। कोश में एक मूड़ा बराबर सौ मन वज़न या 25 सेर वजन की माप वाला (मिट्टी) का वर्तन, अर्थ दिया है।

'सृष्टि के स्रष्टा और पालक त्रिदेवों का तो यह हाल है कि सब दूसरी बातों को छोड़कर ब्रह्मा तो परब्रह्म के स्मरण मे लग गया है; श्रीकण्ठ शिव पर्वतराज-पुत्री पार्वती का आलिंगन करने मे पूरा रस ले रहे है और विष्णु भगवान् अपने दोनों चरण लक्ष्मी की गोद मे रखकर आराम से सो रहे हे; अब तो इस लोक का उद्धार करने को केवल जगडू ही जागृत है।'

ऐसी अतिशयोक्ति-चमत्कृत कविता सुनकर चौथे कवि से न रहा गया और वह बोला—

एकभूभृत्समुद्धर्ता श्रूयते हि चतुर्भुजः।
सर्वभूभृत्समुद्धारी जगडूर्द्विभुजोऽप्यहो !

'चार भुजाओं वाले (श्रीकृष्ण) के बारे मे सुनते हैं कि उन्होंने एक भूभृत् (गोवर्द्धन पर्वत) को उठाया (उद्धार किया) परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि दो ही भुजाओं वाला जगडू सभी भूभृतों (राजाओं) का अच्छी तरह उद्धार करने वाला (इज्जत बचाने वाला) है।'

पाँचवें कवि ने इस प्रकार बखान किया—

शक्रादिकसुरा गौणी दधते लोकपालताम्।
वस्तुतः सोलतनये लोकं पालयति स्फुटम् ॥

'सच्ची बात तो यह है कि जब सोल का पुत्र जगडू प्रत्यक्ष रूप में लोकों का पालन कर रहा है तो इन्द्र आदि देवता लोग व्यर्थ ही लोकपाल होने का दावा करते है।'

छठे कवि ने व्यतिरेकालकार की छटा छिटकाते हुए कहा—

त्रातैकपन्नगकुलेन पतत्त्रिनाथा-
ज्जीमूतकेतुतनयेन किमस्य साम्यम्।
दुर्भिक्षदैत्यवदनादखिलां धरित्री
संरक्षतः सुकृतिनः किल सोलजस्य ॥

'पक्षियों के राजा गरुड़ के चगुल से मात्र एक सर्पकुल को बचाने वाले जीमूतकेतु के पुत्र की सोलपुत्र जगडू से क्या समता है? क्योंकि, यह सुकृति तो दुर्भिक्ष रूपी दैत्य के मुख मे से अखिल पृथ्वी को बचाने वाला है।'[57]

---

57. ऐसी कथा है कि जीमूतवाहन के भाई-बन्धुओं ने आक्रमण करके उसका राज्य छीन लिया था; तब वह अपने पिता के साथ मलयपर्वत पर चला गया और वहाँ एकान्तवास में रहने लगा। उस स्थान पर पक्षिराज गरुड नित्य एक सर्प का भोग लेते थे। जब शङ्खचूड नामक सर्प की बारी आई तो उसकी माता विलाप करने लगी। उस समय जीमूतवाहन का विवाह हुए दस ही दिन हुए थे, परन्तु उसका रुदन सुनकर उसने कहा 'माता ! तेरे पुत्र

इसी तरह के भावार्थ की स्तुतिपरक कविताएँ अन्य कवियों ने भी सुनाईं, उनमें से एक ने ऐतिहासिक सन्दर्भ-गर्भित निम्न पद्य पढ़ा—

गर्जप्रोद्धरपीठदेववनितानेत्रांजनश्रीहरो
हम्मीरप्रतिवीरविक्रमकथासर्वस्वलापोल्वणः ।
माद्यन्मुद्‌गलधामचण्डमहिमप्रध्वंसनोष्णद्युतिः
श्रीमद्‌गुर्जरराज्यवर्द्धनकरः सोलात्मजस्ताज्जयी ॥

'गर्व से गर्जन करते हुए पीठदेव की स्त्रियों के नेत्रांजन की शोभा को हरने वाले, (सिन्ध देश के) राजा हमीर के वीर शत्रुओं के पराक्रम की कथावस्तु कथन में चतुर मदोन्मत्त मुद्‌गलों की प्रचण्ड कीर्ति का नाश करने में सूर्य के समान और श्रीमद्‌गुर्जर-राज्य की बढ़ोतरी करने वाले सोलपुत्र जगडू की जय हो।'

जगडूशाह विवेकी पुरुष था इसलिए वह कवियों के प्रशंसावाक्य सुन कर नत-मस्तक हो गया। उनको बहुत सा द्रव्य देकर सत्कार-किया और चौलुक्यभूपाल वीसलदेव की आज्ञा लेकर वह भद्रेश्वर चला गया।

इसके बाद सिन्ध के राजा हमीर के माँगने पर उसको जगडू ने 12,000 मूटक अनाज दिया;

उज्जैन के राजा मदनवर्मा को 18,000 मूटक दिए;

दिल्ली के राजा मोजुद्दीन को 21,000 मूटक दिए;

डीशी के राजा प्रतापसिंह को 32,000 मूटक करण दिया;

स्कन्धील (कन्धार) का राजा चक्रवर्ती कहलाता था; उसको भी 12,000 मूटक अनाज दिया।

इसके अतिरिक्त उसने 112 दानशालाओं की स्थापना की। ऐसे कुलीनों को, जिन्हें माँगने मे लज्जा आती थी उनको वह लड्डू मे सोने की दीनार रख कर रात्रि को दे आता था। यह लज्जापिण्ड[58] कहलाता था।

के बदले में तार्क्ष्य (गरुड़) का भक्ष्य बनूंगा।' यह कहकर शंखचूड़ को बिना बताए ही वह वध्यशिला पर चढ गया। गरुड़ भी उसको नाग समझ कर फाड़ कर खाने लगे, परन्तु रुधिर के स्वाद मे अन्तर अनुभव करके आश्चर्य करने लगे। इतने ही में जीमूतवाहन के माता-पिता और स्त्री विलाप करते हुए आए और पता चलते ही शंखचूड़ भी वहाँ आ पहुँचा। उसने गरुड़ से कहा 'मेरे बदले तुमने इस उदार को विदार (फाड़) कर महान् पाप कर्म किया है, इसलिए अब इसे पुनः जीवित करो। गरुड़ को भी बहुत पश्चात्ताप हुआ इसलिए इन्द्र के पास जाकर अमृत लाए और जीमूतवाहन पर छिड़क कर उन्होंने उसे संजीवित कर दिया। साथ ही, पहले किए हुए पापों का प्रायश्चित करने को गरुड़ ने अन्य नागों को भी अमृत-प्रयोग से पुनरुज्जीवित किया। (हि- अ.)

58. ऐसा शायद दान का रिवाज ही चल पड़ा था। मकर संक्रान्ति या अन्य पर्व

इस दुष्काल में जगडू ने 99,000 अनाज के मूटक और अट्ठारह हजार द्रम्म याचकों को दान में दिए।

इस प्रकार वीसलदेव के राज्य में जब अकाल पड़ा तो जितना हो सका उतना प्रजा का रक्षण किया गया।

वीसलदेव पराक्रमी राजा था; उसका उपनाम महीमल्ल था।[59] वह विद्वानों को पूरा आश्रय देता था इसलिए उसके दरबार में कविगण बने ही रहते थे।

वीसलदेव और उसके क्रमानुयायियों के विषय में और भी विस्तार से लिखा जा सकता है, परन्तु जितना कुछ पिछले पृष्ठों में आ गया है, सारग्रहण के लिए वही पर्याप्त है।

विविध विशेष टिप्पणियाँ

1. श्री करणी जी के मन्दिर सम्बन्धी शिलालेख

'।। ये सिलालेख श्री देसणोक में श्री माताजी के निज मंदर की दाईं तरफ बाहर की दीवार पर स्थापित किया हुआ है, जिसकी नकल इस प्रकार है—

।। विदित हो कि यह मन्दिर जगज्जननी भगवती श्री करणी जी का है और इन्होंने संवत् 1444 मिती आश्विन शुक्ला 7 शुक्रवार को मारवाड़ देशान्तरगत सूयाप ग्राम में चारण कुल में अवतार धारण कर अनेकानेक अलौकिक कार्य किये जो

के दिन तिलों के या आटे के लड्डू बनाकर उनमें कोई चाँदी का सिक्का, दोअन्नी चौअन्नी, अठन्नी या रुपया रख दिया जाता है और वह ब्राह्मणों को दिया या अपने रिश्तेदारों के यहाँ भेजा जाता है। विवाह में भी कुछ ऐसे लड्डू वर के घर भेजते हैं। पुरुषोत्तम मास में तो ऐसा दान प्रायः होता ही है। (हि. अ.)

59. संवत् 1317 के एक ताम्रपत्र से विदित होता है कि वीसलदेव को 'अभिनवसिद्धराज' और 'अपरार्जुन' विरुद भी प्राप्त थे। सं० 1343 की एक प्रशस्ति में उसको 'राजनारायण' भी लिखा है।'

गुजरात का मध्यकालीन राजपूत इतिहास; पृ. 471

उक्त सं० 1317 के लेख में एक विशेषण यह भी है—

'मेदपाटकदेशकलुषराज्यवल्लीकन्दोच्छेदनकुद्दालकल्प'

इससे ज्ञात होता है कि उसका मेवाड़ के राजा के साथ भी युद्ध हुआ था।

(गुर्जर ऐतिहासिक-लेख संग्रह; सं० 216)

चीरवा के लेख में लिखा है कि 'जैत्रसिंह द्वारा नियुक्त चित्तौड़ का कोटवाल प्रधान भीमसेन के साथ चित्तौड़ की तलहटी में काम आया।" अतः यह लड़ाई जैत्रसिंह (सं० 1309-1330) के साथ हुई होगी और इसी विजय को लक्ष्य करके ऊपर लिखा विशेषण प्रयुक्त किया गया होगा।

(राजपूताने का इतिहास, खण्ड 1; पृ. 472)

सर्वत्र प्रसिद्ध ही हैं और इनके अनुग्रह से इन्हीं के परमभक्त श्री सूर्यवंशावतंस श्री सुमित्रान्वयभूषण श्री विश्वराय-नृपात्मज श्रीमल्लराय-तनुज राष्ट्रवर-कुल-तिलक कान्यकुब्जाधीश्वर श्री जयच्चन्द्र-गोत्रालंकार राव रिडमलजी को, जो दूसरे भाइयों के हस्तगत था, मारवाड़ देश का राज्य मिला और उन्हीं के पौत्र राव बीकाजी को बीकानेर का विशाल राज्य मिला और उक्त श्री भगवती जी ने 150 वर्ष 6 महीने 2 दिन अर्थात् संवत् 1595 मिती चैत्र शुक्ला 9 गुरुवार पर्यन्त अपने पद पंकजों से इस धरातल को पवित्र कर और स्वकर-कमलों से गोलाकार निर्लेप पाषाणमय जाल-वृक्ष-शाखाच्छादित निज-मन्दिर रचा जिसको देखने से उसकी बहुत ही विचित्रता प्रमाणित होती है फिर स्वेच्छाधृत देह को अन्तरहित कर निज भक्तों के उपकारार्थ तेजोमय शक्ति रूप से पाषाणमयी मूर्त्ति में प्रवेश कर उक्त मन्दिर ही में विराजमान हुईं, तत्पश्चात् निज खजाने के द्रव्य से यह बृहत् मन्दिर बनवाया गया और जो बीकानेर के महाराजा हुए वे भी स्वश्रद्धानुसार समय-समय पर श्री भगवती जी की सेवा करते रहे और महाराजा श्री सूरतसिंह जी बहादुर ने मन्दिर के चारों तरफ सुदृढ़ परकोटा बनवा दिया; तदुपरान्त महाराजा साहिब श्री 108 श्रीडूंगरसिंह जी बहादुर ने उक्त मन्दिर के छत्र-कपाटादि हेममय सामग्रियों से सुसज्जित कर दिये और वर्तमान महाराजा साहिब श्री 108 श्री गंगासिंह जी बहादुर ने भी विक्रम संवत् 1961 मिती माघ शुक्ला 5 को महाराजकुमार श्री शार्दूलसिंह जी के जड़ूला उतारने की जात के निमित्त निज माजी साहब श्री चन्द्रावत जी व महाराणी जी श्री शरणावत जी साहिबां व महाराणी जी श्री तंवर जी साहिबां सहित देशनोक पधार कर भक्तियुक्त होकर तांत्रिक विधि-विधानपूर्वक श्री भगवती जी का पूजन किया और जात देकर परम पवित्र चित्त श्रीमान् महाराजा साहिब ने उत्साहयुक्त होकर सुवर्ण-मय थाल व झारी इत्यादि पूजोपयोगी वस्तुएँ भेंट कीं और मन्दिर के प्याले नामक प्रसिद्ध चौक तथा निज मन्दिर के अन्यान्य जीर्णस्थानों के जीर्णोद्धार के निमित्त कविराज भैरवदान को आज्ञा दी और इन्होंने भी श्रीमानों की आज्ञानुसार इस कार्य को पूर्ण कराया जिसके होने में श्रीमान् महाराजा साहिब के रु० 5336।=) का व्यय हुआ और श्रीमान् महाराजा साहिब के इस उत्तम कार्य को चिरस्मरणीय होने के अर्थ श्रीमानों की आज्ञा से यह शिलालेख संस्थापित किया। संवत् 1963 मिती फाल्गुन वदि 9 बृहस्पतिवार।'

॥ श्री करणी जी ॥

'॥ गोंव कुंकणीयो वात्रनीयो कविराजा बभुतदानजी व भैरवदान कु महाराजा साहाब श्री 108 श्री डूंगरसिंह जी वहादुर ने सासनता वा पत्र कर दींया वा वाद में कविराज भैरवदान ने गों कुकणीये मे निज निवासे के लिये हवेली वा मन्दर वा गों वनीजां में कुप करायो तेरो सिलालेप गोकुकणीये रे मिन्दर श्री मुरलीमनोहरजी में थापत कीयो तेंरी नकल ये है—

नकल

'।। विदित हो कि सूर्यवंशावतंस श्री सुमित्रान्वय भूप श्री विश्वराय-नृपात्मज श्री मल्लराय तनुज राष्ट्रवर-कुलतिलक कान्यकुब्जाधीश्वर श्री जयचन्द्र गौत्रालंकार मरुचक्र-चूड़ामणि महाराजाधिराज श्री श्री 108 श्री डूंगरसिंह जी बहादुर ने बारहठ रोहड़जी के कुलोद्भव वीठूजी के वंशज बारहठ जैंकिशनजी के प्रपौत्र प्रभुदांन जी के पौत्र भोमदान जी के पुत्र कविराज भभूतदान जी व तत्पुत्र भैंरवदान जी को संवत 1932 मिती भादवा वद 14 को गाम दोय, 1 कुंकणिया 1 वनिया जिनकी सीमा परस्पर मिली हुई है सांसण तांवा पत्र कर प्रदान कीया जिनमें कविराज भैंरवदान जी ने गोंव वनियां में तो संवत् 1941 मिती आषाढ़ वद 11 को करणीसर नामक एक तोणा कूप का पाया लगाकर संवत् 1945 मिती जेठ सुद 11 को प्रतिष्ठा कराई और उक्त कूप के वनने में रु० 5,000) सहस्र का व्यय हुआ तथा गाँव कुंकणीये में निज निवास के लिए हवेली वनवाई और मिन्द्र का संवत् 1958 मिति वैशाख सुद 7 को पाया लगा कर संवत 1960 मिति वैशाख सुद 11–12 को प्रतिष्ठा कर श्री मुरलीमनोहर जी की मूर्ति पधराई और मन्दिर के वणाने में रु० 5025) का व्यय हुआ मिति पौस वदि 4 बुधवार शुभं भवतु।

।। दुहाः ।।

कुंकणीयो वनीयो कहुं, दियै डूंगर नृप दांन।
वभूतदांन कवी भैंर नै, थिर भूमी लीयै थांन ।।'

।। श्री करणी जी ।।

।। श्री लूणो जी ।।

'।।गों सीहथल के समीप लालपुरा गाँव वसाया वा लालेसुर माहादेवजी का मिंदर वनवाया वा लाल सागर कुआ दुतीणा वणाया वा निज निवास के लिए हवेली वणाई गई तेंरो शिलालेख लिखा कर लालपुरै गोंव में माहादेवजी के मिंदर में थापत कीया तेंरी नकल

नकल

'।। विदित हो कि श्री सूर्यवंशावतंस श्री सुमित्रान्वय-भूषण श्री विश्वराय-नृपात्मज श्री मल्लराय-तनुज राष्ट्रवर-कुल-तिलक कान्यकुब्जाधीश्वर श्री जयच्चन्द्र-गोत्रालंकार श्री बीकानेर नगराधिपति राजराजेश्वर नरेन्द्रशिरोमणि महाराजाधिराज श्री श्री 108 श्री डूंगरसिंह जी बहादुर की आज्ञानुसार उक्त महाराज के निज पिता श्री लालसिंहजी के नाम पर बारहठ रोहडजी के कुलोद्भव वीठूजी के वंशज वारहठ जैंकिशन जी के प्रपौत्र प्रभूदांन जी के पोत्र भोमदांन जी के पुत्र कविराज भभूतदांन जी ने निज निवास-स्थान सिहथल ग्राम के समीपवर्ती भूमि में यह लालपुरा नामक नवीन ग्राम बसा कर इसमे अपने निवास के लिए हवेली व हवेली के पश्चिम तरफ लालसागर नामक दुतिणे कूप का पाया संवत् 1933 निज हस्त से

लगाया और उक्त दोनों स्थानों का कार्य कुछ ही अवशेष था, इतने ही में कविराज भभूतदान जी का तो संवत् 1936 श्रावण शुक्ला 7 को परलोकवास हो गया, तदनन्तर उन्हीं के पुत्र 1 भैरवदान, 2 भारतदान, 3 सुखदान, 4 मुकनदान, 5 मूलदान हैं, उन सबमें ज्येष्ठ कविराज भैरवदान जी ने उस अवशिष्ट हवेली व कूप के कार्य को पूरण कराया, उक्त कूप के बणाने में रु० 7925) का व्यय हुआ तथा स्वर्गवासी कविराज भभूतदान जी के पूर्व संकल्पित शिवमन्दिर का पाया लालसागर कूप के समीप संवत् 1942 में लगाकर संवत् 1945 मिती वैसाख सुद 13 को हवेली व कूप व मन्दिर की प्रतिष्ठा कर उक्त मन्दिर में महाराज श्री लालसिंह जी के नाम पर श्री लालेश्वर जी की मूर्ति पधराई, उक्त मन्दिर के बणाणे में रु. 5025) का व्यय हुवा और उक्त लाल्पुरे ग्राम का सांसण तांबापत्र श्री मन्महाराजा श्री 108 श्री डूंगरसिंह जी बहादुर ने कविराज भभूतदान जी को संवत् 1935 मिती जेठ वद 14 को कर दीया। बारहठ बीठूजी ने जांगलू के महाराणा खींवसी सांषला से बारे ग्राम पाये, उन ग्रामों में से बीठूजी ने अपने नाम से बीठणोक नामक ग्राम बसाया, तदुपरान्त बीठणोक के एवज में बीठूजी के प्रपौत्र सांघट जी ने महाराणा खींवसी के प्रपौत्र हड्डराण से यह सिहथल ग्राम पाया, जिसका यह शिलालेख शुभ भवतु।

॥ दुहा ॥

बीठू बारट ने सुचित, खींव राण समरत्थ।
दत रीझे सिहथल दीयो, सांसण द्वादश सत्थ ॥1॥
विभूतदान कवि राजवर, मही दान सनमान।
पाये डूंगर नृपत तें, नग्र लालपुर थान ॥2॥
संवत् 1963 मिति माघ सुदी 4'

2. तुंवर वंश

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला में ग्रन्थांक 70 के रूप में प्रकाशित और डॉ. दशरथ शर्मा द्वारा सम्पादित इन्द्रप्रस्थ-प्रबन्ध नामक पुस्तक के छठे सर्ग में दिल्ली के 'तुंवर' राजाओं का राज्यकाल वर्ष, मास, दिन और घड़ियों में इस प्रकार दिया है—

1. अनंगपाल	—	इसकी राज्यावधि नहीं दी है।
2. विल्हणदे	—	(19 वर्ष, 5 मास, 3 दिन, 18 घड़ी)
3. गंगेव	—	(21 वर्ष, 3 मास, 3 दिन, 8 घड़ी)
4. पृथकु	—	(19 वर्ष, 6 मास, 19 दिन, 11 घड़ी)
5. सहदेव	—	(20 वर्ष, 7 मास, 27 दिन, 15 घड़ी)
6. श्रीयुत युत	—	(15 वर्ष, 3 मास, 8 दिन, 3 घड़ी)
7. कुन्दयुत	—	(14 वर्ष, 4 मास, 9 दिन, 9 घड़ी)
8. नरपाल	—	(26 वर्ष, 7 मास, 11 दिन, 20 घड़ी)

9.	वत्सराज	—	(21 वर्ष, 2 मास, 13 दिन, 11 घड़ी)
10.	वीरपाल	—	(21 वर्ष, 6 मास, 5 दिन. 11 घड़ी)
11.	गोपाल	—	(20 वर्ष, 4 मास, 4 दिन, 8 घड़ी)
12.	तोह्लण	—	(18 वर्ष, 3 मास, 5 दिन, 8 घड़ी)
13.	जुलखरी	—	(20 वर्ष, 10 मास, 10 दिन, 16 घड़ी)
14.	तसखरी	—	(21 वर्ष, 4 मास, 3 दिन, 1 घड़ी)
15.	कँवरपाल	—	(21 वर्ष, 3 मास, 11 दिन, 8 घड़ी)
16.	अनंगपाल	—	(19 वर्ष, 6 मास, 18 दिन, 10 घड़ी)
17.	तेजपाल	—	(24 वर्ष, 1 मास, 6 दिन, 11 घड़ी)
18.	मोहपाल	—	(15 वर्ष, 3 मास, 17 दिन, 11 घड़ी)
19.	स्कदपाल	—	(12 वर्ष, 9 मास, 16 दिन, 0 घड़ी)
20.	पृथ्वीराज	—	(24 वर्ष, 3 मास, 6 दिन, 16 घड़ी)

इस प्रकार कुल 20 राजाओं के नाम दिए हैं, परन्तु सर्ग के आरम्भ मे प्रतिज्ञा 19 राजाओं का विवरण देने की ही की गई है—

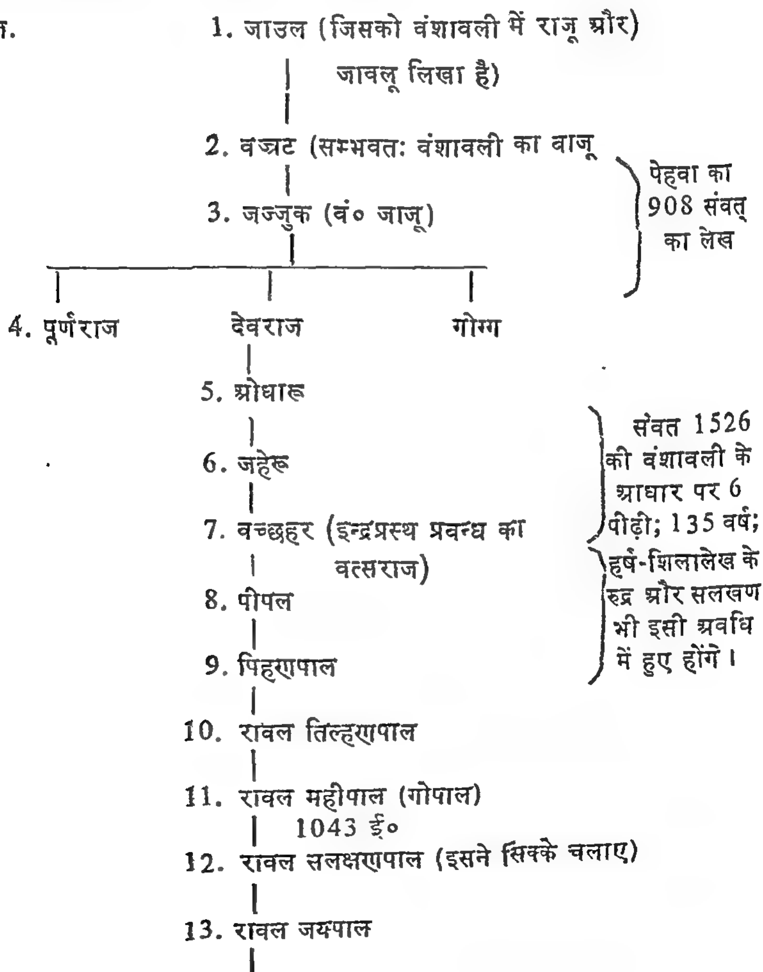
एकोनविंशति राजा त्वत्कुले स्थास्यति नृप ।
अनंगपालनृपतिः ढिल्यां राजपतिर्भवेत् ॥1॥

यहां अनंगपाल के राज्य के वर्ष मासादि नहीं गिनाए गए हैं और आगे के राजाओं के विषय में भविष्यत् काल में लिखा गया है। इसीलिए अनंगपाल नृप को शायद सम्बोधन करके कहा गया है। अनगपाल तुंवरवश का आदि पुरुष या संस्थापक रहा होगा।

तोमरों का आरम्भिक इतिहास अन्धकार में है। पौराणिक उल्लेखों से ज्ञात होता है कि वे हिमालय के क्षेत्रों में कहीं उन लोगों के साथ रहते थे जो हंसमार्ग, तगण और काश्मीर नाम से जाने जाते थे। ये लोग दक्षिण की ओर कब और कैसे आए इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता है। ऐसा लगता है कि ये लोग शुरू में कुरुक्षेत्र या आसपास के इलाकों में आकर बसे होंगे। महेन्द्रपाल प्रथम के एक तिथिहीन लेख में गोग्गभूनाथ तोमर का उल्लेख है; साथ ही, उसके दो भाइयों का भी जिक्र है। इन्होंने पेह्वा (पृथूदक) नामक स्थान पर एक विष्णुमन्दिर का निर्माण कराया था। पेहवा एक छोटा-सा गाँव है जो दक्षिण-पूर्व पंजाब के करनाल जिले की कैथल तहसील में है। बाद में ये लोग आगे बढ़े और दिल्ली के आसपास तथा भूतपूर्व जयपुर राज्य की तौरावाटी तहसील वाले क्षेत्र में जम गए।

राजस्थान पुरालेखागार, बीकानेर से डा. दशरथ शर्मा जी के प्रधान सम्पादकत्व में अभी (1966 ई) 'युग-युग में राजस्थान' (Rajasthan Through the Ages) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में डा. शर्मा जी ने कोई 8 आधारों पर तोमरों की वंशावली तैयार की है। वे आधार ये हैं—(क) कुरुक्षेत्र के

तोमर, (ख) विग्रह-राज द्वितीय के हर्ष-शिलालेख में उल्लिखित तोमर, (ग) गढ़वाल ज़िले के लैंसडौन स्थान पर मिले 143 सिक्कों में तोमरों के सिक्कों में प्राप्त तोमरवंश, (घ) कनिंघम द्वारा तैयार की गई तोमर-वंशावली, (ङ) तबकाते-नासिरी, पार्श्वनाथ चरित्र और खरतरगच्छ पट्टावली में तिथिलेख-सहित उल्लिखित तोमर, (च) आइने अकबरी में दी हुई तोमर वंशावली, (छ) 1526 (1531 ?) संवत् की दिल्ली वंश राजावली की पाण्डुलिपि में दी हुई वंशावली और (ज) इन्द्रप्रस्थ प्रबन्ध की वंशावली। अब, इस वंशावली का अन्तिम रूप इस प्रकार है—



14. रावल कँवरपाल
|
15. रावल अनंगपाल
(1132 ई० के सिक्के प्राप्त)
|
16. रावल तेजपाल
|
17. रावल मदनपाल
(1166 ई० के सिक्के प्राप्त)
|
18. रावल कितपाल
|
19. रावल लखणपाल
|
20. रावल पृथ्वीपाल
(ठक्कर फेरू ने सिक्कों का उल्लेख किया है)
|
21. चाहड़ पाल (संभवतः यह दिल्ली का राजा नहीं था, परन्तु इसके बहुत से सिक्कों का ठक्कर फेरू ने उल्लेख किया है।)

3. जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर

क्रम	तीर्थंकर का नाम	माता का नाम	पिता का नाम	लांछन (चिन्ह)	जन्मभूमि
1.	ऋषभदेव	मरुदेवी	नाभि	ऋषभ, वृष	विनीता
2.	अजितनाथ	विजया	जितशत्रु	हाथी	अयोध्या
3.	संभवनाथ	सेना	जितारि	अश्व	सावत्थी (श्रावस्ती)
4.	अभिनन्द	सिद्धार्था	संवर	वानर	विनीता
5.	सुमतिनाथ	मंगला	मेघ	क्रौंच पक्षी	कोसला
6.	पद्मप्रभु	सुशला सुसीमा	धर	रक्तकमल	कोशाम्बी
7.	सुपार्श्वनाथ	पृथ्वी	प्रतिष्ठ	स्वस्तिक	वाराणसी
8.	चन्द्रप्रभु	लक्ष्मणा	महासेन राजा	चन्द्रमा	चन्द्रपुरी
9.	सुविधिनाथ	रामा	सुग्रीव राजा	मकर	कादन्दी

10.	शीतलनाथ	नन्दा	दृढ़रथ	श्रीवत्स	भद्दिलपुर
11.	श्रेयांसनाथ	विष्णु	विष्णु	खड्ग्	सिंहपुर
12.	वासुपूज्य	जया	वसुपूज्य राजा	पाडा	चम्पापुरी
13.	विमलनाथ	श्यामा	सुतवर्मा	शूकर	कपिलपुरी
14.	अनन्तनाथ	सुयशा	सिंहसेन	श्येन (बाज़)	अयोध्या
15.	धर्मनाथ	सुव्रता	भानुराज	वज्र	रत्नपुरी
16.	शान्तिनाथ	अचिरा	विश्वसेन	हरिण	आधीनपुर
17.	कुंथुनाथ	श्रीमाता	सूर	बकरा	गजपुरी
18.	अरनाथ	देवी	सुदर्शन	नन्दावर्त	नागपुरी
19.	मल्लिनाथ	प्रभावती	कुम्भ	कलश	मिथिला
20.	मुनिसुव्रत	पद्मा	सुमित्र	कच्छप	राजगिरि
21.	नेमिनाथ	विप्रा	विजय	नीलकमल	महीला
22.	नेमिनाथ	शिवादेवी	समुद्रविजय	शंख	सोरिपुर
23.	पार्श्वनाथ	वामा	अश्वसेन	सर्प	वाराणसी
24.	महावीर	त्रिशला	सिद्धार्थराज	सिंह	क्षतिकुण्ड

4. वलभी का राजवंश[60]

सूर्यवंश का प्रथम राजा मनु हुआ, उसका पुत्र इक्ष्वाकु अयोध्या का पहला राजा था। इक्ष्वाकु की 57वीं पीढ़ी में रामचन्द्रजी हुए; उनके पुत्र लव ने पंजाब में रावी नदी के किनारे अपने नाम पर लवपुर (लाहौर) बसाया और वहीं पर अपना राज्य कायम किया। लव से 63 वां पुरुष कनकसेन हुआ जो लाहौर से गुजरात में आया; उसने किसी परमार कुल के राजा को जीतकर वडनगर बसाया और उसी स्थान पर अपनी राजधानी की स्थापना की। उसके बाद क्रम से महामदनसेन, सुदन्त और विजयसेन (अजयसेन) अथवा विजय हुए। इस विजय ने ही विजयपुर, विदर्भ और वलभीपुर बसाए। यही विजयसेन सेनापति भटार्क के नाम से प्रसिद्ध है और इसी ने वलभीपुर में अपनी गद्दी स्थापित की थी।

भटार्क का वंश गुजरात के इतिहास में मैत्रक वंश के नाम से जाना जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि मित्र अर्थात् सूर्य का वंश होने से यह 'मैत्रक' कहलाया, जैसा कि इनके वंशानुक्रम से ज्ञात होता है। इतिहास-लेखकों का मत है कि इस वंश के मूलपुरुष का नाम मित्र होगा और संभवतः वह पुराणों में प्रसिद्ध पाशुपत संप्रदाय 'मैत्र्यों' का मूलपुरुष 'मित्र' हो सकता है। ये पाशुपत सैनिक कालान्तर में सेनापति और तदनन्तर राजा पद को प्राप्त हुए हों यह असम्भव

60. गुजराती अनुवाद के अतिरिक्त डा. हरप्रसाद शास्त्री के मैत्रक कालीन गुजरात के आधार पर इस शीर्षक में सूचनाएँ जोड़ी गई हैं।

नहीं लगता है। मैत्रक वंश का सूर्यवंश होना इसलिए संगत नहीं लगता कि संस्कृत साहित्य में कहीं भी 'मैत्रक' शब्द सूर्य से सम्बद्ध वंश के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है। इसलिए यही लगता है कि पाशुपत संप्रदाय में लकुलीश के जिन चार शिष्यों के नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और कुरुष या कारुष गिनाए गए हैं उनमे से 'मित्र' ही इस वंश का मूल पुरुष रहा होगा। गुजरात के मैत्रक पाशुपत सम्प्रदाय का पालन करते थे। पाशुपत मत को मानने वाली जाति के लोग लड़ाकू होते थे और इनको प्रायः सेना में भरती करने में पहला अवसर दिया जाता था। इस मत के साधुओं को विशिष्ट राज-सम्मान भी प्राप्त होता था। ये लोग 'वप्प' या 'वाप' कहलाते थे। बाद में, वलभी के राजा भी अपने को वप्प, परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर आदि विरुदों से अलंकृत करते थे।

मैत्रकों की उत्पत्ति के विषय में कुछ बातें जानने योग्य हैं। 'मैत्र' या 'मैत्रक' शब्द मनुस्मृति में जातिविशेष के लिए प्रयुक्त हुए हैं। वहाँ ये व्रात्य वैश्य के वंशज माने गए हैं, परन्तु सातवीं और आठवीं शताब्दी के साहित्य को देखने से ज्ञात होता है कि इनको यादव कुल के क्षत्रिय लिखा गया है। इससे यह अनुमान होता है कि राज-सत्ता प्राप्त होने पर इन्होंने यादवों से सम्बन्ध स्थापित करके अपने को उसी कुल का प्रसिद्ध किया होगा। ग्यारहवीं शताब्दी का वैजयन्ती-कोष है, उसमें मैत्रकों को शाक्य चैत्यों का पुजारी बताया है। ऐसा लगता है कि सत्ता का अस्त होने के उपरान्त इन्होंने आजीविका के लिए पुजारी का धन्धा अपना लिया होगा।

पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ में सौराष्ट्र गुप्त सम्राटों की अधीनता में था। कुमारगुप्त (प्रथम) के बाद उसका पुत्र स्कन्दगुप्त 455 ई. (गुप्त संवत् 136) में गद्दी पर बैठा। जूनागढ़ के शिलालेख में लिखा है कि उसने प्रत्येक प्रान्त में योग्य गोप्ता नियुक्त किये थे। उसी प्रसंग मे बहुत कुछ सोच विचार करने के बाद पर्णदत्त को सुयोग्य जानकर उसे सुराष्ट्र (सौराष्ट्र) मे गोप्ता नियुक्त किया। पर्णदत्त ने अपने पुत्र चक्रपालित को सुराष्ट्र के पाटनगर या गिरिनगर का अधिकारी बनाया। उसने गिरिनगर के सुदर्शन तालाब को फिर से बंधाया और नगर के शीर्षस्थान पर चक्रभृत् (विष्णु) के मन्दिर का निर्माण कराया।

स्कन्दगुप्त के समय में ही गुप्त साम्राज्य पर हूणों और वाकाटकों के आक्रमण होने लग गए थे परन्तु वह किसी तरह अपने साम्राज्य की रक्षा करता रहा। उसकी मृत्यु के बाद अर्थात् गुप्त संवत् 148 के बाद एक दशक में ही बारी बारी से कोई तीन सम्राट् गद्दी पर बैठे। इसी अरसे में गुप्त साम्राज्य का वायव्य कोण वाला हिस्सा हूणों ने ले लिया और कोसल, मेकल और मालवा के प्रदेश को वाकाटक नरेन्द्रसेन ने अधिकृत कर लिया। ऐसा लगता है कि ईस्वी सन् 470 के लगभग सौराष्ट्र गुप्तों के नीचे से निकल गया था क्योंकि ऊपर लिखे अनुसार 455–57 ई. तक तो गुप्त सम्राटों द्वारा नियुक्त गोप्ता यहाँ से कर वसूल करते थे

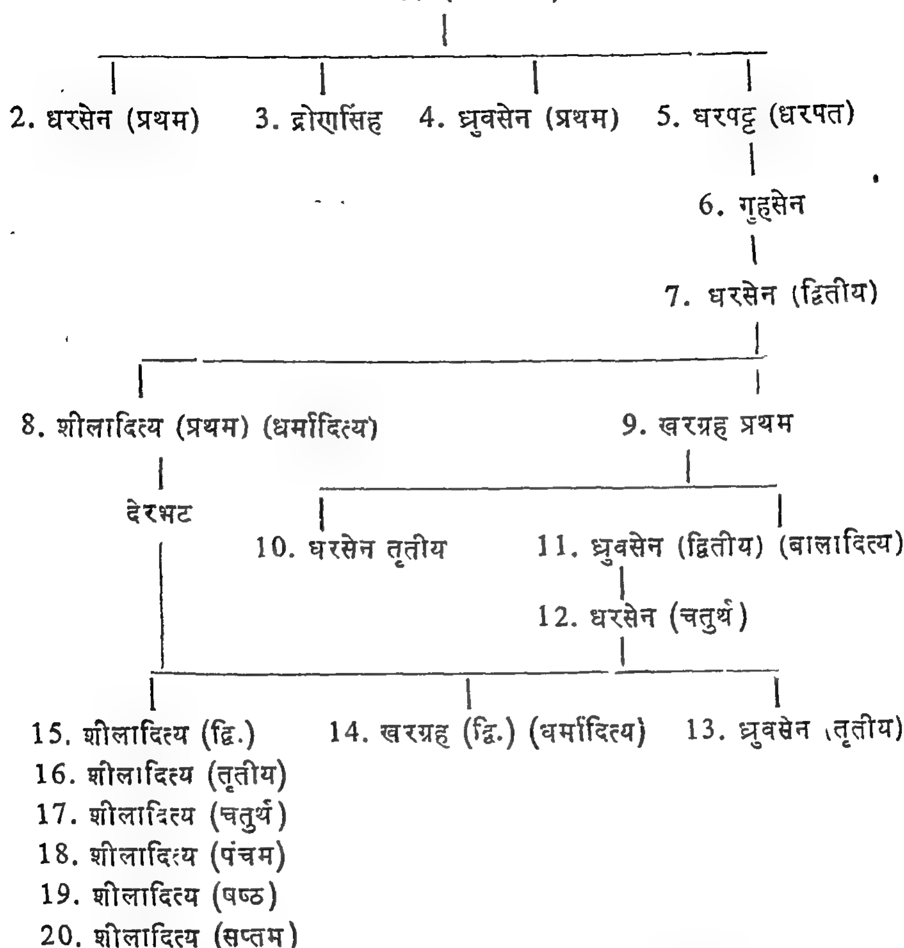
और 502 से 544 ईस्वी के बीच द्रोणसिंह और ध्रुवसेन प्रथम के 'महाराजा' होने के प्रमाण मिलते हैं। मतलब यह है कि 500 ई. के आसपास यहाँ पर मैत्रक राजवंश का राज्य अच्छी तरह जम गया था।

वाटसन ने (इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग. 2, पृ. 313 में) वलभी के उदय का विवरण दिया है। उसमें लिखा है कि गंगा और यमुना के बीच में गुप्तों का राज्य था। वहाँ के राजा ने अपने पुत्र कुमारपाल गुप्त को सौराष्ट्र विजय करने को भेजा। वह अपने एक सामन्त प्राणदत्त के पुत्र चक्रपालित को वामनस्थली का अधिकारी नियुक्त करके अपने पिता के राज्य मे वापस लौटा। इस घटना के बाद कुमारपाल का पिता 23 वर्ष जीवित रहा और इसके बाद वह गद्दी पर बैठा। बीस वर्ष राज्य करने के उपरान्त कुमारपाल गुप्त का स्वर्गवास हुआ और उसका पुत्र स्कन्दगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ। इसी के समय में सेनापति भटार्क प्रबल सेना लेकर सौराष्ट्र में आया और यहाँ उसने अपनी सत्ता को दृढ़ किया। इसके दो वर्ष बाद ही स्कन्दगुप्त की मृत्यु हो गई और सेनापति ने स्वयं सौराष्ट्र के राजा का विरुद धारण कर लिया और उसने वलभी नगर वसा कर वहाँ राजधानी कायम की। उस समय अन्य आक्रमणकारियों ने भी गुप्तवंश की सत्ता का यत्रतत्र अपहरण कर लिया था। भटार्क सेनापति गेहलोत वंशी था और गुप्तों द्वारा खदेड़े जाने तक उसके पूर्वज अयोध्या में राज्य करते थे। वलभी बसा कर भटार्क ने सौराष्ट्र, लाट, कच्छ और मालवा प्रदेशों पर भी कब्जा कर लिया था।

परन्तु, यह सब वृत्तान्त बाद की शोध से अप्रमाणित और संदिग्ध ही सिद्ध हुआ है।

इस बात में तो कोई सन्देह नहीं है कि 455–457 ई. तक तो पर्णदत्त सौराष्ट्र का गोप्ता था। उसके बाद उसके पुत्र चक्रपालित को वह अधिकार प्राप्त हुआ या नहीं, भटार्क सेनापति के उन लोगों से कैसे सम्बन्ध थे और वह उनके साथ ही सहायक रूप में काम करता था अथवा उनके बाद में अधिकारी बनाकर भेजा गया था, इन विषयों पर प्रकाश डालने वाले कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते। परन्तु, भारत के इतिहास में ऐसे अनेक उल्लेख मिल जायेंगे कि निर्बल राजा के राज्य को सबल सेनापति हथिया कर पचा गए हैं। सेनापति ने भी ऐसा ही किया हो, बहुत सम्भव है; परन्तु, इसका कहीं पर खरा-खरा विवरण जब तक न मिले तब तक निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि सौराष्ट्र की राजधानी गिरिनगर में न रहकर वलभीपुर में आ गई थी। सम्भव है, अन्य कल्पनाएँ भी पूरे अधूरे रूप में सच हों।

भटार्क और बाद के राजाओं की वंशावली इस प्रकार है—



इस वंशावली में नामांकित राजाओं के समय आदि का विवरण इस प्रकार है—

1. विजयसेन[61] उपनाम भटार्क सेनापति 509 ई; गुप्त संवत् 190
2. धरसेन (प्रथम)–यह भी सेनापति विरुद धारण करता था।

---

61. 'मैत्रककालीन गुजरात' में दी हुई वंशावली में यह नाम नहीं है, न संवत् का स्पष्ट उल्लेख है।

3. द्रोणसिंह,[62] इस राजा ने व इसके बाद वाले सभी राजाओं ने महाराजा पद धारण किया।

4. ध्रुवसेन (प्रथम)[63]; 526 ई.; गुप्त सं. 207। इस राजा के 535 ई. के ताम्रपट्ट में लिखा है कि कोई दूदा (लूवा) नामक लड़की बौद्धमत का पालन करने वाली थी और उसने वलभीपुर में बौद्ध उपाश्रय बनवाया था। इसके अनेक शिलालेख प्राप्त हैं।

5. धरपत या धरपट्ट; यह भी महाराज-पदधारी राजा था।

6. गुहसेन; (539 ई. से 569 ई. तक)[64]; यही गुहिल कहलाता था; गुहसेन संस्कृत नाम है जिसका अर्थ है देवताओं के सेनापति गुह अर्थात् स्वामिकार्तिक के समान सेना रखने वाला। गोहिल, या गेलोटी (जो अब सीसं दिया नाम से जाने जाते हैं) जो काठियावाड़ और राजस्थान में राजवंशी हैं, वे इसी गुहसेन की सन्तान हैं। गुहिल पुत्र से गुहिलुत्त, गेलोत, गेलोती या गेलोटी नाम पड़े। गुहसेन का बड़ा पुत्र धरसेन (द्वितीय) वलभीपुर की गद्दी पर बैठा और दूसरा कुँअर गुहादित्य या गुहा ईडर का राजा हुआ। उसी के वंशज ईडर से चित्तौड़ (मेवाड़) चले गए और वही उदयपुर के राजवंशी हैं। कहते हैं कि गुहसेन ने पारसी महाराजा नसरवान की पुत्री से विवाह किया था।

7. धरसेन (द्वितीय)[65] गुप्त संवत् 252 (ई. स. 571); वह महान् शिव उपासक था।

8. शीलादित्य (प्रथम)[66] उपनाम धर्मादित्य; गुप्त सं. 275 (594 ई.) से 290 (609 ई) तक।

9. खरग्रह (प्रथम)[67]; 610 ई. से 615 ई. तक।

10. धरसेन (तृतीय)[68]; 615 ई. से 620 ई. तक।

---

62. मैं० का० में इसका गुप्त सवत् 183 का शासन-पत्र मिलना लिखा है। गुजराती अनुवाद में भटार्क का समय 509 ई. और गुप्त स. 190 दिया है, यह संगति नहीं बैठती है।

63. मैं० का० में शासन पत्रों की प्राप्ति का समय गुप्त संवत् 206 (ई. स. 525) से 226 (ई. स. 544) लिखा है।

64. मैं० का० में गुप्त संवत् 240 (ई० 559) से 248 (ई० 567) तक के शासन-पत्र मिलना लिखा है।

65. मैं० का० में गु० सं. 252 से 270 तक के शासन-पत्र मिलते हैं।

66. मैं० का० में गुप्त सं. 286 से 292 तक के शासन-पत्र प्राप्त होते हैं।

67. ,, गुप्त सं. 297 का शासन पत्र मिलना लिखा है।

68. ,, गुप्त सं. 304 एवं 305 के शासन-पत्र प्राप्त।

11. ध्रुवसेन (द्वितीय)[69] या ध्रुवपट्टु उपनाम बालादित्य। 620 ई. से 640 ई. तक। यह राजा काव्य रसिक होने के साथ-साथ महान् पराक्रमी भी था। इसने वलभी के आसपास के प्रदेश जीतकर राज्य विस्तार किया। कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा महान् श्री हर्षदेव (607-648 ई.) ने जब इस पर आक्रमण किया तब भृगुकच्छ के दद्द (दादा) द्वितीय ने सहायता की थी।

12. धरसेन (चतुर्थ)[70]; 640 ई. से 649 ई. तक। यह वलभी के सभी राजाओं में महासत्ताधारी और स्वतन्त्र हुआ। इसी के राज्यकाल मे संस्कृत के सुप्रसिद्ध 'भट्टि-काव्य' की रचना हुई, उसमें इसके लिए नरेन्द्र (चक्रवर्ती) शब्द प्रयुक्त हुआ है।

13. ध्रुवसेन (तृतीय)[71]; 650 ई. से 656 ई. तक

14. खरग्रह (द्वितीय)[72] धर्मादित्य (द्वि.) उपनाम पद्मादित्य; 656 ई. से 665 ई. तक

15. शीलादित्य द्वितीय उपनाम सेवादित्य; 665 ई. से 666 ई.

16. शीलादित्य तृतीय उपनाम हरादित्य; 666 ई. से 675 ई. तक

17. शीलादित्य चतुर्थ[73] उपनाम सूर्यादित्य; 675 ई.-

18. शीलादित्य पंचम उपनाम सोमादित्य; गुप्त सं. 403 (722 ई.) का लेख मिलता है।

---

69. मै. का. में गुप्त सं. 310-321 तक के शासन-पत्र प्राप्त होना लिखा है।

दद्द को नान्दीपुरी का राजा लिखा है। दद्द और ध्रुवसेन दोनों ही कान्यकुब्ज नरेश हर्षदेव के जमाई थे। इस राजा के विषय में चीनी यात्री युवान-शु-आंग ने विस्तृत विवरण लिखा है।

शीलादित्य प्रथम के देरभट नामक पुत्र था परन्तु उसने अपने उत्तराधिकारी के रूप में अपने अनुज खरग्रह को ही पसन्द किया था। दानशासनों में देरभट को सह्य और विन्ध्य के बीच के प्रदेश का क्षितिपति लिखा है। इसके पुत्र शीलादित्य द्वितीय का भी विन्ध्य के आसपास के प्रदेश के क्षोणीपति के रूप में उल्लेख है। अपने भाई ध्रुवसेन (तृतीय) व खरग्रह (द्वितीय) के बाद वह 665 ई. में गद्दी पर बैठा।

70. मै. का में गु सं. 326 (646 ई.) से 330 (650 ई.) तक के शासन-पत्र मिलना लिखा है।

71. गुप्त संवत् 332–334 के शासन-पत्र मिलना लिखा है।

72. ,, 337 का लेख।

73. इसके पूरे राज्यकाल का पता नहीं। गुप्त सं. 372 (691 ई.) का एक लेख मिलता है। अब गुप्त सवत् 387 तक के लेख उपलब्ध हैं। (हि. अ.)

19. शीलादित्य षष्ठ गुप्त सं. 441 (760 ई.) का लेख मात्र मिलता है।

20. शीलादित्य सप्तम; गु. सं. 447 (766 ई.) का लेख मिलता है; इसके समय में वलभी का राज्य गया।

वलभी के राजाओं के शासन-पत्रों में विरुद-सूचक कुछ शब्दों का अर्थानुसन्धान भी रोचक है।

भटार्क—भट शब्द सैनिक या सिपाही के अर्थ में आता है; भटार्क का अर्थ हुआ 'सैनिकों में सूर्य के समान'। यह 'अर्क' का उत्तरपद मैत्रक राजाओं के नाम के साथ 'आदित्य' रूप में भी बाद में प्रयुक्त होता रहा है, जैसे सूर्यादित्य, सोमादित्य, हरादित्य, शीलादित्य इत्यादि। भटार्क शब्द को भृतार्क शब्द का भी रूपान्तर माना गया है। कौटलीय अर्थशास्त्र में चार प्रकार के सैनिक गिनाए गए हैं—मोल, भृत, मित्र और श्रेणी। इनमें से मोल सैनिक तो नियमित होते थे, वे स्थायी रूप से सेना में नियुक्त रहते थे। भृत् सैनिक भाड़े के सिपाही होते थे। ये लोग पेशेवर सैनिक होते थे और राजा व सामन्त इनको आड़े समय में भाड़े पर रख लेते थे। मित्र सैनिक आपस में मित्र राजाओं की सेना के सैनिक होते थे। श्रेणी (श्रेणि) के सैनिकों से सामान्य नए रंगरूटों का अर्थ समझना चाहिए। भृत् सैनिकों का अधिकारी या स्वामी भृतार्क और बाद में भटार्क कहलाया। यह शब्द भी मूल प्राकृत शब्द भटक्क का संस्कृत रूपान्तर है। आरम्भ के शासन-पत्रों में भटक्क, शब्द ही मिलता है, बाद में भटार्क, भटार्क्क अथवा भट्टार्क रूप मिलते है। वास्तव में, भट्टार्क शब्द का प्रयोग शुद्ध नहीं है क्योंकि भट्ट तो 'भर्तृ' का रूपान्तर है जो स्वामी का वाचक है। इसीलिए स्वामी, पूज्य या विद्वान् को भट्ट कहते हैं।

भट्टारक शब्द राजा या देवता का वाचक है।

'वप्प' शब्द भी इन शासन-पत्रों में शीलादित्य तृतीय के क्रमानुयायियों के साथ प्रयुक्त हुआ है; यथा परमभट्टारक-महाराजाधिराज श्री वप्प पादानुध्यात....। कहीं-कहीं वप्प के स्थान पर 'वाप' भी मिलता है। यह शब्द किसी व्यक्ति विशेष का बोधक नहीं है। कदाचित् 'पिता' के अर्थ में लिया गया हो तो साथ में 'तस्य सुतः' 'तत्पादानुध्यात' का प्रयोजन नहीं रहता। देशी नाममाला में इस शब्द का अर्थ 'वप्पो सुभटः, पितेत्यन्ये' दिया है इसलिए बहुत सम्भव है कि यह 'सुभट' के ही मुख्य अर्थ में प्रयोग किया गया हो, पिता तो गौण अर्थ है। आगे चलकर यह शब्द भी रूपान्तरित होकर पूज्य, स्वामी और पिता के लिए सामान्य रूप से प्रयुक्त होने लगा। बापा रावल या वप्पा रावल में भी कुछ लोग इसे नाम न होकर आदरसूचक ही मानते हैं। राजाओं और ठाकुरों को 'बापू जी' कहने का रिवाज गुजरात और राजस्थान में समान रूप से प्रचलित है। जोधपुर के स्व. महाराजा उम्मेदसिंह जी अब तक 'बड़े बाप जी' और उनके अनुज अजीत सिंह जी 'छोटे बाप जी' कहलाते

रहे हैं। गुरु को या पण्डित को बापजी या बापूजी कह कर सम्बोधित करने का रिवाज़ है। सर्वपूज्य गाँधीजी को सारा देश पूजार्ह मानता था और वे 'बापू' नाम से ही जाने जाते थे। उन्हें भी यह सम्बोधन प्रिय था; वे अपने पत्रों में प्राय: नीचे लिखते थे 'बापू के आशीर्वाद।'

5. तोमर व तुंवर वंश (पुनः)

तोमरवंश में तीन अनंगपाल हुए हैं। यह अनगपाल तीसरा था। यहाँ चौहान, राठौड़ और तोमर वंशों के सम्बन्ध समझने के लिए कनिंघम लिखित 'मध्यकालीन सिक्के' नामक पुस्तक के आधार पर उद्धरण दे रहे हैं—

कन्नौज और दिल्ली के तोमर (तंवर)—

विक्रमादित्य के समय से 792 वर्ष बाद तक इन्द्रप्रस्थ नगर उजाड़ पडा रहा। तोमरवंश के राजपूत राजा अनंगपाल ने उसकी फिर स्थापना की और उसका नाम दिल्ली रखा। कितने ही लेखक इसकी स्थापना के वर्ष में फेरफार बताते हैं, परन्तु वह विक्रम संवत 792 अथवा ईसवी सन् 735 के आस पास ही है; कोई अधिक वर्षों का अन्तर नहीं है।

1022 ई. में जब महमूद गज़नवी ने कन्नौज लिया तब वहाँ का राज्यकर्ता जयपाल नामक तोमर वंशीय राजा था। उसने महमूद की अधीनता स्वीकार करली इसलिए कालंजर के चन्देल राजा गण्ड ने आक्रमण करके उसको मार डाला। उसके बाद कुमारपाल हुआ जिसका नाम दिल्ली के राजाओं की सूची में जयपाल के बाद ही आता है। कुमारपाल के तुरन्त बाद ही अनंगपाल द्वितीय हुआ जिसके विषय में संवत् 1117 अथवा ईसवी सन् 1060 का लेख है कि—

दिल्ली का कोट कराया—
लाल कोट कहाया।

1050 के लगभग राठौड़ वंश के चन्द्रदेव ने कन्नौज जीत लिया था इसके बाद ही अनगपाल ने दिल्ली जाकर कोट चिनवाया होगा।

तोमर, तुमार अथवा तुवार, जिनको फारसी लेखकों ने वोवर, पोवर या दूसरों ने तोवार, तोमार, तोमर, तोग्रर, तुवार आदि लिखा है उच्च जाति के राजपूत गिने जाते है। उनके साथ मेवाड़ के सीसोदियों का भी घनिष्ठ सम्बन्ध (बेटी-व्यवहार) है। ईसवी सन् 1375 से लेकर 1518 तक, जब अन्तिम विक्रमादित्य को इब्राहिम लोदी ने परास्त किया, ग्वालियर का किला तोमरों के ही कब्जे में था। ग्वालियर के उतर की तरफ का किला आज भी तुआरगार के नाम से जाना जाता है और दिल्ली के दक्षिण की ओर का ज़िला 'तोआरवती' (तंवरावाटी) कहलाता है।

अनंगपाल प्रथम ने ही तोमरवंश की स्थापना करके वि सं. 792 (736 ई.) में दिल्ली बसाई थी, यह बात सर्वमान्य है। दिल्ली में जो पुराना लोहस्तम्भ है

(पंचधातु का होगा) उस पर 'सं. 418 राज तुंवर आदि अनंग 'ऐसा लिखा मिला है। यदि इसको गुप्त संवत् मान लिया जाय तो 418+318=736 ई. सन् आता है। मुहम्मद खिलजी 1300 ई. में हुआ था, उसके दरबारी शायर अमीर खुसरो ने अनंगपाल द्वितीय के विषय में लिखा है कि 'वह महाराय था, उसको हुए पाँच छ: सौ वर्ष हो गए।' इस हिसाब से भी उसका समय 700 और 800 ई. के बीच में आता है।

ऊपर के वृत्तान्त के आधार पर दिल्ली और कन्नौज के राजाओं की सूची इस प्रकार है—

क्रमांक	ईस्वी सन्	तोमर वंश के राजा का नाम	आईने अकबरी के अनुसार राजा का नाम	राज्यकाल वर्ष	मास	दिन
1.	736	अनंगपाल (प्रथम) (बिल्हणदेव)	अनंगपाल तेनोर	18	0	0
2.	753		खसदेव	19	1	18
3.	772		गंगू	21	3	28
4.	793		पृथ्वीमल्ल	19	6	19
5.	813		जयदेव	20	7	28
6.	833		निरपाल	14	4	9
7.	848		आदेरेह	26	7	11
8.	874		बिल्पराज (विछराज)	21	2	11
9.	895		बीक	22	3	16
10.	918		रेखपाल (रघुपाल)	21	6	5
11.	939	सुखपाल (अथवा तेजपाल)	सुखपाल (नेकपाल)	20	4	4
12.	960	गोपाल	गोपाल	18	3	15
13.	978	सलक्षणपाद	सेलेखन	25	10	2
14.	1003	जयपाल	जयपाल	16	4	13
15.	1019	कुमारपाल	कुंवरपाल	29	3	11
16.	1049	अनंगपाल (द्वितीय)	अनंगपाल (अनेकपाल)	29	6	18
17.	1079	विजयपाल (अथवा तेजपाल)	वीजेंपाल	24	1	6

18.	1103 नहिपाल	नहैतपाल	25	2	23
19.	1128 अनंगपाल (तृतीय)	आकपाल (अनेकपाल)	21	2	15
20.	1149 पृथ्वीराज (अनंगपाल की पुत्री कमलादेवी और सोमेश्वर का पुत्र था। अनंगपाल के पुत्र न होने के कारण उसको गोद ले लिया था।	पृथ्वीराज	22	2	16

उक्त स्थलों के राज्यकर्ताओं में तोमरवंश के अतिरिक्त रामचन्द्रदेव का भी नाम आता है; उसके बाद भोजदेव का नाम है, इससे ज्ञात होता है कि तोमरों से पहले यहाँ पर रघुवंशियों का राज्य था क्योंकि ये दोनों नाम रघुवंशियों के हैं। अलबेरुनी ने लिखा है 'वासुदेव ने जैसे मथुरा को प्रसिद्ध किया वैसे ही पाण्डव कन्नौज को प्रसिद्धि में लाए।' तोमर पाण्डववंशी हैं इसलिए वे चन्द्रवंशी हुए; इससे पहले कन्नौज के राजा रघुवंशी अर्थात सूर्यवंशी थे। उन्हीं के बाद में राठौड़वंश के राजा हुए।

6. कन्नौज के राठौड़ों की वंशावली

कनिंघम ने बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की पुस्तक 33 अंक 3 में पृ. 232 पर 1864 ई. से कन्नौज के राठौड़ों की वंशावली प्रकाशित है, वह इस प्रकार है—

चन्द्रदेव	–	1050 ई. (1106 वि.)
मदनपाल	–	1080 ई. (1136 वि.)
गोविन्दचन्द्र	–	1115 ई. (1171 वि.)
विजयचन्द्र	–	1165 ई. (1221 वि.)
जयचन्द्र	–	1175 ई. (1231 वि.)

बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की पुस्तक (1858 ई.) के अंक 3 में ही पृ. 217–220 पर एडवर्ड हॉल ने ताम्रपट्टों की नकलें छपाई हैं उनमें—

मदनपाल का दानपत्र 1154 वि. (1098 ई.) का है;

गोविन्दचन्द्र का दानपत्र 1182 वि. (1126 ई.) का है;

राठौड़ों ने चन्द्रदेव की अध्यक्षता में 1050 ई. में कन्नौज जीत लिया था। इस राजा के सिक्के तो नहीं मिलते हैं, परन्तु इसके पुत्र मदनपाल का 1154 विक्रम संवत अथवा 1097 ई. का लेख मिला है। इसी तरह उसके पौत्र गोविन्दचन्द्र देव

का संवत 1177 अर्थात् 1120 ई. का लेख मिला है। इस लेख के समय वह पूर्ण युवा था इसलिए मदनपाल का गद्दी पर बैठने का समय 1080 ई. माना जा सकता है तथा चन्द्रदेव का समय 1050 ई. मान्य हो सकता है। एक पीढ़ी का समय 25 वर्ष मानने पर भी यह सम्भव लगता है कि 1050 ई. में राठौड़ों ने कन्नौज जीत लिया होगा।

7. चौहाणवंश का पीढ़ीनामा

चौहाणवंश सम्बन्धी विश्वसनीय वृत्तान्त उनके लेखों से ही ज्ञात होता है। डाक्टर बुह्लर ने बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के प्रोसीडिंग्स् (1883 ई; पृ. 93–94) में सूचित किया है कि 'पृथ्वीराजरासो' तो बनावटी है, पुराना नहीं है, अर्वाचीन है। कवि चन्द कृत रासो के आधार पर कर्नल टॉड ने जो वंशावली दी है वह मानने योग्य नहीं है, ऐसा कनिंघम ने भी लिखा है। परन्तु, इस विवाद का अभी कोई अन्त नहीं आया है। श्रीयुत मोहनलाल आदि इसमें प्रतिपक्षी हैं। डाक्टर बुह्लर ने दो लेखों का प्रमाण दिया है जिनमे से एक तो विक्रम संवत् 1030 का है; दूसरा वि. 1225 का है। काश्मीर के पण्डित (जोनराज) लिखित 'पृथ्वीराज विजय' के आधार पर जो वंशावली निकलती है वह भी इनसे मेल खाती है। इसी तरह कनिंघम को जो मदनपुर का लेख मिला है उसमें लिखा है—

ऊँम् ! अरुनोराजस्य पौत्रेण श्री
सोमेश्वरसूनुना जेजाक—
भुक्ति देसोयम् पृथ्वीराजेन
लुणीतः सं. 1239

इससे ज्ञात होता है कि जेजाकभुक्ति = जहाहुती (महोबा) की विजय संवत् 1239 में अर्थात् 1182 ई. में हुई थी।

'पृथ्वीराजविजय' काव्य के अनुसार वंशावली इस प्रकार निकलती है—

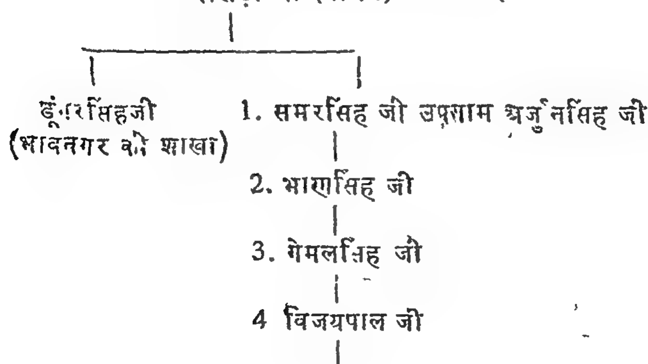
अजयराज (जिसने अजमेर (बसाया)
|
आनाजी (अर्णोराज-आमल्लदेव-अरुणो)
(1120 ई.)
|

अज्ञातनामा, जिसने अपने पिता का वध किया	वीसलदेव (विग्रहराज) (1150 ई.)	सोमेश्वर-कमलादेवी (1161 ई.)
|	|	|
पृथ्वीभट	0	पृथ्वीराज (1162 ई.–1191–93)

अनंगपाल तृतीय की पुत्री कमलादेवी सोमेश्वर को ब्याही गई थी इसलिए उनका पुत्र पृथ्वीराज अनंगपाल तुंवर की गद्दी का हकदार हुआ। सोमेश्वर और पृथ्वीराज के नाम के सिक्के मिलते हैं, परन्तु वीसलदेव और उसके भतीजे पृथ्वीभट के सिक्के नहीं मिलते हैं। इसी तरह अरुणो (अथवा आमल्लदेव) के नाम के सिक्के भी अभी नहीं मिले हैं। दिल्ली की लाट वाले लेख में सोमेश्वर का राज्य शाकम्भरी अर्थात् साँभर में होना लिखा है परन्तु **पृथ्वीराजविजय** में चौहाणों का राज्य अजमेर में होना बताया गया है। हमीर महाकाव्य में उसको सपादलक्ष (सवा लाख का) देश लिखा है और अजमेर तथा हांसी को उसकी राजधानी बताया गया है।

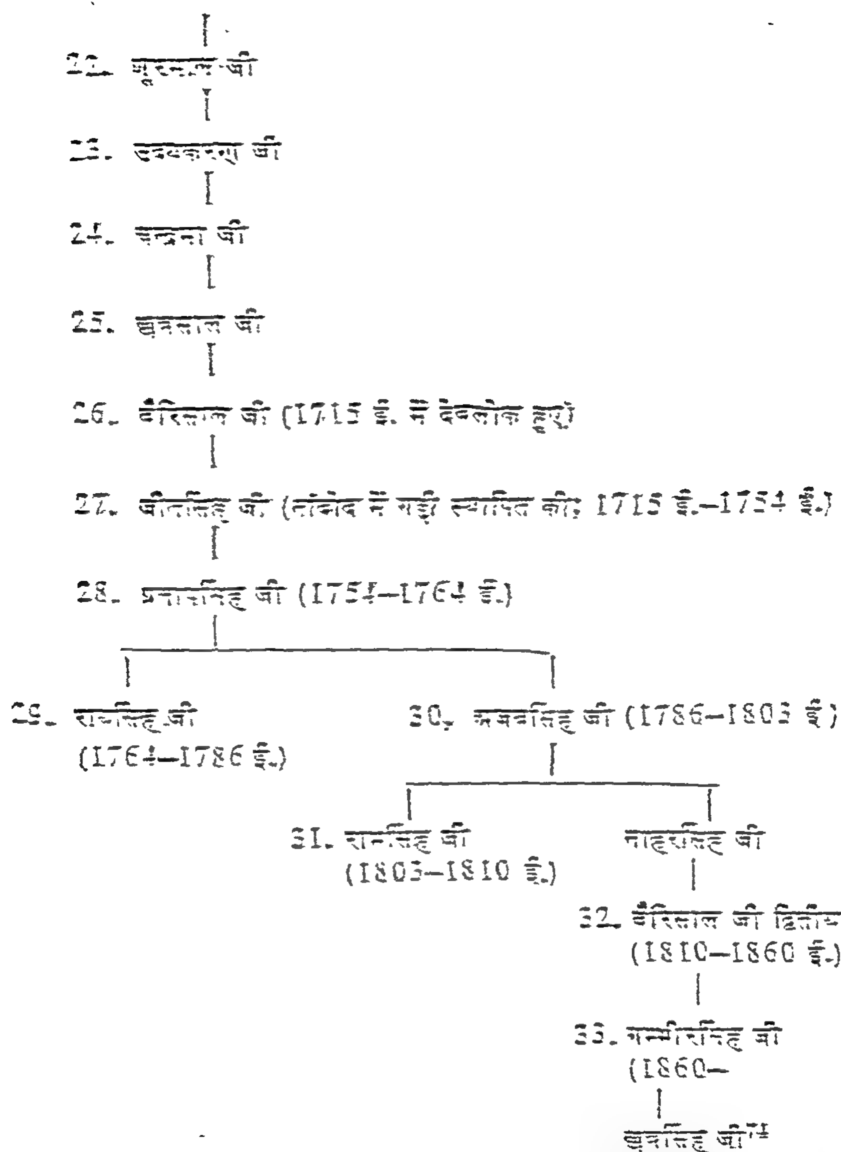
1192 ई. के सिक्के में एक तरफ़ दाहिनी बाज़ू में भाले सहित घुड़सवार की मूर्ति अंकित है और उस पर 'श्री पृथ्वीराज' ऐसा नाम लिखा है; दूसरी तरफ इसी सिक्के पर बैठे हुए पोठिया का चित्र है, जिसके साथ "स्री महमद साम" अक्षर बने हुए हैं। महमद साम अथवा शहाबुद्दीन गोरी ने पृथ्वीराज को जीता था इसलिए उसी वर्ष यह सिक्का ढ़ाला गया होगा। मिनहाज के लेखानुसार यह बात सही लगती है क्योंकि हिज़री सन् 587 (1191 ई.) में शहाबुद्दीन ने दिल्ली को घेरा था इसलिए उसी वर्ष पृथ्वीराज उसका करद (कर देने वाला) राजा हो गया होगा। ऐवक (कुतुबुद्दीन, जिसको शहाबुद्दीन ने सूबेदार नियुक्त किया था) बाद में हाँसी गया परन्तु हिजरी सन् 589 (1193 ई.) में वापस दिल्ली आ गया और उसने शहर अपने कब्ज़े में कर लिया। इन दोनों घटनाओं के बीच का वर्ष इस सिक्के पर अंकित है। इसके बाद मुहम्मद गोरी के सिक्के में गोविन्दचन्द्र के सिक्के की नकल करके बैठी हुई चतुर्भुज लक्ष्मी आलेखित की गई है और ऊपर 'स्री महमद बिन साम' ये अक्षर अंकित है।

8 राजपीपला के राजाओं की वंशावली



5. रामशाह जी उपनाम हरिसिंह जी
|
6. पृथ्वीराजजी
|
7. दीपाजी
|
8. कर्णभाजी
|
9. अभयराज जी
|
10. सुजानसिंह जी
|
11. भैरवसिंह जी
|
12. पृथ्वीराज जी (द्वितीय)
|
13. दीपसिंह जी
|
14. दुर्गशाह जी
|
15. मोहराज जी
|
16. रायसालजी
|
17. चन्द्रसेन जी
|
18. गम्भीरसिंहजी
|
19. सुभयराज जी
|
20. जयसिंह जी

मुगलराज जी	21. मूलराज जी



राजपीपला का क्षेत्रफल 1,514 वर्गमील, 670 ग्राम, आबादी 1,15,000

---

74. छत्रसिंह जी का देहान्त 1915 ई. में हुआ तब उनके पुत्र विजयसिंह जी 25 वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे।

मनुष्य और वार्षिक उपज लगभग 6 लाख रुपये की थी।[75] इनमें से 65,001 रु. तो गायकवाड़ सरकार को कर के रूप में और 13,351 रु० वार्षिक गायकवाड़ सरकार से गाँवों की अदलाबदली हुई उसकी कसर के देते थे। महाराजा को अंग्रेज सरकार की ओर से 11 तोपों की सलामी की इज्जत मन्जूर थी।

9. राव माण्डलिक को नागबाई का शाप[76]

राव मांडलिक (तृतीय) सोरठ का 30वाँ चूडासमा राजा था। वह 1451 ई. से 1473 ई. तक गद्दी पर रहा। उसके पिता ने उसको बड़ी सावधानी और लगन से विद्याभ्यास कराया था। रणविद्या और शस्त्र-व्यापार में वह अद्वितीय था। युवा होने पर अर्जुन गोहिल की कुँअरी कुन्तादेवी के साथ उसका विवाह हुआ। अर्जुन गोहिल मुसलमानों के साथ युद्ध में मारा गया था इसलिए उसकी कन्या उसके भाई अरटीला (वर्तमान लाठी) के ठाकुर दूदा गोहिल के घर पली थी। दूदा लूट का धन्धा करता था इसलिए अहमदाबाद के सुलतान ने उसको सज़ा देने के लिए राव मांडलिक को लिखा। राव ने दूदा को समझाया परन्तु उसने अपनी टेव नहीं छोड़ी; तब, चढ़ाई करके राव ने उसके नगर को नष्ट कर दिया।

नरसी मेहता भक्त इसी राव के समय में हुआ था। वैष्णवों की मान्यता है कि भक्त को सताने के कारण ही इस राव का नाश हुआ था।

चारण लोग इस विषय में दूसरी ही कथा कहते हैं। माणिया ग्राम में गंगाबाई उर्फ नागबाई नाम की चारण स्त्री रहती थी। वह बहुत रूपवती और पतिव्रता थी। उसके रूप का बखान सुन कर राव मांडलिक उस गाँव में गया। उसने जब नागबाई से छेड़छाड की तो उसने राव को शाप दिया 'जिस प्रकार मैं तुझ से विमुख हूं उसी प्रकार तेरी भाग्यदेवी तुझ से विमुख होकर मुसलमान का वरण करेगी।' ऐसा कहकर वह चली गई। राव मांडलिक भी लज्जित होकर जूनागढ़ लौटा। कहते हैं कि नागबाई ने निम्न दोहा कहा था—

गंगाज़ल गढेशा पण्ड तारू हतु पवित्र;
वींजाने रगत गया, मने तो वाला माण्डलिक

चारणों का कहना है कि जूनागढ़ से बारह मील दक्षिण में वडाल तालुके में दातराणा नामक गाँव है, उसी में राव माण्डलिक को शाप देने वाली चारणी नागबाई का जन्म हुआ था। उसके पिता का नाम हरजोग दामा था। पहले, उसके कोई सन्तान नहीं थी परन्तु बाद में हीरागर बाबा की कृपा से नागबाई का जन्म

---

75. श्री खोसला की पुस्तक (1930 ई.) के अनुसार क्षेत्रफल 1,517½ वर्गमील और 1921 ई. की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 1,68,425 थी।

76. देखिए—हिन्दी अनुवाद, भा. 2; पृ. 110.

हुआ। उसके पति का नाम रावसूर-भासुर था। उसके वंशज आज भी दातराणा में मे गोरवियाला चारण कहे जाते हैं। उसी गाँव में नागवाई का छोटा-सा देवरा (देवालय) हैं। कहते हैं कि नागवाई के पुत्र नागार्जुन की स्त्री मीन बाई की सुन्दरता से आकृष्ट होकर उसको देखने के लिए ही माण्डलिक उस गाँव में गया था। चारणों में यह रीति है कि जब राजा गाँव में आता है तो सौभाग्यवती चारण-स्त्रियां थाल में कुंकुम अक्षत लेकर उसका प्रोक्षण (स्वागत) करने जाती हैं। राव माण्डलिक जब नागवाई के घर गया तो मीनवाई उसका प्रोक्षण करने गई। जब वह आई तो राव दूसरी बाजू मुँह फेर कर खड़ा हो गया और उसको 'वारणा' नहीं लेने दिया। इसका कारण यह था कि पूज्य या बड़ी स्त्री ही वारणा लेती है इसलिए यदि मीन-वाई वारणा ले ले तो उसके प्रति वह बुरी नीयत नहीं रख सकता था। मीनवाई ने यह बात अपनी सास से कही तब नागवाई ने कहा 'वह दिशा राजा ने ठीक नहीं समझी होगी इसलिए दूसरी दिशा की ओर मुँह कर लिया होगा; दूसरी दिशा में पोख ले।' तब मीनवाई फिर पोखने गई परन्तु राजा फिरता ही रहा और प्रोक्षण नहीं करने दिया। मीनवाई ने फिर यह बात अपनी सास से कही तब उसने कहा, 'उसका नसीब (भाग्य) ही उससे दूर दूर भागता फिरता है।' इसके बाद मीनवाई अपने घर लौटने लगी तब मांडलिक ने उससे मश्करी (मज़ाक) की, इसीलिए नाग वाई ने उसको शाप दिया था। इस कथा के प्रसंग में बहुत से दूहे प्रचलित हैं उनमें से कुछ यहां दिए जाते हैं—

चांपे जे चारण भणे, तूं वार्‌यूं माने वीर;
हीण्यूं नजर हमीर, मावित्राग्युं नोय मंडलिक ।।1।।

चूड़ारा चारण तणुं वचन ज माने वीर;
नेवां तणां नीर, मोमे न चढे मंडलिक ।।2।।

(तोलि) तपसामें खामि पई, (तियमाणी) फिरिया घटसे कोट;
(तां खूटामण नी खोट, मुं विसारस मंडलिक ।।3।।

पिसे जूनानि पोल, दामो कुण्ड देखिश नहीं;
(ते दि) रतन थारो रोल (ते दि) मुं संभारस मंडलिक ।।4।।

पोथां ने पुराण, भागवते भालसो नहि;
कलमो पढशो कुराण, ते दि मुं संभारस मंडलिक ।।5।।

नहि वगे नीसाण, नकीब हुक्ल से नहि;
मेड़ी त्यां मसाणु, (ते दि) मुं संभारस मंडलिक।।6।।

नहि होय घोडांना घेर, पालखियुं पामस नहि;
गिरनारे गर मेर, (ते दि) मुं संभारस मंडलिक ।।7।।

जा से रा'नी रीत, रा'पणु रे'शे नहि;
ममतो मांगस भीख, मुं संभारस मंडलिक ।।8।।

राणियु रीत पखे, जाय बजारे बीससे;
(ते दि) ओजल आलस ते मु संभारस मंडलिक ॥9॥
पोताना परिया तणी, लाज ज लोपे मा,
जूनांगु जातां, मखुं हतुं मंडलिक ॥10॥
घोडा ने घोडलियु लई, जूने पाछो जा;
मानने मोहल रा', मत कि करि मंडलिक ॥11॥

दूसरी बात यह कही जाती है कि राव मांडलिक ने अपने प्रधान मन्त्री विमल शाह की स्त्री मनमोहिनी को पतित किया था, उसका वैर लेने के लिए ही वह प्रधान अहमदाबाद के सुलतान महमूद (बेगड़ा) तृतीय के पास गया और उसको जूनागढ़ पर चढ़ा लाया।

इन दूहों का भावार्थ इस प्रकार है—

चारणी कहती है कि हे वीर ! मैं जिस बात के लिए मना करती हूँ वह मान लो; हे माण्डलिक ! मातृ-सदृश चारणियों को हीन दृष्टि से मत देखो (1)

हे वीर, चूड़ा के चारण का वचन मानो; नेवा (तलहटी) का पानी मोभे (चोटी) पर नहीं चढ़ता। पूज्य स्त्रियों की ओर नजर उठाना ठीक नहीं। (2)

तुम्हारी तपस्या में कमी आ गई है और खोट से तुम्हारा कोट (परकोटा अर्थात् राज्य) घट जायगा। हे माण्डलिक ! यह मत भूलो कि खोटी बातों का नतीजा खोटा होता है। (3)

जब जूनागढ़ का पोल (नगर-द्वार) पिस जायगा, दामा कुण्ड देखने को नहीं मिलेगा और तेरे रत्न मिट्टी में रुल् (मिल) जावेंगे उस दिन, हे माण्डलिक ! तुम मुझे याद करोगे। (4)

जिस दिन तुम पुराण की पोथियां और भागवत पढ़ना छोड़कर कलमा और कुरान पढोगे तब हे माण्डलिक ! तुम मुझे याद करोगे। (5)

तुम्हारा नौबत-निसाण (नक्कारे) बजना बन्द हो जायगा, नकीब (यशोगान करने वाला) तुम्हारा यश नहीं गायेगा, जहाँ मेड़ी (ऊंचा महल) है वहाँ श्मशान हो जायगा, तब हे माण्डलिक मुझे याद करोगे। (6)

जिस दिन तुम्हारा घोड़ों का घेर (रिसाला) नहीं रहेगा, (घुड़सालें नष्ट हो जाएँगी), तुम्हें बैठने को पालकी नहीं मिलेगी और गिरनार की तलहटी में घूमोगे, तब मुझे याद करोगे। (7)

जिस दिन रा' पदवी की मर्यादा नष्ट हो जायेगी, रा'पन चला जायगा और तू भीख मांगता फिरेगा उस दिन हे माण्डलिक ! मुझे याद करेगा। (8)

रानियाँ अपनी रीति छोड़कर बाजारों में फिरती फिरेंगी; तब हे मांडलिक! मुझे याद करोगे। (9)

19. रा' मांडलिक (प्रथम): 1260—-1306 ई. इस रा' पर राठोड़ों और बाघेलों ने चढाई की थी। इसी के समय में दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी का लश्कर अलपखान और नुसरत खां की अध्यक्षता में गुजरात के कर्ण बाघेला पर चढ़ कर आया था। गुजरात विजय के बाद उन्होने जूनागढ़ पर भी चढ़ाई की और बहुत नुकसान किया। फिर, वे सोमनाथ पर चढ़े। सन् 1204 ई. में सुल्तान महमूद गजनवी ने सोमनाथ के देवालय को तोड़ दिया था। बाद में, भीमदेव प्रथम ने पुनः सोमनाथ के देवालय का निर्माण कराया और कुमारपाल सोलंकी ने बहुत-सा धन खर्च करके उसका जीर्णोद्धार कराया था। अब इन लोगों ने उस देवालय को पुनः भग्न कर दिया और घोघा से माधवपुर तक का समुद्रतट जीत कर 1304 ई. में अपना सूबा कायम कर दिया।

20. नोघण (चतुर्थ); 1306–1308 ई;

21. रा' महीपाल (चौथा); 1308 से 1325 ई. तक; इसने सोमनाथ के मन्दिर का अन्तिम और प्रख्यात जीर्णोद्धार कराया। इस काम में उसके पुत्र खेंगार चतुर्थ ने भी बहुत मेहनत की।

22. रा' खेंगार (चतुर्थ); 1325–1351 ई; इसने सोमनाथ से मुसलमानी सूबे को हटा दिया। दिल्ली के मुहम्मद तुगलक ने उसका राज्य छीन लिया था परन्तु उसके चले जाने के पश्चात् रा' ने पुनः अपने देश पर अधिकार कर लिया और अट्ठारह बन्दरगाहों को राज्य में मिलकर झाला, गोहिल आदि 84 राजाओं पर अपनी सत्ता कायम की।

23. रा' जयसिंह (द्वितीय); (1351-1369 ई; इसने अपने राज्य को सुदृढ़ करके उसका विस्तार किया। दिल्ली के बादशाह फीरोजशाह तुगलक ने, इसके समय में, सौराष्ट्र पर चढ़ाई की और सोमनाथ पाटण में मुसलमानी थाना नियुक्त किया।

24. रा' महीपाल (पाँचवा) उपनाम महिपति; 1369–1373 ई; इसने बंथली (वामनस्थली) को वापस लिया।

25. रा' मोकलसिंह; (मुक्तसिंह); 1373–1397 ई; इसने आसपास के राज्यों से मेल-मिलाप रखा, विद्या का प्रसार किया और बंथली में राजगद्दी स्थापित की। इसके समय में ही गुजरात के जफर खां ने, जो मुजफ्फर खां के नाम से प्रसिद्ध हुआ, इस प्रदेश पर कर कायम किया।

26. रा' मांडलिक दूसरा; 1397–1400 ई. तक;

27. उसके बाद उसके भाई रा' मेलिग देव ने ईस्वी सन् 1400 से 1415 तक राज्य किया। इस पर अहमदाबाद के सुल्तान अहमदशाह प्रथम ने 1413–14 ई. में चढ़ाई की, परन्तु वह पराजित होकर लौटा।

28. रा' जयसिंह तृतीय; 1415–1440 ई; इसने जाजमेर (झांझरकोट) के आगे यवनों को हराया।

29. इसके बाद उसका भाई महीपाल छठे ने 1440 से 1551 ई. तक राज्य किया। इसने अपने पुत्र माण्डलिक तृतीय को खूब पढा लिखा कर तैयार किया और उसको शस्त्र-विद्या में भी पारंगत बनाया। रा' महीपाल ने अपने जीवन काल में ही उसे गद्दी पर बैठा दिया था; परन्तु, बुरी सौहबत के कारण उसका चालचलन खराब हो गया था।

30. रा' माण्डलिक तृतीय, 1451-1472 ई.; इस हतभाग्य राजा के समय में ही जूनागढ के राजपूत राज्य का अन्त आ गया।

॥गुजरात के प्रमुख देशी राज्य॥

गुजरात, कच्छ और काठियावाड की प्रमुख देशी रियासतें ये थी— 1. बड़ौदा, 2. कच्छ, 3. जूनागढ़, 4. जामनगर, 5. भावनगर, 6. ध्रान्ध्रा, 7. मोरवी, 8. वांकानेर, 9. पालीताना, 10. ध्रोल, 11. लींबडी, 12. राजकोट, 13. गोंडल, 14. बढ़वाण, 15. पोरबन्दर, 16. पाल्हणपुर, 17. राधनपुर, 18. ईडर, 19. राजपीपला, 20. छोटा उदयपुर, 21. बारिया, 22. लूणावाडा, 23. वाडासीनोर, 24. सुन्थ, 25. धरमपुर, 26. वाँसदा, 27 सचीन और 28: खम्भात।

———

अनुक्रमणिका